ISSN: 2249-2577

वर्ष 9 अंक 1
जनवरी-जून, 2017

लोक प्रशासन

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान नई दिल्ली
की अर्धवार्षिक शोध पत्रिका

संपादक
प्रो. एस. एन. मिश्र

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान

सम्पादक

çk- ,l- ,u- feJ

ikB lEiknd - Lugyrk

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान
इन्द्रप्रस्थ एस्टेट, रिंग रोड, नई दिल्ली–110002

Ykkd i’kkl u

vuØef.kdk

i"B

lEikndh; v

Yk[k

आधुनिक भारतीय राज्य की विकासवादी पृष्ठभूमि 1
महेन्द्र प्रसाद सिंह

राजस्थान में वित्तीय नियंत्रणकारी संस्थाओं का कार्यकरण : समस्या एवं समाधान 15
मंजू देवी शर्मा

चुनाव सुधार में राजनीतिक दलों की भूमिका 31
सीमा दास

भारत में राजनीति-प्रशासन-पूँजीवाद का गठबंधन एवं कालेधन का प्रश्न 41
सोनू कुमार

पर्यावरणीय राजनीतिः भारत के संदर्भ में एक अध्ययन 49
रवीन्द्र कुमार वर्मा

विकेन्द्रीकृत जिला नियोजन : अवधारणा एवं प्रक्रिया 59
रमेश प्रसाद द्विवेदी

महिला सशक्तिकरण : अवधारणा, समस्याएँ एवं प्रयास 81
जितेन्द्र कुमार पाण्डेय

विद्यालयीन गतिविधियों में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता : मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में : एक अध्ययन 93
सन्दीप जोशी एवं अमित तिवारी

i"B

साम्प्रदायिक हिंसा के बदलते हुए चरित्र में एक नया अध्याय : गोपालगढ़ (भरतपुर), राजस्थान (13-14 सितंबर 2011) की घटना 106
शिम्पी पाण्डेय

कारागार में निरुद्ध महिला अभियुक्तों के साथ निवासरत् उनके बच्चों की स्थिति का सर्वेक्षण 116
प्रशान्त अग्निहोत्री एवं रुचि अग्रवाल

पुस्तक समीक्षा

अस्पृश्यता, जाति और गाँधी : एक समरसतापूर्ण समाज की चाह 139
कमल नयन चौबे

Yk[kd

प्रो. महेन्द्र प्रसाद सिंह– सम्पादक, इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एवं लोक प्रसाशन, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।

डॉ. मंजू देवी शर्मा– सह-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

डॉ. सीमा दास– सहायक-आचार्या, राजनीति शास्त्र विभाग, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. सोनू कुमार– सहायक आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, ए.आर.एस. डी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ. रवीन्द्र कुमार वर्मा– सह-आचार्य, राजनीतिशास्त्र विभाग राज नारायण कॉलेज, हाजीपुर, वैशाली।

डॉ. रमेश कुमार द्विवेदी– पोस्ट डाक्टरोरल फैलो, श्री निवास बहु उद्देश्यीय संस्था, नागपुर।

डॉ. जितेन्द्र कुमार पाण्डेय– सह- आचार्य, राजनीति शास्त्र विभाग, इन्दिरा गवरमेंट पी.जी. कॉलेज, लालगंज, मिर्जापुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. संदीप जोशी– आचार्य व नोडल ऑफिसर, आर.एम.एस.ए. मध्यप्रदेश, सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन, म.प्र.।

श्री अमित तिवारी– शोध अधिकारी, मध्य प्रदेश, सामाजिक विज्ञान शोध संस्थान, उज्जैन, म.प्र.।

डॉ. शिम्पी पाण्डेय– शोध छात्रा, राजनीति शास्त्र विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

डॉ. प्रशांत अग्निहोत्री– सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर एवं शोध अध्ययन शिक्षक विभाग, स्वामी शुकदेवानंद महाविद्यालय, शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश।

रुचि अग्रवाल– सहायक अध्यापक, अंगने लाल बालिका विद्यालय, शाहजहांपुर, उत्तर प्रदेश।

डॉ. कमल नयन चौबे– सह- आचार्य, दयाल सिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।

lEikndh;

लोक प्रशासन के इस अंक में दस लेख तथा एक पुस्तक-समीक्षा लेख संकलित हैं।

महेंद्र प्रसाद सिंह भारतीय राज्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सर्वेक्षण करते हुए पांच संक्रमणों अथवा रूपांतरणों का निरूपण व विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। ये पांच चरण हैं (1) प्राचीन भारत में राज्य के पूर्व की राज्य–रहित (पर अराजक नहीं) सामाजिक संरचना से राज्य का निर्माण; (2) विविध कालों में क्षेत्रीय राजतंत्र से उपमहाद्वीप राज्य का विकास; (3) केन्द्रीभूत अधिकारितांत्रिक व राजतांत्रिक मौर्य राज्य के पतन के बाद के राज्यों का सामंतवादी राजतंत्र में परिवर्तन; (4) मध्यकालीन सामंतवादी मुगल राजतंत्र के पतन के राज्यों का आधुनिक ब्रिटिश भारतीय आधिकारितांत्रिक राजतंत्र में रूपांतरण; तथा (5) ब्रिटिश भारतीय राज्य के अंत से स्वराज का आगमन।

मंजू देवी शर्मा भारतीय संघ के राजस्थान राज्य के प्रशासन में वित्तीय नियंत्रणकारी संस्थाओं के क्रियाकलाप एवं उनकी समस्याओं एवं समाधान के सुधारों पर विमर्श करती हैं। राजस्थान जैसे प्रमुख राज्य में अंकेक्षण की प्रक्रिया का यह हाल अत्यंत चिंता का विषय है। तात्कालिक प्रशासनिक सुधार अत्यावश्यक है।

सीमा दास भारत में राजनीतिक दलों की अलोतांत्रिक सरंचनाओं और क्रियाकलापों का विवरण प्रस्तुत करते हुए उन्हें नव–सामंतवाद की ओर जाते पाती हैं। भारतीय निर्वाचन आयोग तथा उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गये कुछ सुझावों व निर्देशों की वे चर्चा करती हैं, पर उन्हें पर्याप्त नहीं पाती हैं। नागरिक समाज के द्वारा कुछ भूतकालिक प्रयासों की भी चर्चा करती हैं। इस धारा का लगभग लोप हो जाना चिंता का विषय है।

ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान सभा ने, जिसने भारत में लोकतांत्रिक राज्य व प्रशासन की सारी समस्याओं पर वाद–संवाद कर निदान के रूप में विश्व का सबसे विस्तृत संविधान का निर्माण किया, दलों व दलीय व्यवस्था के स्वास्थ्य के बारे में कोई चिंता नहीं जताई है। यह बात सिर्फ नेहरू व पटेल पर ही नहीं, बल्कि अंबेडकर पर भी लागू होती है। यह किंचित् आश्चर्यजनक बात है। क्योंकि कांग्रेस पार्टी उस समय बहुत शक्तिशाली दल थी और स्यात् इस कारण नेहरू और पटेल का इस ओर ध्यान

नहीं गया। पर अंबेडकर की पार्टी तो उस समय बहुत कमजोर पार्टी थी। संभवतः कारण यह रहा कि संविधान सभा के शीर्ष नेता–गण उदारवादी लोकतंत्र में विश्वास करने वाले थे। मार्क्सवादी विचारधारा में साम्यवादी दल राज्य के ढांचे का अभिन्न अंग होता है, पर उदारवादी विचारधारा में राजनीतिक दल नागरिक समाज के अंग होते हैं। उनकी प्रथम भूमिका होती है नागरिक समाज तथा राज्य के बीच एक संयोजक कड़ी के रूप में काम करने की। यह भी एक तथ्य है कि पाश्चात्य विकसित लोकतांत्रिक देशों में राजनीतिक दलों का विकास संविधान और विधान के अंतर्गत न होकर नागरिक समाज में हुआ। इन्हीं कारणों से संविधान सभा ने राजनीतिक दलों के लोकतंत्रीकरण की समस्या को संविधान–निर्माण या विधि की परिसीमा से बाहर रखा।

लेकिन अब आकर समस्या दिन-ब-दिन और चिंतनीय होती जा रही है। लोक प्रशासन के इस अंक में एक अन्य लेख में सोनू कुमार राजनीतिक दलों एवं चुनाव–प्रक्रिया में व्याप्त तथा बढ़ते अलोकतांत्रिक दलीय संगठनों के राजनीतिक व्यवहार तथा भ्रष्ट आचरण तथा अपराधीकरण का, व्यापक आंकड़ों के साथ, भयावह चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

भारतीय निर्वाचन आयोग तथा न्यायपालिका के सत्प्रयासों से भारतीय चुनाव–प्रणाली में 1990 के दशक के उपरांत एक गुणात्मक परिवर्तन आ गया है, हालांकि अभी और भी सुधार अपेक्षित हैं।

पार्श्व में, राजनीतिक दलों व दलीय पद्धति की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है तथा स्थिति दिन-व-दिन बद-से-बदतर होती जा रही है। यह भारतीय लोकतंत्र के लिए आज सबसे बड़ा खतरा हो गया है। अतः यह अंत्यावश्यक हो गया है कि प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी सरकार द्वारा गठित संविधान समीक्षा के लिए राष्ट्रीय आयोग (अध्यक्ष जस्टिस एम.एन वेंकटचालिया) के रिपोर्ट के चतुर्थ अध्याय में संस्तुत अनुशंसाओं को शीर्ष प्राथमिकता के साथ नरेन्द्र मोदी सरकार लागू करे। (India Republic Report of the National Commission to Review the Working of the Constitution, http://lawmin.nic.in /nerwc/finalreport/volume1.htm.2002.)

वेंकटचालिया कमीशन ने अनुशंसा की है कि पार्टियों के लोकतांत्रिक गठन और कार्यकरण के लिए संसद द्वारा एक व्यापक कानून का निर्माण आवश्यक है। इसी में पार्टियों के बीच बने गठबंधनों के नियमन के भी प्रावधान होने चाहिए। इस कानून द्वारा प्रत्येक सर्वसमावेशी पार्टी के लिए यह आवश्यक होगा कि वह संविधान में निष्ठा के साथ प्रत्येक तीसरे वर्ष आंतरिक संगठनात्मक चुनावों द्वारा प्रत्येक स्तर–स्थानीय, जिला, राज्च व राष्ट्रीय–पर पार्टी का गठन व नवीकरण करे। प्रत्येक स्तर पर पार्टी संगठन में तथा विधायिका व संसद के चुनावों में महिलाओं को कम–से–कम 30 प्रतिशत आरक्षण देना आवश्यक हो। प्रत्येक पार्टी के लिए अपने आय तथा व्यय का

सार्वजनिक रूप से अंकेक्षणीय लेखा–जोखा भी रखना आवश्यक होगा। इस कानून के अंतर्गत पार्टियों व उनके गठबंधनों का पंजीकरण अनिवार्य होगा।

निर्वाचन आयोग द्वारा राज्य स्तरीय अथवा राष्ट्रीय दलों को मान्यता प्रदान करने के मानदंड को क्रमशः ऊंचा करते जा कर पार्टियों की अबाध संख्या को सीमित करने का सुझाव भी इस रिपोर्ट में दिया गया है।

यह भी अनुशंसा की गयी है कि अगर कोई पार्टी ऐसे उम्मीदवार को चुनावी टिकट देती है जिसके खिलाफ कोर्ट में आरोप स्वीकृत है या जो सजा पा चुका है, वो वैसे विधायक या सांसद को सदस्यता से निष्कासित कर उक्त पार्टी का पंजीकरण रद्द कर देना चाहिए।

पार्टियों को बाध्य न करते हुए उन्हें इस दिशा में प्रोत्साहित करने की भी इस रिपोर्ट में अनुशंसा की गयी है कि वे अपने राष्ट्रीय नेताओं के चयन के लिए राज्य–स्तर के दलीय संगठन के प्रतिनिधियों का राष्ट्रीय सम्मेलन बुलाएं। यह पद्धति संयुक्त राज्य अमेरिका तथा कनाडा में बीसवीं सदी के आरंभिक दशकों से जनांदोलनों की मांगों पर स्थापित हो चुकी है। पार्टियों की विचारधारा, नीतियों, संगठन प्रशिक्षण व शासन/प्रशासन के क्षेत्र में चिंतन व सुधार के लिए पार्टी संस्थानों (Party Foundations) का भी निर्माण करने की सलाह दी गयी है।

सरकार को भी यह सलाह दी गयी है कि वह निजी कारपोरेट सेक्टर को प्रोत्साहित करे कि वे पार्टियों को चुनावी फंड देने के लिए पब्लिक ट्रस्ट की स्थापना करें। कमीशन की राय में सरकार को स्वयं भी किसी के द्वारा पार्टी को एक निर्धारित सीमा तक अनुदान देने पर टैक्स–मुक्त छूट दें, और उस राजस्व में घाटे को सरकार द्वारा पार्टियों को पदत्त माने।

रवीन्द्र कुमार वर्मा भारतीय पर्यावरण राजनीति पर एक व्यापक एवं सुचिंतित लेख में इस क्षेत्र के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों/अभिसमयों, भारतीय नीतिगत घोषणाओं/विधायनों की समीक्षा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि इस दिशा में कुछ प्रगति के बावजूद अभी हमारे सामने काफी लंबी यात्रा शेष है। Green Governance में वे सरकार, नागरिक समाज, तथा निगमिक निजी व्यापार क्षेत्र की सम्मलित भूमिका को रेखांकित करते हैं। भूमंडलीय तापक्रम वृद्धि के कारण जलवायु परिवर्तन का मुद्दा उनके आलेख के सीमांकन के बाहर की समस्या रह गया है। यह उनके दूसरे आलेख का विषय बन सकता है।

रमेश प्रसाद द्विवेदी अपने आलेख में विकेंद्रीकृत जिला नियोजन की अवधारणा व प्रक्रिया का सांगोपांग ऐतिहासिक विकास तथा वर्तमान स्थिति का एक दस्तावेजी विवरण प्रस्तुत करते हैं। इस विषय पर अनुभव–सिद्ध अध्ययनों का सर्वेक्षण उनके दूसरे आलेख का विषय बन सकता है।

जितेन्द्र कुमार पाण्डेय महिला सशक्तिकरण के लिए किये गये नीतिगत एवं योजनागत प्रमुख अभियानों– 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ', सुकन्या समृद्धि योजना, आदि के साथ राष्ट्रीय नीतियों तथा अधिनियमों का वर्णन करते हैं, जैसे राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण नीति–2001, राष्ट्रीय महिला सशक्तिकरण मिशन, घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 2005, कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन प्रताड़ना से सुरक्षा विधेयक 2010, आदि। वे महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की गई नयी पहलों के अलावा महिला विकास के लिए स्थापित प्रमुख वैधानिक एवं स्वायत्त संगठनों का भी उल्लेख करते हैं।

संदीप जोशी एवं अमित तिवारी ने मध्य प्रदेश के दस चयनित जिलों में से प्रत्येक जिले से दो विकासखंड तथा प्रत्येक विकासखंड के दस विद्यालयों में प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण द्वारा इस पहलू का अध्ययन प्रस्तुत करते हैं कि किस हद तक जेंडर डिवाइड के परे सामाजिक समरसता का विकास हो रहा है। उनका निष्कर्ष है कि विद्यालयी परिवेश में तो इस दिशा में अपेक्षाकृत प्रगति दिखती है, पर समाज में इसका अभाव दिखता है।

शिम्पी पाण्डेय ने अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ध्वंस के बाद तथा गोधरा के दंगों की पृष्ठभूमि में राजस्थान के गोपालगढ़ में सितंबर 2011 के सांप्रदायिक दंगे का तथ्यपरक शोध–विवरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार यह एक नये प्रकार की सांप्रदायिक हिंसा की घटना है जहां भूमि–विवाद, जातीय समीकरण, तथा पुलिस प्रशासन का व्यवहार जटिल रूप से समस्या को संगीन तथा समाधान को मिल–जुलकर कठिन बना देते हैं।

ध्यातव्य है कि देश में आंतरिक आतंकवादी संगठनों की उत्पत्ति अयोध्या और गोधरा के बाद की घटना है। प्रशांत अग्निहोत्री एवं रुचि अग्रवाल उत्तर प्रदेश के शाहजहांपुर जिला जेल में बंदी महिला कैदियों के साथ रह रहे बच्चों की स्थिति व उनकी शिक्षा की समस्याओं का सर्वेक्षण प्रस्तुत करतें हैं। जेल, विशेषतः महिला वार्ड जहां बच्चे भी रहते हैं, अंडर–स्टाफ्ड है। शिक्षण के लिए एक स्वयं सेवी संस्था, जेल के अंदर की पाठशाला, तथा दो बच्चों के लिए एक बाहर के विद्यालय की सेवा उपलब्ध करायी जाती है। बच्चों के मनोरंजन/खेल की सुविधा, स्वास्थ्य–सेवा, खान–पान की व्यवस्था, वस्त्रादि की आपूर्ति अपेक्षाकृत संतोषप्रद है पर बच्चों के स्वतंत्र जीवन के मौलिक अधिकार का हनन हो रहा है। पिछले पांच वर्षों में कोई भी बच्चा किसी एन.जी.ओ. संस्था को नहीं सौंपा गया है। जेल में क्षमता से अधिक कैदियों के रहने के कारण सबके लिए स्थिति प्रतिकूल है। इन परिस्थितियों में भारतीय संविधान में स्थित मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों का उल्लंघन अत्यंत त्रासद वस्तु स्थिति है। इस दिशा में राज्य व नागरिक समाज का उत्तरदायित्व स्पष्ट है।

egUn ikBd flag

आधुनिक भारतीय राज्य की विकासवादी पृष्ठभूमि

महेन्द्र प्रसाद सिंह

भारतीय राज्य के ऐतिहासिक विकास तथा वर्तमान स्वरूप की समुचित समझ व व्याख्या के लिए पांच प्रमुख संक्रमणों अथवा रूपांतरणों का आकलन तथा निरूपण आवश्यक है। ये हैं :

1. प्राचीन भारत में राज्य के पूर्व की सामाजिक संरचना से राज्य का निर्माण;
2. विविध कालों में क्षेत्रीय राजतंत्र से उपमहाद्वीपीय राजतंत्र का विकास;
3. केंद्रीभूत अधिकारितांत्रिक व राजतांत्रिक मौर्य राज्य का सामंतवादी राजतंत्र में परिवर्तन;
4. मध्यकालीन सामंतवादी मुगल राजतंत्र का आधुनिक ब्रिटिश भारतीय अधिकारितांत्रिक राजतंत्र में रूपांतरण; तथा
5. ब्रिटिश राज से स्वराज।

I

प्रथम, अत्यंत प्राचीन काल में एक राज्य–पूर्व वाली सामाजिक संरचना का, जिसके आधार गोत्र तथा जनजातियाँ थीं, राज्य के रूप में परिवर्तन हुआ। यह प्रक्रिया उत्तर में वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल में, तथा दक्षिण में संगम काल में घटित हुई। पूर्ण संभावना है कि यह प्रक्रिया पूर्व–वैदिक काल में सिंधु घाटी की सभ्यता के अंतर्गत हड़प्पा, मोहनजोदाड़ो, व अन्य नगरों के पूर्व भी घटित हुई थी, जिसके फलस्वरूप वहां अनुमानतः या तो धर्मतांत्रिक अथवा गणतांत्रिक–कुलीनतंत्रीय राज्य विकसित हुआ (झा 1990: 3–4)। उपर्युक्त तीनों कालों के इतिहास के स्रोतों में एक विषमता हैः सिंधु घाटी की सभ्यता पर पुरातात्विक अवशेष प्राप्त हैं लेकिन कोई साहित्यिक ग्रंथ नहीं; पुरातात्विक अवशेषों पर खुदी लिपि भी अभी तक अज्ञात व अपठनीय है। वैदिक व वैदिकोत्तर काल की तथा संगम साहित्य के ग्रंथ उपलब्ध हैं, संस्कृत व तमिल लिपियों में तब से आज तक निरंतरता है, परंतु इन कालों के बारे

में पुरातात्विक सांस्कृतिक सामग्री अत्यल्प और अल्पसूचक हैं। साहित्यिक स्रोतों की ऐतिहासिक वस्तुपरकता भी कल्पना से रंजित हो सकती है। यह भी एक विरोधाभासी बात है कि नगरीय व औद्योगिक–व्यापारीय सिंधु घाटी की सभ्यता पशुचारी व ग्राम्य वैदिक व संगम काल की सभ्यताओं से पूर्वकालिक है! पर इतिहास का कालचक्र कभी समरैखिक तो कभी चक्रिक अथवा आवर्ती हो सकता है। इतिहासकारों ने सिंधु घाटी में हड़प्पा संस्कृति का काल–निर्धारण ईसा–पूर्व 2500–1550 के अंतर्गत किया है। ऋग्वैदिक काल ईसा–पूर्व 1500 से 900 तक तथा उसके बाद का वैदिक काल, जिसमें महाभारत का युद्ध (ईसा–पूर्व 900) और बाद के वेद तथा ब्राह्मण–ग्रंथ तथा उपनिषद् शामिल हैं, 900 से 500 ईसा–पूर्व के संयोजन माने गए हैं। मदुराई के साहित्य संगमों को ईशाब्द की आरंभिक सदियों की घटना कृति मानी गयी है (बाशम 1967: 463–4)।

सिंधु घाटी की तथा वैदिक संस्कृतियां भौगोलिक रूप से पूर्वोत्तर भूभाग में ही विकसित हुईं। संभवतः हड़प्पा व मोहनजोदाड़ो सिंधु संस्कृति के केन्द्रीय महानगर हों जिनकी परिधि पर के भाग महानगरों के प्राकृतिक आपदा से पतन के बाद आदिम अवस्था में पुनरावर्तित हो गये। बाद को, इन्हीं परिधीय क्षेत्रों में पशुचारी ऋग्वैदिक आर्यों का मध्य एशिया व दक्षिण रूस से स्यात यायावर आगमन हुआ। हालांकि यह अनुमान ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा पुष्टि का मोहताज है।

बहरहाल, वैदिक काल के आरंभिक व बाद के चरणों में भारतीय राज्य के इतिहास–लेखन में समाज की एक पूर्व–राज्य स्थिति सामान्य राजनैतिक सिद्धांत की उदारवादी तथा मार्क्सवादी दोनों परंपराओं में राज्य के उद्भव के पूर्व की सामाजिक स्थिति की अवधारणाओं के अनुरूप है। उदारवादी परंपरा में राज्य मूलतः एक सकारात्मक, पर मार्क्सवादी परंपरा में मूलतः एक शोषण व दमन की संस्था है। राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौते के सिद्धांत के अनुसार लोगों ने पूर्व–राज्यीय 'प्राकृतिक अवस्था' में व्याप्त अराजकता से बचने के लिए (हॉब्स); या लालच, संघर्ष, एवं असमानता से बचने के लिए (लॉक); अथवा संपत्ति की संस्था के विकास के बाद प्राकृतिक अवस्था में उपलब्ध स्वतंत्रता, आनन्द, समानता और स्वतंत्रता के, निजी संपत्ति के विकास के कारण, विलोप से उत्पन्न संताप से मुक्ति के लिए (रूसो) – सामाजिक समझौते के माध्यम से एक शासन की स्थापना की। मार्क्सवादी सिद्धांत के अनुसार इतिहास के आदि चरण में स्थित 'आदिम साम्यवाद' में व्याप्त संपूर्ण समानता के स्थान पर, निजी संपत्ति की प्रथा के विकास के कारण बढ़ती वर्ग–विषमता को बनाए रखने के लिए राज्य की संस्था का विकास करना आवश्यक हो गया।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज्य की उत्पत्ति का विश्व में सबसे पुराना सामाजिक समझौते का सिद्धांत प्राचीन भारतीय बौद्ध ग्रंथ *दीघ निकाय* में मिलता है। वैदिक ग्रंथों में राज्य की उत्पत्ति के दैवी सिद्धांतों के विपरीत इस ग्रंथ की स्थापना

है कि आदिम स्थिति में प्राकृतिक संपदा सबके लिए समान रूप से उपलब्ध थी और प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता के अनुसार उसका उपभोग करता था। पर बाद में निजी/वैयक्तिक संग्रह व संपत्ति बानाने की प्रकृति के कारण चोरी व संघर्ष के शमन के लिए एक जन–सभा कर के एक 'महासम्मत' का निर्वाचन किया गया। सब ने अपनी उपज/आय का छठा भाग महासम्मत को समर्पित कर उसे शासन का उत्तदायित्व सौंपा (*दीघ–निकाय* 1979: 243–45)।

भारतीय राज्य के इस काल के इतिहास–लेखन में एक व्याख्यात्मक मतभेद की झलक दिखाई पड़ती है। एक तरफ इतिहासकारों का एक समूह है, जिसे राष्ट्रवादी इतिहास के स्कूल में रखा जा सकता है; इसमें काशी प्रसाद जायसवाल (1943), अनंत सदाशिव अल्तेकर (1958), बेनी प्रसाद (1928), टी.के. वेंकटसुब्रामनियन (1996), रामशरण शर्मा के आरंभिक लेखन (1991) शामिल हैं। इनके लेखन में भारतीय राज्य और राष्ट्र का निर्माण अपने आदि रूप में वैदिक काल में ही हो गया था। वैदिक काल की संस्थाओं का ढांचा बौद्ध काल (ईसा–पूर्व 566–486, जब गौतम बुद्ध हुए, से लेकर ईसा–पूर्व 327–325 तक जब यूनानी सिकंदर के आक्रमण हुए) में क्रमशः अधिक वृहत व जटिल होता गया।

दूसरी ओर मार्क्सवादी इतिहास–लेखन का स्कूल है जिसमें रामशरण शर्मा की बाद की पुस्तकें, रोमिला थापर (1984, 1966); बी.एन.एस. यादव 1973; डी.एन. झा (2000), कुमकुम राय (1994) शामिल हैं। इनकी व्याख्या में भारतीय इतिहास में वैदिक तथा आरंभिक बौद्धकाल की पूर्व–राज्यीय सामाजिक संस्थाओं (जन, जनपद, गणसंघ, महाजनपद, इत्यादि) के मूल आधार पर राज्य की उत्पत्ति मध्य गंगा घाटी में ईसा–पूर्व प्रथम सहस्राब्दि (mid-first millennium B.C.) में हुई। रामशरण शर्मा (1989 : 41) के अनुसार 'राज्य का जन्म जनजातीय कृषि समाज में, एक ओर ब्राह्मण व क्षत्रिय तथा दूसरी ओर कृषक वैश्य वर्गों के संघर्षों के संदर्भ में हुआ।'

बौद्ध ग्रंथ *अंगुत्तर निकाय* में 16 महाजनपदों – अंग, असाका अथवा अस्मक, अवंति, चेदी, गांधार, काशी, कंबोज, कोशल, कुरू, मगध, मल्ल, मच्छ अथवा मत्स्य, पांचाल, सुरसेन, व्रिजी अथवा वैशाली, और वत्स अथवा वंस – का उल्लेख है। एक अन्य बौद्ध ग्रंथ *दीघ निकाय* में अंतिम चार का लोप कर प्रथम 12 महाजनपदों का उल्लेख है। इन में कुछ गणराज्य थे और कुछ राजतंत्र। पस्पर युद्धों में मगध सबसे प्रबल व विशाल होता गया। मार्क्सवादी इतिहास–लेखन में मगध में ही भारतीय इतिहास का प्रथम राज्य हरण्यक और नंद वंश के राजों के शासन–कालों में उदित हुआ। सिकंदर के आक्रमण के समय मगध का राजा महापद्म नन्द था। पंजाब में विजय के उपरांत सिकंदर मगध की ओर कूच करना चाहता था, पर उसके सैनिकों द्वारा इस अभियान के विरोध के कारण, पंजाब में सेल्युकस निकोटर को अपना प्रांतीय राजा नियुक्त कर, सिकंदर यूनान वापस चला गया। (प्रसंगतः पोरस का

जिक्र किसी प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक स्रोतों में नहीं मिलता। उसका उल्लेख यूनानी स्रोतों में Battle of Hydaspes के संदर्भ में हुआ है। पारिस्थतिक सूत्रों के अनुमातिन संयोजन से पोरस का संबंध कंबोज या गांधार से बैठता है, जो अब क्रमशः पाकिस्तानी पंजाब तथा अफगानिस्तान में हैं।)

भारतीय राज्य की उत्पत्ति के बारे में उपर्युक्त वर्णित राष्ट्रवादी एवं मार्क्सवादी व्याख्या के अतिरिक्त एक तीसरी उदारवादी इतिहास–दृष्टि संभव है। इसे राष्ट्रवादी व्याख्या के समरूप या पूरक भी माना जा सकता है। जन, जनपद, गण, गणसंघ, महाजनपद और अंततः नियमित राजस्व, अधिकारितंत्र, व सेना के साथ राज्य के अवतरण को एक गुणात्मक क्रांतिकारी रूपांतरण की एक पृथक घटना के रूप में देखने की मार्क्सवादी प्रवृत्ति के स्थान पर उदारवादी इतिहास–दृष्टि इसे एक क्रमशः विकासवादी घटना–चक्र के रूप में देखेगी। इन सब में शासनत्व (governance) व राजत्व (stateness) की मात्रा न्यूनांश से वृहत्तर या विकासशील रूप में देखी जा सकती है।

II

भारतीय राज्य के विकासवादी (evolutionary) इतिहासशास्त्र (historiography) में दूसरा संक्रमण या रूपातंरण जिससे हमारा सामना होता है वह है क्षेत्रीय राज्य का उपमहाद्वीपीय राज्य में विकास। सिंधु घाटी की सभ्यता की ऐतिहासिक निरंतरता किन्हीं कारणों से टूट गयी पर वैदिक काल से भारतीय इतिहास की तिरंतरता अटूट है। तब से आज तक के साढ़े तीन हजार से अधिक वर्षों के इतिहास में भारत में अधिकांशतः आरंभ में स्थानीय चरित्र का शासनतंत्र रहा तथा बाद में क्षेत्रीय राज्यों का प्रभुत्व रहा। इनके अलावा दो प्रकार के राज्य और हुए। इन्हें उपमहाद्वीपीय राज्य तथा अर्ध–उपमहाद्वीपीय राज्य कहा जा सकता है। अर्ध–उपमहाद्वीपीय राज्यों में हम गुप्त राज्य, विजयनगर, तथा दिल्ली सल्तनत को रख सकते हैं। गुप्त राज्य ने 220 वर्षों तक, विजयनगर ने 229 वर्षों तक, और दिल्ली सल्तनत ने 334 वर्षों तक शासन किए। भारतीय इतिहास में वृहत् उपमहाद्वीपीय राज्य सिर्फ तीन हुए : मौर्य, मुगल, तथा ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य। इनमें से मौर्यों ने 149 वर्ष तक, मुगलों ने 331 वर्षों तक, तथा अंग्रेजों ने 190 वर्षों तक शासन किए। इस प्रकार, लगभग अखिल भारतीय स्तर के राज्य भारतीय स्वाधीनता के पूर्व हिंदुस्तान में लगभग सात शताब्दियों तक ही रहे।

क्षेत्रीय राज्यों का वृहत्तर अर्ध–उपमहाद्वीपीय या उपमहाद्वीपीय राज्यों में परिवर्तन तथा प्रत्यावर्तन होता रहा। इस एकीकरण की प्रक्रिया के पीछे कौन–सी शक्तियाँ कारक–तत्व के रूप में काम कर रही थीं? इस प्रश्न का उत्तर ढूंढ़ना भारतीय राज्य व राष्ट्र के निर्माण के इतिहास को समझने के लिए आवश्यक है। इस प्रक्रिया में दबाव या सैन्य आक्रमण – देशी अथवा विदेशी – की भूमिका नगण्य नहीं होते हुए

भी, अंतिम विश्लेषण में, सहमति, सहयोग, व समझौते के कारक तत्वों का योगदान ज्यादा महत्वपूर्ण होकर शेष रह जाता है। 'विविधता में एकता' की भारतीय सूक्ति निरर्थक नहीं है। यह आकस्मिक नहीं है कि हिंसात्मक युद्ध तथा निरंकुश सत्तावादी शासन के बदले अशोक मौर्य ने 'धर्म विजय', मुगल अकबर ने इस्लाम से परे 'दीन–ए–इलाही', तथा ब्रिटिश महारानी विक्टोरिया ने विधि का शासन तथा 'Crown in Parliament' की नीति व शासनतंत्र को अपनाया।

क्षेत्रीय राज्यों के उपमहाद्वीपीय राज्यों में बारंबार परिवर्तन की प्रक्रिया में हिन्दुस्तान के विशिष्ट भूगोल, इतिहास, तथा उसकी संस्कृति की भूमिका उल्लेख्य है। उत्तर में हिमालय एवं दक्षिण में हिन्द महासागर के सीमांतों से घिरा भारत भूभाग ने यहां के सामाजिक व सांस्कृतिक विन्यास को एक प्राकृतिक सांचे की तरह गठित किया है अथवा ढाला है। राजनैतिक भूगोलवेत्ता रमेश दत्त दीक्षित (1982: 252) के शब्दों में : 'लंबी दूरियों तथा मौसम एवं भौगोलिक अंतरों के बावजूद, प्रकृति भारत को सर्वथा पृथक ईकाइयों में विभक्त नहीं करती। अधिसंख्य भौगोलिक लक्षण एक क्षेत्र को दूसरे क्षेत्र से आहाते के बाड़े की तरह अलग करते हैं, मोरचाबंद संपूर्ण अवरोधक की तरह नहीं। कटरे निजता के संरक्षण में तो समर्थ थे, पर इतने ऊंचे भी नहीं थे कि दूसरी ओर की गतिविधियों की संचेतना को पूर्णतः अवरुद्ध कर दें। इस प्रकार, विविध क्षेत्रीय अस्मिताओं के बावजूद उनमें अंतर्निहित सांस्कृतिक एकता सर्वदा जीवित रही।'

आधुनिक समाज विज्ञान में राष्ट्रवाद (nationalism) को एक आधुनिक चेतना माना जाता है, जिसके अठाहरवीं सदी यूरोप में उदय में, अन्य कारकों के साथ, छापाखाना पूंजीवाद (print capitalism) की महत्वपूर्ण भूमिका पायी गयी है। तथापि राष्ट्र यदि इतिहासकार की दृष्टि में आधुनिक है तो राष्ट्रवादी की दृष्टि में पुरातनिक या सनातनी है (ऐंडरसन 1991: 7–8)।

ऊपर वर्णित भारत के भूगोल व इतिहास की विशिष्टता के फलस्वरूप, विशाल क्षेत्र की विविधताओं के बावजूद उसमें एक सर्वांग एकता भी परिव्याप्त है। विश्व के सभी प्रमुख धर्मों की उपस्थिति के बावजूद जनसंख्या में बहुसंख्यक हिंदु अनुपात 80.5 प्रतिशत (2001) है। मुसलमानों का अनुपात 13.5 प्रतिशत, ईसाइयों का 2.3 प्रतिशत, एवं सिखों का 1.9 प्रतिशत है। भारत में चार छोटे–बड़े भाषाई परिवार हैं– इंडो–यूरोपीय (उत्तर भारतीय भाषाएं) द्रविड़ (दक्षिण भारतीय भाषाएं), तिब्बेतो–बर्मन (उत्तरपूर्व की भाषाएं), तथा जनजातीय (आंतरिक आदिवासी क्षेत्रों की भाषाएं)। हिंदी भाषी जनसंख्या के 41.03 प्रतिशत हैं। सविधान में 22 अनुसूचित भाषाओं में दूसरे स्थान पर बंगला–भाषी हैं जिनका अनुपात 8.11 प्रतिशत है। (2011 जनगणना के आंकड़े सरकार ने इस लेखन–जून 2015–तक प्रकाशित नहीं किए हैं!)

दूसरे धर्मों की तरह हिन्दुओं में भी जाति का विभेद है। हिन्दु समुदाय भाषा के

आधार पर भी विभाजित है। इन कारणों से भारतीय समाज में बहुलसांस्कृतिक व बहुलवादी राजनैतिक प्रवृत्तियों को बल मिलता है। संघात्मक राष्ट्रवाद को भी।

भारतीय भूगोल की तरह भारतीय इतिहास की भी एक विशिष्ट विकास प्रकिया व दर्शन है, जिसने भारतीय राज्य के निर्माण को प्रभावित किया है। भारतीय इतिहास में प्रत्येक बड़ा शासक उपमहाद्वीपीय राज्य की स्थापना की महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित रहता था। इतिहास के प्रक्षेप–पथ पर इसके निशान भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ, *अमरकोश* में चक्रवर्ती सम्राट की परिभाषा –'चक्रवर्ती सार्वभौमो नृपोऽन्यो मंडलेश्वरः' (वर्ग 8, लोक 2, पृ. 186); बौद्ध स्रोतों में 'चक्रवर्ती' की अवधारणा, कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में राज्य के 'धर्मन्याय' की अवधारणा जिसे शास्त्रों के न्यायों से ऊपर प्रस्तावित किया गया है, तथा मौर्य सम्राट अशोक का 'धम्म' (थापर 1997); मुगल शासक अकबर की 'सुलह–ए–कुल' की नीति (स्ट्रियूसैंड 1989); मराठा राज्य का 'आज्ञापत्र' (विंक 1956); तथा ब्रिटिश भारतीय राज्य का संप्रभुता सिद्धांत जिसके अंतर्गत देशी राजों के ऊपर ब्रिटिश राजमुकुट की सर्वोपरिता वैध थी (रामुसैक 2004)। इस ऐतिहासिक विकास का परमोत्कर्ष भारतीय संविधान (1950) के अंतर्गत स्थापित भारतीय राष्ट्रीय व संघीय राज्य के रूप में देखा जा सकता है।

III

भारतीय इतिहास के तीसरे महत्वपूर्ण संक्रमण के फलस्वरूप सामंतवादी राज्य का उदय हुआ। भारतीय राज्य के इतिहासशास्त्र में सामंतवाद का उद्भव केन्द्रीभूत अधिकारितांत्रिक-राजतांत्रिक मौर्य राज्य (ईसापूर्व तीसरी व दूसरी शताब्दी) के पतन के बाद हुआ। शक-कुशान, सातवाहन (ईसापूर्व 50–250 ईसाब्द), गुप्त वंशीय (320–540 ईसाब्द) राजों के शासन-काल में केन्द्रीय राज्य की शक्ति में गिरावट के कारण राजा को अपनी संप्रभुता को विभाजित कर क्षेत्रीय अभिजात्यों को उसमें सहभागी बनाना पड़ा। इन नये आंतरिक सत्ताधारियों को सामन्त वर्ग के रूप में अभिहित किया गया। राजशक्ति में इस सहभागिता को भूभाग-अनुदान (land grant) की पद्धत्ति के द्वारा क्रियान्वित किया गया। ब्राहणों को प्रायः कर-मुक्त भूमि अनुदान दी गयी, पर अन्य सामंतों को केन्द्रीय राज्य के प्रति कर-भुगतान तथा अनुदत्त भूभाग में कर-वसूली व प्रबंधन तथा केंद्रीय राज्य के अधीन प्रशासन, सैनिक व्यवस्था आदि के उत्तरदायित्व के साथ भूभाग-अनुदान दिया गया।

सामंतवादी व्यवस्था दिल्ली सल्तनत (1992–1525 ईसाब्द) तथा मुगल राज्य (1526–1857 ईशाब्द) के दौरान जारी रही। सामंतों को दिल्ली के सुलतानों तथा मुगल बादशाहों के शासन के अंतर्गत क्रमशः इक्टादार तथा जागीरदार कहा जाता था। जागीरदारी प्रथा मुगलोत्तर मराठा, सिख, जाट, तथा अफ़गान राज्यों में भी चलती रही, जिसे ब्रिटिश राज ने समाप्त किया। ईशाब्द 1757 से 1858 तक भारत पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन रहा, तथा 1858 से 1947 तक ब्रिटिश

साम्राज्यवादी राज्य ने भारत पर सीधे अथवा प्रत्यक्षतः राज किया। भूमि-व्यवस्था की नीतियों में इन दोनों कालों में कतिपय परिवर्तनों के साथ बुनियादी निरंतरता रही। ब्रिटिश राज ने सामंतवाद को पूर्णतः समाप्त नहीं किया। जागीरदार कहे जाने वाले बड़े सामंतों को तो उन्होंने विस्थापित कर दिया, पर छोटे स्थानीय जमींदारों को नवजीवन का एक नया पट्टा दे दिया। जमींदार वर्ग किसान और राज्य के मध्य राज्य के लिए कर वसूलने वाले एक वार्षिकीभोगी वर्ग के रूप में रह गया। पहले यह काम वे जागीरदारों के लिए करते थे और जागीरदार अपने ऊपर राजा के प्रत्यक्ष अथवा सीधे एजेंट थे।

मार्क्स ने सामंतवादी उत्पादन पद्धति (feudal mode of production) की अपनी अवधारणा का प्रयोग यूरोपीय इतिहास में किया था। भारतीय इतिहास के संदर्भ में उसने एशियाई उत्पादन पद्धति (Asiatic mode of production) की प्राक्कल्पना की थी। दामोदर धर्मानन्द कोशांबी (1956: 294) ने मार्क्स की इस स्थापना को चुनौती देते हुए भारतीय संदर्भ में भी सामंतवाद के दो पहलुओं की ओर ध्यान आकर्षित करने में पहलकदमी की। उन्होंने अपने क्षेत्र में उच्चस्तरीय सामंती श्रेणी द्वारा शुल्क या कर प्राप्त करने की प्रथा को 'ऊपर से सामंतवाद' ('feudalism from above'), तथा ग्राम्य स्तर पर इस प्रकार की प्रथा को 'नीचे से सामंतवाद' ('feudalism from below') की संज्ञा दी। कोशांबी की इस अग्रगामी इतिहास दृष्टि का (हालांकि वे औपचारिक रूप से प्रशिक्षित इतिहासकार होने के बजाय सांख्यकीविद् थे) अनुसरण करते हुए इतिहासकार रामशरण शर्मा, रोमिला थापर, बी.एन.एस. यादव, डी.एन. झा, आदि ने भारतीय सामंतवाद के इतिहासशास्त्र को तथ्यपरक शोध व सैद्धांतिक परिष्कार द्वारा विकसित किया (कुल्क 1995)। भारतीय सामंतवाद में सुधार की जो शुरुआत ब्रिटिश राज ने की थी उसकी परिणति स्वतंत्र भारतीय राज्य में जमींदारी उन्मूलन से हुई।

मौर्य राज्य की विशाल महामात्य/महामत्त प्रणाली, जो केन्द्रीय राज्य के वेतन-प्राप्त अधिकारीतंत्र थी, की ही तरह मुगल राज्य में अकबर ने मनसबदारी प्रणाली की स्थापना कर जागीरदारी प्रणाली को समाप्त करने का प्रयास किया था। पर इस प्रयास में उसे पूर्ण सपफलता नहीं मिली। बाद में आंशिक रूप से निर्मित मनसबदारी प्रथा को जागीरदारी प्रथा ने फिर विस्थापित कर दिया।

सामंती वर्ग को राज्य के वेतनभोगी अफसरों द्वारा विस्थापित करने में ब्रिटिश राज अपेक्षाकृत ज्यादा सफल रहा। परन्तु वे भी यह सुधार सिर्फ औपनिवेशिक राज्य द्वारा प्रत्यक्ष रूप से शासित ब्रिटिश हिन्दुस्तानी प्रांतों में ही कर पाए। ब्रिटिश राज की सर्वोपरिता के नीचे हिन्दुस्तानी राजाओं या नवाबों द्वारा प्रत्यक्षतः शासित देशी रियासतों में सामंतवादी प्रथा पूर्णतः जारी रही।

भारतीय सामंतवादी ऐतिहासिक व्याख्या के प्रवर्तक इस सिद्धांत को दक्षिण

भारत के इतिहास में भी उपयुक्त मानते हैं (शर्मा 1990)। लेकिन बर्टन स्टाइन (1980, n.d.) दक्षिण भारत के इतिहास के लिए एक वैकल्पिक सिद्धांत, खंडयुक्त राज्य (segmentary state), को उपयुक्त मानते हैं; बल्कि वे उत्तर भारतीय इतिहास के लिए भी इसे तर्कतः ज्यादा सटीक मानते हैं। इस सखंडीय राज्य के मॉडल में राजा अपनी पिरामिडी रस्मी संप्रभुता के साथ क्षेत्रीय खंडों में अवस्थित नट्टारों/नायकों से घिरा था, जो सामंती मॉडल में सामंतों/जागीरदारों से तुलनीय, पर ज्यादा स्वायत्त थे। स्टाइन का सखंडीय राज्य का सिद्धांत जनजातीय अफ्रीकी नृजातीय इतिहास के क्षेत्र में नेडल तथा साउथॉल के अग्रगामी सिद्धांतीकरण से अनुप्रेरित है। स्टाइन ने विजयनगर राज्य पर अपनी पुस्तक (n.d.) में उत्तर भारतीय सामंतवादी इतिहास-विद्या से, दक्षिण भारत के अपने सखंडीय राज्य के मॉडल को, ज्यादा स्पष्टता से अंतर इस आधार पर करता है कि नायक, मुगल जागीरदारों की तुलना में केंद्रीय राज्य के नियंत्रण से व्यवहारतः स्वतंत्र थे; साथ ही दक्षिण में बाजार में विक्रय हेतु पण्य पदार्थ अथवा माल का उत्पादन प्रतीयमानतः ज्यादा सधन तथा व्यापक था।

परंतु दक्षिण अथवा उत्तर भारत, दोनों ही संदर्भों में स्टाइन द्वारा प्रस्तावित सखंडीय राज्य के सिद्धांत के खिलाफ शर्मा (1989–90) तर्कतः अन्य कई महत्वपूर्ण विन्दु उठाते हैंः 'राज्य संबंधी हमारी समझ साउथॉल से बुनियादी तौर पर भिन्न है। राज्य-विषयक उसकी अवधारणा नेडल पर आधारित है, जिसमें न तो नियमित या सतत कराधान प्रणाली है और नाहीं पेशेवर स्थायी सेना, हालांकि सार्वजनिक अधिकारितंत्र की उसमें उपस्थिति है। साउथॉल केंद्रीय नियंत्रण व संप्रभुता के महत्त्व पर जोर देता है। रस्मी आडंबर से परे राज्य की संप्रभुता पर व्यावहारिक रूप से अमल सतत कर-रोपण एवं स्थाई सेना के अभाव में संभव नहीं है। अतः सखंड राज्य परस्पर विरोधी तथा नकारात्मक पद या शब्द हैं।' प्रतीत होता है कि स्टाइन और शर्मा के बीच विवाद तथ्यों के बदले प्रमेय पर ज्यादा आधारित है। निष्कर्ष तथ्यों के अभाव में अभी अनिर्णीत प्रतीत होता है।

अतिरिक्ततः, मध्यकालीन उत्तर भारतीय सामंतवादी मॉडल में भी परेशान करने वाले छिद्र अथवा अनुत्तरित प्रश्न रह जाते हैं। इसमें सामंतीकरण तथा अधिकारितंत्रण की मात्रा का निर्धारण मुश्किल प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ, डगलास स्ट्रियूसैंड (1989) तथा एस.ए.ए. रिजवी (1993) के शोधों के आधार पर मनसबदारी तथा जागीरदारी प्रणलियों के बीच स्पष्ट अवधारणात्मक व तथ्यात्मक अंतर करना एक दुर्गम कार्य है। हो सकता है कि यह अपूर्णता इन संस्थाओं की अंतर्निहित जटिलता के कारण है। शासकों की मंशाओं और उद्देश्यों के आधार पर मनसबदारी प्रणाली को बादशाह की शक्ति के उपकरण के रूप में निर्मित किया गया, जबकि जागीरदारी प्रणाली क्षेत्रीय अभिजन वर्ग की स्वायत्तता या

स्वतंत्रता में वृद्धि करता था। इन दो प्रणालियों की पूर्ववर्तिता हिंदुस्तान में मौर्य महामात्य प्रणाली तथा सामंतवादी प्रथा में, तथा बाहर इस्लामी देशों में टर्क-मंगोल 'नौकरी प्रथा' और आटोमन 'सैन्य दास प्रथा' में, एक ओर, तथा दूसरी ओर साफावी पशुचारी जनजातीय सरदारों अथवा 'अमीरों' की परंपरा में देखी जा सकती है। रिजवी (1993: 177–78) द्वारा दिए गये ब्योरे के अनुसार कुछ आनुशंगिक कालों के बारे में उपलब्ध आंकड़े बताते हैं कि 500 या अधिक घुड़सवार सैनिकों के संचालक मनसबदारों की संख्या 1647 ई. में 445 थी जिनपर 60 प्रतिशत जमा या राजस्व का व्यय था। जहांगीर की ताजपोशी के समय मनसबदारों की संख्या 2,941 थी। शाहजहां के शासन के 20वें वर्ष में 8,000 मनसबदार तथा 7,000 अहदी (सीधे बादशाह के कमान के अंदर) थे। लेकिन रिजवी मनसबदारों एवं जागीरदारों के बीच अंतर के बारे में स्पष्ट समझदारी नहीं देता। उसके अनुसार 'कुछ मनसबदार साम्राज्य के खजाने से नकद वेतन पाते थे, पर आम तौर पर उन्हें जागीर दी जाती थी जिसकी अनुमानित रकम उनके 'जाट' तथा 'सवार' ओहदों के अनुरूप देय तनख्वाह के बराबर होता था। वतन के बदले दी गयी जागीर को तनख्वाह जागीर कहा जाता था। क्षेत्रीय जागीरदारों को मनसब भी दिया जाता था और उनका वतन उनके अधिराज्य, जिसे वेतन जागीर कहते थे, के तुल्य होता था। वेतन जागीर के अतिरिक्त कुछ क्षेत्रीय अभिजनों को, उनके गुण व सेवा के अनुरूप, बादशाही भूभाग में तनख्वाह जागीर भी दी जाती थी' (रिज़वी 1993: 177)।

भारतीय सामंतवाद के इतिहासशास्त्र में राजनैतिक व आर्थिक दोनों पक्ष के संबंधों में व्यापक अस्पष्टताएं हैं। इतिहासकार सतीशचंद्र (1996: 192) के अनुसार सत्रहवीं व अठारहवीं सदी के संक्रमण काल में जागीरदारी प्रणाली में व्याप्त संकट में पूर्व-औपनिवेशिक भारत में पूंजीवादी व्यवस्था का प्रथम चरण प्रकट हुआ। लेकिन उनके अनुसार हमारी जानकारी की मौजूदा स्थिति में मूलभूत प्रश्नों के उत्तर देने में हम अभी असमर्थ हैं।

IV

भारतीय राज्य के इतिहास में चौथा प्रमुख रूपांतरण है मध्यकालीन भारतीय राज्य से ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य का विकास। ब्रिटिश व मुगल अनुवांशिक अथवा पैत्रिक अफसरशाही (patrimonial bureaucracy) की परंपराओं से तत्व या तंतु लेकर कुछ सुधार के साथ अंग्रेजों ने भारत में एक औपनिवेशिक राज्य का ढांचा खड़ा किया जिसके शिखर पर का प्रशासक एक ही व्यक्तित्व में दो पद मिश्रित करता था – भारतीय प्रांतों के शासक के रूप में वह गवर्नर जेनेरल कहलाता था तथा देशी रियासतों के शासक के रूप में वाइसरॉय। साम्राज्य के सर्वोपरि स्तर पर वेस्टमिंस्टर में स्थित 'संसद में राजमुकुट' (Crown-in-Parliament) के शासनतंत्र में वह भारत के

लिए सेक्रेटरी ऑफ स्टेट के अधीन था, जो ब्रिटिश मत्रिमंडल में एक कैबिनेट मंत्री था। केंद्रीय स्तर पर गवर्नर जेनेरल तथा प्रांतों में गवर्नरों के अंदर ब्रिटिश राज ने हिंदुस्तान में योग्यता अथवा अर्हता पर आधारित पहले असैनिक तथा सैनिक अधिकारितंत्रों का निर्माण किया।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन-काल के दौरान का अधिकारितंत्र आश्रित व भ्रष्टाचारी था। 1793 के इंडिया ऐक्ट तथा उसी वर्ष के चार्टर ऐक्ट के अंतर्गत ये अधिकारी कंपनी के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स के द्वारा इस प्रमाणपत्र के साथ नामित होते थे कि उन्हें मनोनीत करने के लिए कोई रकम नहीं ली गयी है। इन अफसरों के प्रशिक्षण के लिए कंपनी ने शुरू में कलकत्ता में तथा बाद में लंदन में ट्रेनिंग कॉलेजों की स्थापना की। 1833 के चार्टर ऐक्ट के अंतर्गत एक सीमित प्रतियोगी परीक्षा भी नामित अफसरों में से चयन के लिए शुरू की गयी।

1857 के विद्रोह के बाद भारत में 1858 में ब्रिटिश राज के प्रत्यक्ष शासन ने कंपनी के व्यापारियों द्वारा भ्रष्ट शासन को विस्थापित कर दिया। तब एक सिविल सर्विस कमीशन द्वारा ब्रिटेन में हिंदुस्तानी अफसरों का चयन किया जाने लगा। लेकिन शुरू में सिर्फ अंग्रेज ही इन उच्च कॉविनैंटेड सेवाओं में शामिल हो सकते थे, और बाद में जब हिंदुस्तानियों को प्रवेश दिया भी गया तो उन्हें लंदन जाकर परीक्षा देनी पड़ती थी। अंग्रेजी शिक्षा–प्राप्त भारतीय मध्य वर्ग की मांग पर 1870 में एक संसदीय विधान के अंतर्गत एक सिविल सर्विस स्थापित की गयी। 1892 में एक प्रमुख प्रशासनिक सुधार के अंतर्गत संसदीय विधान के अंतर्गत स्थापित सिविल सर्विस समाप्त कर दी गयी। पूर्वतः स्थित कॉविनैंटेड सिविल सर्विस को इंडियन सिविल सर्विस (ICS) के नाम से गठित कर दी गयी, तथा नॉन–कॉविनैंटेड सिविल सर्विस को प्रांतीय सिविल सर्विस बना दिया गया। 1922 से आई.सी.एस. की परीक्षा भारत में भी होने लगी। 1941 तक इस सर्विस कैडर में भारतीयों की संख्या अंग्रेजों से अधिक हो गयी। इस तरह की पहली परीक्षा 1922 में इलाहाबाद में हुई। स्वतंत्रता के बाद भारतीय शासन ने इन सेवाओं को कतिपय सुधारों के साथ अपना लिया।

ब्रिटिश औपनिवेशिक राज्य ने आधुनिक काल में प्रशासनिक तंत्र के प्रभुत्व के अंतर्गत विधायिका प्रक्रिया में भी भारतीयों को आरंभ में मनोनयन के द्वारा, और बाद में सीमित मताधिकार द्वारा प्रतिनिधित्व के माध्यम से क्रमशः सीमित राजनैतिक शक्तियां भी प्रदान करने में पहल की। 1892 के भारतीय परिषद अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय परिषदों की सदस्यता एवं उनकी शक्ति कुछ बढ़ा दी गयी। ब्रिटिश भारतीय सरकार द्वारा मनोनीत कुछ हिंदुस्तानियों को भी शामिल किया गया।

बीसवीं सदी के आरंभ के बाद ब्रिटिश भारत में संविधान सुधार के क्षेत्र एवं गति दोनों में विस्तार हुआ तथा ब्रिटिश संसद द्वारा क्रमशः 1909, 1919 तथा 1935 में भारत में संविधान सुधार अधिनियम पारित कर सीमित मतदान के अधिकार, सीमित

शक्तियों के साथ प्रतिनिधि शासन, एवं सीमित संघीय शासन के प्रयोग के दावे किए गये। क्षेत्रीय मतदाता मंडल के स्थान पर धार्मिक और नृजातीय निर्वाचक मंडल के प्रयोग कर के राष्ट्रीय एकता को भंग कर सांप्रदायिकता की आग भड़काई गयी। पहली बार 1909 में इस प्रकार का मताधिकार दिया गया, और बाद में उसे क्रमशः बढ़ाया गया। समान मताधिकार के स्थान पर अल्पसंख्यकों को भारित (weighted) मतदान का अधिकार देकर सांप्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया। 1919 के अधिनियम में प्रांतीय स्तर पर अफसरों व निर्वाचित मंत्रियों का (Reserved) 'आरक्षित' एवं 'हस्तांतरित' या (Transferred) विषयों (federal) में द्वैध शासन (dyarhy) का प्रयोग किया गया। 1935 के अधिनियम में प्रांतीय स्तर पर संघीय संविधान के अंतर्गत स्वायत्त उत्तरदायी (responsible to ligislature) सरकारें बनीं, और केन्द्रीय स्तर पर द्वैध शासन का प्रयोग प्रस्तावित किया गया। पर ब्रिटिश इंडियन प्रांतो एवं देशी रियासतों के बीच प्रस्तावित संघ का निर्माण हो नहीं पाया। संघ प्रांतों के लिए अनिवार्य था, पर रियासतों के लिए वैकल्पिक, जिनमें से कम–से–कम पचास प्रतिशत की स्वीकृति आवश्यक थी। ऐसा हो नहीं सका। अतः संघीय संविधान का केंद्रीय भाग क्रियान्वित नहीं हो पाया। सिर्फ प्रांतीय भाग लागू हुआ, लेकिन उस स्तर पर भी अधिसंख्य प्रांतों में, जहां कांग्रेस सरकारें निर्वाचित हो कर सत्तासीन थीं, द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने और बिना अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से सलाह–मशविरा किए ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को युद्ध में शामिल घोषित कर दिए जाने के विरोध में, कांग्रेस सरकारों ने त्यागपत्र दे दिए।

बीसवीं सदी के दूसरे दशक के मध्य तक जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलन व्यापक जनांदोलन के रूप में परिणत होता गया, औपनिवेशिक राज्य की उपर्युक्त संस्थानगत राजनीति गौण होती गयी। सीमित संवैधानिक संशोधन राष्ट्रवादियों की मांगों को संतुष्ट नहीं कर पाये। होम रूल अथवा कनाडा या ऑस्ट्रेलिया जैसे डोमिनियन स्टैटस जैसा स्वराज (जिसकी एक विस्तृत रूपरेखा मोतीलाल नेहरू कमिटी रिपोर्ट, 1928, में पेश की गयी थी) की मांगें पीछे छूट गईं। अखिल भारतीय कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन (1930) में 'पूर्ण स्वराज' तथा कराची अधिवेशन (1931) में सामाजिक–आर्थिक ढांचे में बुनियादी परिवर्तन के प्रस्ताव पारित किये गये। कराची प्रस्ताव स्वतंत्र भारत के संविधान (1950) में सन्निहित मौलिक अधिकारों तथा राज्य के नीति–निर्देशक सिद्धांतों का अग्रगामी दस्तावेज है। इस प्रकार, स्वतंत्र भारतीय राज्य एवं नागरिक समाज व अर्थतंत्र पर स्वाधीनता संघर्ष के दौरान ही एक मूलभूत राष्ट्रीय सहमति तैयार हो चुकी थी।

राजनैतिक आर्थिकी के बिंदु पर, औपनिवेशिक भारत में सामंतवादी व्यवस्था के पूंजीवादी व्यवस्था में संक्रमण की दिशा में महत्वपूर्ण शुरुआत हुई। देशी रियासतों के बदले यह प्रक्रिया ब्रिटिश भारतीय प्रांतों में स्पष्टतः देखी जा सकती है, जहां जागीरदारी प्रथा को समाप्त कर दी गयी। कलकत्ता यूरोपीय पूंजी तथा मुंबई देशी

पूंजी के केंद्र के रूप में उभरे। लेकिन पूंजीवादी विकास का यह स्वरूप ब्रिटिश साम्राज्यवादी पूंजीवाद के प्रभुत्व के अंतर्गत भारत में औपनिवेशिक पूंजीवाद के रूप में आरंभ हुआ। फलस्वरूप, भारत यूरोपीय पूंजीवादी उद्योगों के लिए कच्चे माल के स्रोत तथा बाहर उत्पादित पण्य पदार्थों के बाजार के रूप में विकसित हुआ। औपनिवेशिक पूंजीवाद के विकास के परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था का विकसित पाश्चात्य पूंजीवाद के महाकेंद्रों के साथ निर्भरता की परिस्थिति में एकीकरण हुआ (बागची 1982: 91)। स्वतंत्र भारतीय राज्य ने इस स्थिति में आमूल परिवर्तन लाने का प्रयास किया।

V

उत्तर-औपनिवेशिक उदारवादी-लोकतांत्रिक भारतीय राज्य ऊपर विश्लेषित जटिल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से निकला है। स्वतंत्र भारतीय राज्य की तात्कालिक संरचना के स्रोत भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन, ब्रिटिश राज, तथा ब्रिटिश राष्ट्रमंडलीय व अमेरिकी संविधानवादों में पाया जा सकता है। पर भारतीय इतिहास में राज्यों के विकास की ऊपर वर्णित व्याख्या के बिना हमारी समझदारी अपूर्ण रहेगी। यह बात भारत जैसे ऐतिहासिक राज्य के लिए ज्यादा प्रासंगिक है, जिसके विकास की एक सुदीर्घ अवधि एवं उसकी निरंतरता के महत्वपूर्ण सूत्र हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय इतिहास में संप्रभुता राज्य के केंद्रीय भागों में क्रिस्टलीत (crystalised) रही है, पर परिधीय क्षेत्रों में अपेक्षाकृत विकीर्णित अथवा प्रसारित (diffused)। शक्तिशाली राज्य अधिकांशतः केंद्रीकृत होते हुए भी विकेंद्रीकरण के लक्षण से सर्वथा रिक्त नहीं थे। संप्रभुता के इस विन्यास की एक ऐतिहासिक अभिव्यक्ति कौटिल्य के अर्थशास्त्र में प्रतिपादित 'सप्तांग राज्य' तथा 'राजमंडल' के सिद्धांत हैं; ये भारतीय उपमहाद्वीपीय राज्य के 'विजिग्सु' (victor) के लिए राज्य–निर्माण व राजनय की कला के रूप में प्रस्तावित हैं। उपयुक्त कथन शक्तिशाली उपमहाद्वीपीय मौर्य, मुगल, एवं ब्रिटिश भारतीय राज्यों के साथ वर्तमान भारतीय संविधान (1950) के अंतर्गत संगठित भारतीय गणराज्य पर भी लागू है।

भारतीय राज्य के विकास की आगे की कहानी भी ऊपर वर्णित पृष्ठभूमि में समझी और व्याख्यापित की जा सकती है। आगे के चरण के प्रमुख मील के पत्थर हैं औपनिवेशिक ब्रिटिश राज का स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र-राज्य में उत्कर्ष; नेहरू द्वारा प्राकल्पित 'भारतीय समाजवादी विन्यास के समाज' के निर्माण का प्रयास; उस पर नवउदारवादी भूमंडलीकरण का प्रभाव; एवं राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एवं भारतीय जनता पार्टी के 'संघ परिवार' की 'हिन्दुत्व' अथवा 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की विचारधारा का बहुलसांस्कृतिक पंथनिरपेक्ष भारतीय राज्य के लिए प्रस्तुत चुनौती। यह सब समसामयिक आयाम इस ऐतिहासिक आलेख की परिसीमा के बाहर के तत्व हैं।

संदर्भ

1. *अमरकोश* : (श्रीमद्मरसिंह विरचितः व्याख्याकार पं. विश्वनाथ झा), दिल्लीः मोतीलाल बनारसीदास, 1999.
2. *दीघ निकाय* (सुत्तपिटक का एक भाग), अनुवादक राहुल सांकृत्यायन तथा जगदीश काश्यप, लखनऊः भारतीय बौद्धिक शिक्षा परिषद, 1979.
3. Altekar, A.S. *State and Government in Ancient India*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1958.
4. Anderson, Benedict. *Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism*, London: Verso, 1991, Revised Edition.
5. Bagchi, Amiya Kumar. *The Political Economy of Underdevelopment*, Cambridge: Cambridge University Press, 1982.
6. Basham, A.L. *The Wonder that was India*, Foreword by Thomas A. Trautmann, London: Picador, 1967, 3rd revised edition.
7. Dikshit, R.D. *Political Geography: The Spatiality of Politics*, New Delhi: Tata McGraw-Hill Publishing Company Ltd., 2000, 3rd Edition.
8. Jayaswal K.P. *Hindu Polity*, Bangalore, Bangalore Printing and Publishing,1943.
9. Jha, D.N., ed. *The Feudal Order: State, Society and Ideology in Early Medieval India*, New Delhi: Manohar, 2000.
10. Jha, Vivekanand. 'Social Stratification in Ancient India', Presidential Address, Ancient Indian Section, *Indian History Congress*, Calcutta, 28-30 December, 1990.
11. Kautilya. *The Arthashastra*, Editor, Translated and Introduced by L.N. Rangarajan, New Delhi: Penguin Books India, 1992.
12. Koshambi, D.D. *An Introduction to the Study of Indian History*, Bombay: Popular Prakashan Private Limited, 1956.
13. Kulke, Herman, ed. *The State in India 1000-1700*, New Delhi: Oxford University Press, 1995.
14. Prasad, Beni. *The State in Ancient India*, Allahabad: The Indian Press, 1928.
15. Ramusack, Barbara. *The Indian Princes and their States*, Cambridge: Cambridge University Press, 2004.
16. Rizvi, S.A.A. *The Wonder that was India*,Vol. II, 1200-1700, London: Picardor, 1987.
17. Roy, Kumkum. *The Emergence of Monarchy in North India: Eighth to Fourth Centuries B.C.*, New Delhi: Oxford University Press, 1994.
18. Sharma, R.S. 'The Segmentary State and the Indian Experience', *The Indian Historical Review*, Vol. XVI, Nos. 1&2 , July 1989- January 1990.
19. Sharma, R.S. *Aspects of Political Ideas and Institutions in Ancient India*, Delhi: Motilal Banarsidass, 1991.
20. Sharma, R.S. *Indian Feudalism: C. AD 300-1200*, New Delhi: Macmillan, 1980.
21. Sharma, R.S. *Origin of the State in India* (D.D. Koshambi Memorial Lecture, 1987), Bombay: University of Bombay.

22. Singh, M.P. 'Indian State: Historical Context and Change', *The Indian Historical Review*, Vol. XXI, Nos. 1-2, July 1994 & January 1995.

23. Stein, Burton. *Peasant State and Society in Medieval South India*, New Delhi: Oxford University Press, 1980.

24. Stein Burton. *The New Cambridge History of India: Vijayanagara*, Cambridge: Cambridge University Press, n.d.

25. Streusand, Douglas. *The Formation of the Mugal Empire*, New Delhi: Oxford University Press, 1989.

26. Thapar, Romila. *A History of India*, Vol. I, Harmondsworth: Penguin, 1966.

27. Thapar, Romila. *Asoka and the Decline of The Mauryas*, New Delhi: Oxford University Press, 1997, New Revised Edition.

28. Thapar, Romila. *From Lineage to State: Social Formation in the Mid-First Millennium B.C. in the Ganga Valley*, New Delhi: Oxford University Press, 1984.

29. Venkatasubramanian, T.K. 'Politics, Culture and "Caste" in Eary Tamilakam', Presidential Address, Cultural History Section, *South Indian History Congress*, Gulbarga, 9-11 February 1996.

30. Wink, Andrew. *Land and Sovereignly in India: Agrarian Society and Politics under the Eighteenth Century Maratha Swarajya*, Cambridge: Cambridge University Press/New Delhi: Orient Longman, 1956.

31. Yadava, B.N.S. *Society and Culture in Northern India in the Twelfth Century*, Allahabad: Central Book Depot,1973.

राजस्थान में वित्तीय नियंत्रणकारी संस्थाओं का कार्यकरण : समस्या एवं समाधान

मंजू देवी शर्मा

वित्त के अभाव में प्रशासनिक ढाँचा सुचारू एवं कार्यकुशल रूप में नहीं चल सकता है। प्रशासनिक स्तर पर योजनाएँ कितनी ही ठीक व सक्षम क्यों न हों, लेकिन वित्त के अभाव में उनकी क्रियान्विति सम्भव नहीं हो सकती। अतः कौटिल्य ने ठीक ही कहा है कि ''सभी उद्यम वित्त पर निर्भर हैं; अतः कोषागार (ट्रेजरी) पर सर्वाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए''।

लॉर्ड जॉर्ज का तो यहाँ तक कहना है कि जिसको शासन कहते हैं वह वास्तव में वित्त ही है।[2] वित्तीय व्यवस्था का ढाँचा अत्यन्त सुदृढ़ होना चाहिए। सरकार राजस्व के रूप में देश से आय प्राप्त करती है। अतः सरकार का यह नैतिक कर्तव्य है कि उस धन या राजस्व को मितव्ययता तथा विवेकशील रूप से खर्च करे तथा यह धन निर्धारित कार्यों के लिए ही विवेक-सम्मत रूप से खर्च किया गया है – यह देखने के लिए प्रभावशाली वित्तीय नियंत्रण स्थापित करे। प्रजातांत्रिक युग में तो वित्तीय प्रशासन का महत्त्व और भी अधिक बढ़ जाता है तथा जनता के कल्याण पर अधिक ध्यान दिया जाता है। वित्तीय प्रशासन समस्त देश के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक ढाँचे को प्रभावित करता है। हूवर कमीशन के शब्दों में – ''यह आधुनिक शासन के अन्तःस्थल तक पहुँच गया है''[3]।

प्रशासन पर वित्तीय नियंत्रण की आवश्यकता इस कारण भी व्यक्त की जाती है कि प्रशासन के आकार के बढ़ने और प्रशासन के स्वयं के हित के पोषण के रूप में विकसित होने की प्रवृत्ति भी होती है, अतः भारत के संविधान द्वारा अधिदेशित उच्च गुणवत्ता लेखापरीक्षण और लेखाकरण के माध्यम से जवाबदेही, पारदर्शिता और अच्छे अधिशासन को उन्नत करने और अपने पणधारियों, विधानमण्डल, कार्यकारिणी और आम जनता को स्वतंत्र आश्वासन मुहैया कराने के लिए कि लोक-निधियों का दक्षता

से और अभिप्रेत उद्देश्यों के लिए ही उपयोग किया जाता है। एक प्रभावी वित्तीय नियंत्रण का होना आवश्यक है।

नगरीय संस्थाओं के कार्यकरण पर वित्तीय नियंत्रण के लिए की गई संरचनात्मक व्यवस्थाओं का रेखांचित्र यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

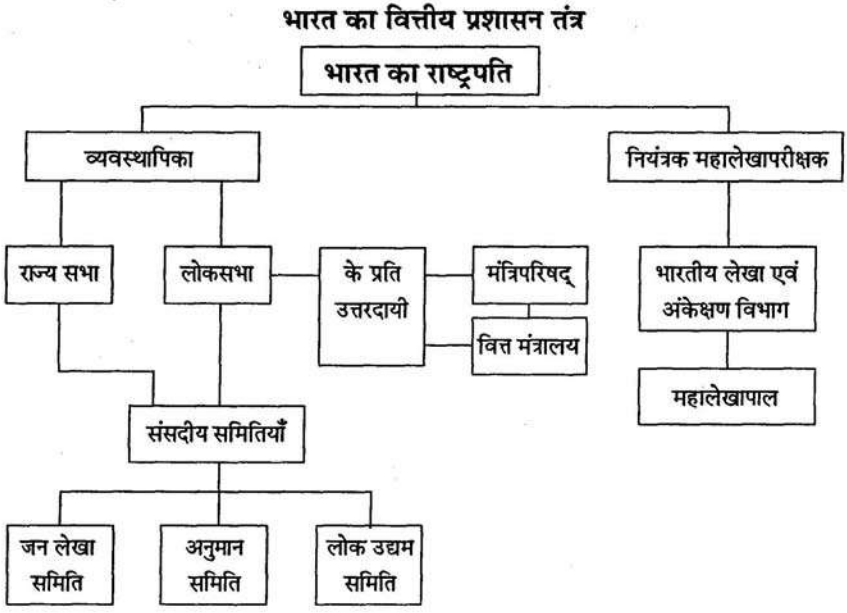

स्रोत : शर्मा, डॉ. रविन्द्र, "भारत में लोक प्रशासन", कॉलेज बुक हाउस, 1999, जयपुर, पृ. 13

इन संस्थाओं पर नियंत्रण रखने वाली इकाइयों/संस्थाओं में मुख्य हैं :

- राज्य सरकार के शासकीय विभाग अर्थात् नगरीय संस्थाओं का नियंत्रण स्वायत्त शासन एवं नगरीय विकास विभाग;
- राज्य में स्थानीय निधि अंकेक्षण अधिनियम, 1954 के, अधीन गठित स्थानीय निधि अंकेक्षण विभाग;
- भारत के नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के समग्र नियन्त्रण में राज्य में कार्यरत् राजस्थान का महालेखाकार कार्यालय (A.G. कार्यालय) राजस्थान;
- राज्य सरकार का वित्त विभाग जो समस्त शासकीय संरचनाओं पर व्यापक वित्तीय नियंत्रण की सामान्य रूपरेखा निर्धारित करता है;
- मीडिया, प्रैस, लोकायुक्त व जनसाधारण तथा स्वतंत्र इकाइयों द्वारा भी नियन्त्रण रखा जाता है; तथा

- राज्य की सभी नगरीय संस्थाओं में स्थानीय स्तर पर वित्तीय मामलों की देखरेख के लिए नगरीय निकाय की एक वित्त समिति (Finance Committee) होती है, जिसके निर्देशन में उस निकाय के बजट निर्माण व निष्पादन सम्बन्धी सभी गतिविधियों का संचालन होता है।

प्रस्तुत अध्ययन में, राज्य की नगरीय स्थानीय संस्थाओं के क्रियाकलापों के वित्तीय पक्ष पर उपर्युक्त संरचनाओं में से भारत के नियंत्रक व महालेखा परीक्षक के समग्र नियंत्रण में राज्य में कार्यरत् राजस्थान का महालेखाकार कार्यालय (A.G. कार्यालय राजस्थान) एवं राज्य में स्थानीय निधि अंकेक्षण अधिनियम 1954 के अधीन गठित स्थानीय निधि अंकेक्षण विभाग के द्वारा जो नियंत्रण किया जाता है। उससे सम्बन्धित कार्यकरण की समस्याओं पर दृष्टि डालने का प्रयास किया गया है।

स्थानीय निधि अंकेक्षण विभाग द्वारा नियमित रूप से स्वायत्तशासी संस्थाओं का वार्षिक अंकेक्षण किया जाता है। वार्षिक अंकेक्षण के दौरान यह पाया जाता है कि कुछ अनियमितताएँ ऐसी हैं जो प्रत्येक वर्ष के अंकेक्षण में पायी जाती है एवं इनको रोकने हेतु संस्था द्वारा समुचित ध्यान नहीं दिया जाता है, ऐसी स्थिति में उन संस्थाओं को चेतावनी दी जाती है, ताकि अंकेक्षणाधीन संस्थाएँ समय पर अनियमितताओं का निस्तारण कर जवाब दें।

हमने अनुभवमूलक अध्ययन हेतु स्वायत्तशासी संस्थाओं का अंकेक्षण करने वाली संस्थाओं राजस्थान महालेखाकार कार्यालय, जयपुर, से 30 अधिकारियों/कर्मचारियों को एवं राजस्थान स्थानीय निधि अंकेक्षण विभाग से 30 अधिकारियों/कर्मचारियों का चयन किया है जिनकी कुल संख्या 60 है।

1- vadk{k.kk/khu Lok;Ùk'kklh laLFkkvka }kjk vko';d lkexh@ nLrkost miyC/k djok, tkrs gk ;k ugh] ls lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में अंकेक्षण के दौरान अंकेक्षणाधीन स्वायत्तशासी संस्थाओं द्वारा आवश्यक सामग्री/दस्तावेज उपलब्ध करवाये जाते हैं या नहीं, से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों को सारणी 1 में प्रदर्शित किया गया है।

lkj.kh 1

Ø- la-	pj	mÙkjnkrkvka dh la[;k	ifr'kr
1.	हाँ	45	75
2.	नहीं	15	25
	;kx	**60**	**100**

सारणी में प्रदर्शित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि अंकेक्षण के दौरान अंकेक्षणाधीन स्वायत्तशासी संस्थाओं द्वारा आवश्यक सामग्री/दस्तावेज उपलब्ध करवाये गए थे तथा 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि सामग्री/दस्तावेज उपलब्ध नहीं करवाये गए थे।

कुछ उत्तरदाताओं का मत है कि अंकेक्षण के दौरान अंकेक्षणाधीन संस्थाओं द्वारा आवश्यक सामग्री/दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराये गए थे तथा उत्तरदाताओं से पूछने पर कि सामग्री/दस्तावेज उपलब्ध नहीं कराये गए, तो इसके क्या कारण हो सकते हैं। इस सम्बन्ध में कुछ उत्तरदाताओं ने अपने निम्न मत व्यक्त किए:

- प्रायः संस्थाएँ सम्पूर्ण रिकॉर्ड अंकेक्षण हेतु उपलब्ध नहीं करवाती हैं;
- बड़ी संस्थाओं, जैसे जे.डी.ए. द्वारा रिकॉर्ड नहीं दिया जाता है;
- मेमो जारी करने एवं क्षेत्रीय कार्यालय को सूचित करने पर भी रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं कराने पर आक्षेप गठित किया जाता है;
- विभाग द्वारा अनेक बहाने बनाकर रिकॉर्ड उपलब्ध करवाने में विलम्ब या असमर्थता व्यक्त की जाती है;
- रिकॉर्ड का संधारण उचित तरह से नहीं किया जाता है;
- अंकेक्षण कार्यक्रम की पूर्व सूचना नहीं होती, साथ ही विभाग अंकेक्षण दल को सहयोग भी नहीं करते तथा वांछित रिकॉर्ड उपलब्ध नहीं करवाये जाते;
- संस्थाएँ ऑडिट प्रक्रिया को बोझ समझती हैं एवं पूर्ण रुचि नहीं दिखाती हैं;
- अंकेक्षणाधीन स्वायत्तशासी संस्थाओं के कार्य करने की स्पष्ट आधार प्रणाली नहीं होने के कारण आवश्यक सामग्री/दस्तावेज पर्याप्त नहीं होते हैं;
- संस्थाओं द्वारा पहले से दस्तावेज आदि तैयार नहीं रखे गए तो, जिससे समय पर उपलब्ध नहीं करवाये जाते;
- सम्भवतया संस्थाएँ उन दस्तावेजों का अंकेक्षण करवाना नहीं चाहती हैं जो अंकेक्षकों द्वारा माँगे जाते हैं। अतः वे अभिलेख उपलब्ध करवाने में अनेक प्रकार से टालमटोल करती हैं;
- स्वायत्तशासी संस्थाओं का अंकेक्षण का समय निर्धारित नहीं होता है। अधिकतर अंकेक्षण कार्यक्रम तब होते हैं जब संस्था में कोई अन्य कार्य चल रहा होता है, जैसे – चुनाव, जनगणना, वित्तीय वर्ष का अंत, ''प्रशासन शहर के संग'' अभियान इत्यादि;
- संस्था के प्रमुख के स्तर पर अंकेक्षण कार्य को प्राथमिकता देने का अभाव;

- अंकेक्षण के दौरान उठाये गए आक्षेपों पर दोषी के विरुद्ध कार्यवाही नहीं होना;
- आक्षेपों के निस्तारण/अनुपालना के सम्बन्ध में प्रभावी नियंत्रण नहीं रखने तथा अनुपालना में अत्यधिक विलम्ब होने से संस्था को कोई भय नहीं रहता है;
- विभाग द्वारा सम्बन्धित विभाग के अधिकारियों से विचार-विमर्श देरी से करने या न करने का अभाव;
- लेखापरीक्षा से सम्बन्धित पत्रावलियाँ का मंत्रालय/सचिवालय भेज दिया जाना बतलाकर उपलब्ध नहीं कराई जातीं;
- कभी–कभी कुछ पत्रावलियाँ लेखापरीक्षा के अंतिम कार्य दिवसों में अपूर्ण रूप से उपलब्ध कराई जाती हैं, जिससे उनकी जाँच पूर्णतया तथा निर्धारित समय में नहीं हो पाती है; तथा
- दस्तावेज उपलब्ध करवाने हेतु ज्ञापन जारी किया जाता है। ज्ञापनों से दस्तावेज प्राप्त नहीं होते, तो उच्चाधिकारियों को अवगत करवाया जाता है। अभिलेख उपलब्ध नहीं करवाने का प्रमुख कारण स्वायत्तशासी संस्थाओं का असहयोग प्रमुख होता है।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अंकेक्षण कार्य को बोझ समझने, अंकेक्षण कार्य की पूर्व सूचना नहीं मिलने, विभाग का अंकेक्षण दल को सहयोग नहीं करने, रिकॉर्ड उपलब्ध कराने में विलम्ब करना ताकि लेखापरीक्षा की अवधि निकल जाए, संस्थाओं द्वारा पहले से दस्तावेज आदि तैयार नहीं रखने, अंकेक्षण के दौरान उठाये गए आक्षेपों पर दोषी के विरुद्ध कार्यवाही नहीं होने, आक्षेपों के निस्तारण एवं अनुपालना के सम्बन्ध में प्रभावी नियंत्रण नहीं होने तथा अनुपालना में विलम्ब होने से संस्था को कोई भय नहीं होने, संस्था के प्रमुख स्तर पर अंकेक्षण कार्य को प्राथमिकता का अभाव आदि ऐसे कारण हैं जिनके चलते अंकेक्षणाधीन संस्थाएँ अंकेक्षण के दौरान आवश्यक सामग्री/दस्तावेज उपलब्ध कराने में लापरवाही करती हैं या अपना पूर्ण सहयोग प्रदान नहीं करती।

2- vadk{k.k d nkjku vadk{k.kkfFk;k ¼tkp ny½ dh l[;k fu/kkfjr l[;k d vu:i gkrh g ;k ugh] l lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में अंकेक्षण के दौरान अंकेक्षणार्थियों (जाँच दल) की संख्या निर्धारित संख्या के अनुकूल होती है या नहीं, से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों को सारणी 2 में प्रदर्शित किया गया है।

lkj.kh 2

vadk{k.k dk nkjku vadk{k.kkfFk;k ¼tkp ny½ dh lk[;k fu/kkfjr lk[;k dk vuq:i gkrh gk ;k ugh\

Ø- l-	pj	mÙkjnkrkvk dh lk[;k	ifr'kr
1.	हाँ	49	81.66
2.	नहीं	11	18.33
	;kx	60	100

सारणी में प्रदर्शित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 81.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि अंकेक्षण के दौरान अंकेक्षणार्थियों की संख्या निर्धारित संख्या के अनुरूप होती है, जबकि 18.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना की संख्या निर्धारित संख्या के अनुरूप नहीं होती।

तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि अंकेक्षण के दौरान अंकेक्षण दल की संख्या निर्धारित संख्या के अनुरूप होती है तथा उत्तरदाताओं से पूछने पर कि यदि यह संख्या निर्धारित संख्या के अनुरूप नहीं होती, तो इसका कया कारण है? इस पर उत्तरदाताओं ने निम्न मत व्यक्त किए:

- अंकेक्षण के दौरान दल के सदस्यों की संख्या कम होती है तथा कार्य दिवस भी कम दिये जाते हैं। इसका मुख्य कारण यूनिट की तुलना में स्टाफ का कम होना है।
- सदस्य का स्थानान्तरण होने पर पद स्थापना नहीं होना।
- मुख्यालय द्वारा सदस्य कम उपलब्ध कराए जाते हैं तथा
- कभी–कभी उत्तरदाताओं की शैक्षणिक योग्यता भी एक समस्या होती है।

प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यदि अंकेक्षण के दौरान अंकेक्षणार्थियों (जाँच दल) की संख्या निर्धारित संख्या के अनुरूप नहीं होती है, तो इसका प्रमुख कारण संख्या में चल रही स्टॉफ की कमी है।

3- yk[kkdu ik:ik e fu"iknu lpdk dk lfEefyr dju] lk lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में लेखांकन प्रारूपों में निष्पादन सूचकों को सम्मिलित करने, से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों को सारणी 3 में प्रदर्शित किया गया है।

lkj.kh 3

y[kkdu ik:ik e fu"iknu lpdk dk lfEefyr dju] l lEcfU/kr tkudkjh

Ø- l-	pj	mÙkjnkrkvk dh l[;k	ifr'kr
1.	किया जाता है	36	60
2.	नहीं किया जाता	15	25
3.	पता नहीं	09	15
	;kx	**60**	**100**

सारणी में प्रदर्शित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि लेखांकन प्रारूपों में निष्पादन सूचकों को सम्मिलित किया जाता है, 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि नहीं किया जाता तथा 15 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में अनभिज्ञता जताई।

4- fu;=d egky[kkijh{kd u voykdu fd;k g fd dN y[kkijh{kk vk{ki lko/kkuhiod ,o lefpr rjhd l ugh fy[k tk jg gA bu vk{kk e fdl izdkj dh deh ikb tkrh g] l lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में, नियंत्रक महालेखापरीक्षक ने अवलोकन किया है कि कुछ लेखापरीक्षा आक्षेप सावधानीपूर्वक एवं समुचित तरीके से नहीं लिखे जा रहे हैं। इन आक्षेपों में किस प्रकार की कमी पाई जाती है, से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों को सारणी 4 में प्रदर्शित किया गया है।

lkj.kh 4

dN y[kkijh{kk vk{ki lko/kkuhiod ,o lefpr rjhd l ugh fy[k tk jg gA bu vk{kk e fdl izdkj dh deh ikb tkrh g] l lEcfU/kr tkudkjh

Ø- l-	pj	mÙkjnkrkvk dh l[;k	ifr'kr
1.	आक्षेप अधूरी सूचना पर आधारित होते हैं	09	15
2.	इनका स्थानीय निकाय के वित्त पर कोई प्रभाव नहीं होता	02	03.33

3.	इसके विवरण एवं आँकड़े स्पष्ट दस्तावेजी प्रमाणों पर आधारित नहीं होते	07	11.66
4.	उपर्युक्त सभी	11	18.33
5.	अन्य	04	06.66
6.	कोई उत्तर नहीं	26	43.33
	;kx	**60**	**100**

सारणी में प्रदर्शित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 15 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि आक्षेप अधूरी सूचनाओं पर आधारित होते हैं, 03.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि इनका स्थानीय निकाय के वित्त पर कोई प्रभाव नहीं होता। 11.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि इनका स्थानीय निकाय के वित्त पर कोई प्रभाव नहीं होता। 11.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि इन आक्षेपों के विवरण एवं आँकड़े स्पष्ट दस्तावेजी प्रभागों पर आधारित नहीं होते। 18.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि इन आक्षेपों में उपर्युक्त सभी प्रकार की कमियाँ पाई जाती हैं। 06.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना यह अनुपात चौंकाने वाला तथा चिंताजनक है। 43.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कोई उत्तर नहीं दिया।

तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि आक्षेपों में उपर्युक्त सभी प्रकार की कमी पाई जाती है।

5- vkfMV vkCtDku ;k ijk d fuLrkj.k e lLFkk@foHkkxk dh ifØ;k] l lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में ऑडिट ऑब्जेक्शन या पैरा के निस्तारण में संस्था/विभागों की प्रक्रिया, से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों को सारणी 5 में प्रदर्शित किया गया है:

lkj.kh 5

vkfMV vkCtDku ;k ijk d fuLrkj.k e lLFkk foHkkx dh ifØ;k] l lEcfU/kr tkudkjh

Ø- l-	pj	mÙkjnkrkvk dh l[;k	ifr'kr
1.	सम्बन्धित संस्था/विभाग द्वारा समय पर निस्तारण कर जवाब दे दिया जाता है	07	11.66
2.	सम्बन्धित संस्था/विभाग द्वारा किसी प्रकार का जवाब नहीं दिया जाता	12	20
3.	दोनों	31	51.66
4.	अन्य	10	16.66
	;kx	**60**	**100**

सारणी में प्रदर्शित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 11.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि सम्बन्धित संस्था/विभाग द्वारा समय पर निस्तारण कर जवाब दे दिया जाता है। 20 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि सम्बन्धित संस्था/विभाग द्वारा किसी प्रकार का जवाब नहीं दिया जाता है। 51.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि दोनों प्रकार की स्थितियाँ रहती हैं तथा 16.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना।

तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाताओं का मत है कि दोनों ही प्रकार की स्थितियाँ रहती हैं। संस्थाओं द्वारा कभी–कभी तो समय पर निस्तारण कर जवाब दे दिया जाता है और कभी-कभी जवाब नहीं भी दिया जाता।

6- vadk{k.k ifronu e 0;kIr vi.kirkvk d fy, mÙkjnk;h dkj.k] l lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी कारण, से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित प्राप्त तथ्यों को सारणी 6 में प्रदर्शित किया गया है:

lkj.kh 6

vadk{k.k ifronu e 0;kIr vi.kirkvk d fy, mÙkjnk;h dkj.kk l lEcfU/kr tkudkjh

Ø- l-	pj	mÙkjnkrkvk dh l[;k	ifr'kr
1.	जाँच दलों में वित्तीय एवं लेखा नियमों की अनभिज्ञता	04	06.66
2.	जाँच दलों द्वारा लेखापरीक्षा नियमों की अवहेलना	––	––
3.	जाँच प्रभारी द्वारा जाँच दलों पर नियंत्रण का अभाव	01	01.66
4.	उपर्युक्त सभी	16	26.66
5.	अन्य	30	50
4.	कोई उत्तर नहीं	09	15
	;kx	**60**	**100**

सारणी में प्रदर्शित आँकड़ों में स्पष्ट होता है कि 06.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी कारण जाँच दलों में वित्तीय एवं लेखा नियमों की अनभिज्ञता है। 01.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का

मत है कि जाँच प्रभारी द्वारा जाँच दलों पर नियंत्रण का अभाव अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी कारण है। 26.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि उपर्युक्त सभी कारण अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी कारण हैं। 50 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना तथा 15 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया।

तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकतर उत्तरदाताओं का मानना है कि उपर्युक्त सभी कारण अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी हैं तथा सबसे अधिक उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना तथा अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी अन्य कारणों का उल्लेख कियाः

- समय का अभाव व सीमित संसाधन;
- स्टॉफ की कमी;
- कुछ का कहना है कि विभागीय चैकलिस्ट के अनुसार अंकेक्षण सम्पादित किया जाता है, अतः अपूर्णताओं की सम्भावना नहीं रहती है;
- जाँच दल द्वारा अधिकतम प्रयास द्वारा उचित रिपोर्ट बनाई जाती है;
- जाँच दलों में वित्तीय एवं लेखा नियमों की अनभिज्ञता तथा विभाग द्वारा पूर्ण अभिलेख/सूचना उपलब्ध नहीं कराना;
- अंकेक्षणाधीन संस्थाओं द्वारा प्रकरण से सम्बन्धित रिकॉर्ड समय पर एवं एक साथ प्रस्तुत करने का अभाव;
- संस्थाओं द्वारा समय पर अभिलेख उपलब्ध नहीं कराना/स्थानीय निधि अंकेक्षण विभाग द्वारा जारी आदेश/निर्देश/नियमों की पुस्तक उपलब्ध नहीं कराना;
- संस्थाओं द्वारा पूर्ण सहयोग का अभाव;
- जाँच दलों को समय-समय पर प्रशिक्षण दिया जाना वांछित है; तथा
- जाँच दलों को समय-समय पर विभागीय स्तर पर प्रशिक्षण नहीं दिया जाना भी अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी कारण हैं।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि समय का अभाव, स्टॉफ की कमी अंकेक्षणाधीन संस्थाओं द्वारा पूर्ण सहयोग का अभाव, जाँच दलों को समय–समय पर विभागीय स्तर पर प्रशिक्षण का अभाव आदि अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त अपूर्णताओं के लिए उत्तरदायी कारण हैं।

7- tkp nyksa dh foQyrk ds dkj.kksa ls lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में जाँच दलों की विफलता के कारणों, से सम्बन्धित जानकारी प्रापत करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित प्राप्त प्रतिक्रियाओं को सारणी 7 में प्रदर्शित किया जा रहा हैः

lkj.kh 7

tkp nyksa dh foQyrk ds dkj.kksa ls lEcfU/kr tkudkjh

Ø- l-	pj	mÙkjnkrkvksa dh l[;k	izfr'kr
1.	पर्यवेक्षकीय अधिकारियों द्वारा कैशबुक की नियमित जाँच कार्य में ढिलाई	05	08.33
2.	राज्य सरकार का जाँच दलों पर प्रभाव	01	01.66
3.	अपूर्ण अंकेक्षण प्रतिवेदन	7	11.66
4.	उपर्युक्त सभी	13	21.66
5.	अन्य	20	33.33
6.	कोई उत्तर नहीं	14	23.33
	;kx	**60**	**100**

सारणी में प्रदर्शित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 08.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि जाँच दलों की विफलता के कारण, पर्यवेक्षकीय अधिकारियों द्वारा केशबुक की नियमित जाँच कार्य में ढिलाई है। 01.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि जाँच दलों की विफलता का कारण राज्य सरकार का जाँच दलों पर प्रभाव है। 11.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि अपूर्ण अंकेक्षण प्रतिवेदन जाँच दलों की विफलता का कारण है। 21.66 प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत ह कि उपर्युक्त सभी जाँच दलों की विफलता के प्रमुख कारण हैं। 33.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना तथा 23.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया।

तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि उपर्युक्त कमियां सभी जाँच दलों की विफलता के कारण हैं तथा सबसे अधिक उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना तथा जाँच दलों की विफलता के अन्य कारणों का उल्लेख किया :

- राज्य सरकार द्वारा प्रतिवेदनों में शामिल अनियमितताओं के सम्बन्ध में उत्तरदायित्व निर्धारित न किया जाना;
- अंकेक्षण आक्षेपों पर प्रभावी कार्यवाही का अभाव;
- विभाग द्वारा लेखापरीक्षा में सहयोग नहीं देना, दस्तावेज प्रस्तुत करने में विलम्ब या प्रस्तुत नहीं करना;
- जाँच दलों की विफलता सामान्यतः नहीं होती। असाधारण मामलों में कुछ कारण उत्तरदायी हो सकते हैं;

- लेखा परीक्षा इकाइयों द्वारा पूर्ण रिकॉर्ड प्रस्तुत नहीं करना;
- संस्था द्वारा रिकॉर्ड समय पर उपलब्ध नहीं करना, उच्च अधिकारियों का सकारात्मक सहयोग नहीं मिलना;
- विभाग द्वारा जाँच कार्य में सहयोग न करते हुए अपूर्ण रिकॉर्ड सूचनाएँ उपलब्ध करना;
- अंकेक्षण प्रतिवेदन में वर्णित आक्षेपों की प्रभावी अनुपालना का अभाव;
- संस्था द्वारा सम्पूर्ण रिकॉर्ड एक साथ प्रस्तुत करने का अभाव रहता है; तथा
- जाँच दलों को विभाग का अपेक्षित सहयोग नहीं मिलना।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि अंकेक्षणाधीन संस्थाओं द्वारा सहयोग नहीं देने व अंकेक्षण प्रतिवेदन में व्याप्त आक्षेपों पर प्रभावी कार्यवाही नहीं होने को अधिकांश उत्तरदाताओं को जाँच दलों की विफलता का कारण माना है।

8- vadk{k.k dk;Øe d iHkko'kkyh ugh gku d dkj.k l lEcfU/kr tkudkjh

चयनित प्रतिदर्श में अंकेक्षण कार्यक्रम के प्रभावशाली नहीं होने के कारण, से सम्बन्धित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। इससे सम्बन्धित विवरण को सारणी 8 में प्रदर्शित किया जा रहा है।

lkj.kh 8

vadk{k.k dk;Øe d iHkko'kkyh ugh gku d dkj.k l lEcfU/kr tkudkjh

Ø- l-	pj	mÙkjnkrkvk dh l[;k	ifr'kr
1.	अंकेक्षणाधीन संस्थाओं/विभागों द्वारा अंकेक्षण दल से साँठ–गाँठ कर ली जाती है	––	––
2.	सम्बन्धित विभाग के द्वारा सहयोग नहीं दिया जाता है	48	80
3.	अंकेक्षण कार्य की सूचना पहले से ही सम्बन्धित विभाग को मिल जाती है	01	01.66
4.	अन्य	08	13.33
6.	कोई उत्तर नहीं	03	05
	;kx	**60**	**100**

सारणी में प्रदर्शित तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 80 प्रतिशत उत्तरदाता सम्बन्धित विभाग के द्वारा सहयोग नहीं दिये जाने को अंकेक्षण कार्यक्रम के प्रभावशाली नहीं होने का प्रमुख कारण मानते हैं। 01.66 प्रतिशत उत्तरदाता अंकेक्षण कार्यक्रम के प्रभावशाली नहीं होने का कारण अंकेक्षण कार्य की गुप्त सूचना पहले से ही सम्बन्धित विभाग को मिल जाना मानते हैं। 13.33 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना तथा 05 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में कोई उत्तर नहीं दिया।

तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदाता अंकेक्षण कार्यक्रम के प्रभावशाली नहीं होने का कारण सम्बन्धित विभाग के द्वारा सहयोग नहीं दिए जाने को मानते हैं, तथा कुछ उत्तरदाताओं ने अन्य विकल्प को चुना तथा अंकेक्षण कार्यक्रम के प्रभावशाली नहीं होने के अन्य कारणों का उल्लेख किया :

- अंकेक्षणाधीन संस्थाओं द्वारा अभिलेख एक साथ प्रस्तुत करने का अभाव रहता है;
- प्रभावी नियंत्रण का अभाव;
- अंकेक्षणाधीन संस्थाओं एवं उनके नियंत्रण प्राधिकारियों को अंकेक्षण की सूचना समय पर नहीं मिलना;
- संस्था/विभागों पर प्रशासनिक कार्यवाही का अभाव; तथा
- सरकार के प्रभावी नियंत्रण का अभाव।

fu;=.kdkjh lLFkkvksa dk;dj.k lEcfU/kr leL;k,a ,oa lek/kku

1. **'kgjh LFkkuh; lLFkkvksa dk vlg;kx &** जब भी स्थानीय निकायों में अंकेक्षण दल जाते हैं तब अंकेक्षणाधीन संस्थाओं द्वारा अनेक बहाने बनाकर रिकॉर्ड उपलब्ध कराने में विलम्ब या असमर्थता व्यक्त की जाती है, ताकि लेखा परीक्षा की निर्धारित अवधि निकल जाये क्योंकि ये संस्थाएँ अंकेक्षण कार्य (ऑडिट प्रक्रिया) को बोझ समझती हैं।

   lq>ko & शहरी स्थानीय संस्थाओं द्वारा अंकेक्षण कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिए। अंकेक्षण कार्य को प्रभावी बनाने के लिए चाहिए कि रिकॉर्ड अंकेक्षण दल को प्रस्तुत नहीं करने वाली संस्थाओं के विरुद्ध ठोस कार्यवाही हो तथा आक्षेपों पर संबंधित विभाग के उच्च अधिकारियों द्वारा संबंधित का उत्तरदायित्व निर्धारित करने हेतु पर्याप्त व्यवस्था की जाये।

2. **fjdkWM&lq/kkj.k dk vHkko &** संस्थाओं के अंकेक्षण के समय नगरीय निकायों में अनेकों महत्त्वपूर्ण रिकॉर्ड एवं रजिस्टरों का संधारण नहीं पाया जाता है। इस प्रकार के रिकॉर्ड के अभाव में अंकेक्षण, कतिपय बिन्दुओं के विषय में स्थिति स्पष्ट रूप से देख नहीं पाता जिसे ध्यान में लाना आवश्यक होता है।

l|>ko & महत्त्वपूर्ण रिकॉर्ड एवं रजिस्टरों का पूर्ण रूप से संधारण किया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक संस्था में जो निर्धारित रिकॉर्ड नहीं रखे गये हैं उनके विषय में अंकेक्षण दलों द्वारा ध्यानपूर्वक विवरण सहित आक्षेप लिया जाना संभव हो सके।

3. **le; ij l|LFkkvk| }kjk nLrko|t miyC/k ugh| djkuk &** संस्थाओं द्वारा पहले से दस्तावेज आदि तैयार नहीं रखे जाते जिससे दस्तावेज अंकेक्षण दलों को समय पर उपलब्ध नहीं करवाये जाते।

l|>ko & समय पर संस्थाओं द्वारा दस्तावेज उपलब्ध कराना चाहिए तथा दस्तावेज समय पर उपलबध न कराने की स्थिति में सम्बन्धित संस्था के विरुद्ध उचित कार्यवाही के स्पष्ट प्रावधान होने चाहिए।

4. **fjdkM| i|Lr|rhdj.k dk vHkko &** सम्भवतया संस्थाएँ कुछ दस्तावेजों का अंकेक्षण नहीं चाहती है जो अंकेक्षकों द्वारा मांगे जाते हैं अतः ऐसे अभिलेख उपलब्ध कराने में वे सदैव टालमटोल करती हैं।

l|>ko & सम्बन्धित संस्थाओं द्वारा पूर्ण अभिलेख लेखापरीक्षा हेतु उपलब्ध कराए जाने चाहिए तथा अभिलेख उपलब्ध कराने में टालमटोल नहीं किया जाना चाहिए।

5. **i=kofy;k| y|[kk ijh{kk d| vfUre fnolk| e| miyC/k djk;k tkuk &** कभी–कभी कुछ पत्रावलियाँ लेखा परीक्षा के अन्तिम कार्य दिवसों में परीक्षण दलों को अपूर्ण रूप से उपलब्ध कराई जाती है, जिससे उनकी जाँच पूर्णतया तथा निर्धारित समय में नहीं हो पाती जिससे अंकेक्षण कार्य प्रभावी नहीं हो पाता है।

l|>ko & पत्रावलियाँ पूर्ण रूप से लेखापरीक्षा के समय ही उपलब्ध करानी चाहिए, जिससे उनकी जाँच पूर्णतया तथा निर्धारित समय में हो पाये ताकि अंकेक्षण कार्य को पूर्णतः प्रभावी बनाया जाना संभव हो सके।

6. **l|'kkf/kr fn'kk&fun|'kk] i;kIr dk;| fnolk| o cBu| d| LFkku dk vHkko &** अंकेक्षण दलों के पास संशोधित दिशा-निर्देशों व नियमों/उपनियमों की अद्यतन स्थित की जानकारी का अभाव रहता है। अंकेक्षण कार्य हेतु समय–सीमा सीमित होने से प्रभावी लेखा-परीक्षा नहीं हो पाती है। अंकेक्षण दल को ठहरने व बैठने के उचित स्थान का अभाव भी उन्हें प्रभावी कार्य संचालन में अवरोध जैसा लगता है।

l|>ko & बुद्धिपूर्ण एवं निपुण स्थानीय नमूना लेखापरीक्षा हेतु यह आवश्यक है कि लेखापरीक्षक को लेखापरीक्षा के अन्तर्गत स्थानीय निकाय से सम्बन्धित अधिनियमों, संहिताओं, नियमावलियों तथा प्रशासनिक आदेशों अथवा नियमों की समुचित जानकारी हो।

अंकेक्षण दल के बैठने की पर्याप्त व्यवस्था हो, सभी संस्थाओं में अंकेक्षण कक्ष अलग से होना चाहिए तथा सम्बन्धित व्यक्ति की जरूरत पड़ने पर उपस्थिति दर्ज हो, व्यर्थ व्यक्तियों का प्रवेश निषेध हो। अंकेक्षण मानव दिवसों में आवश्यकतानुसार वृद्धि की जाये ताकि संस्थाओं के क्रिया कलापों की गहनता से जाँच की जा सके।

7. **xcu o tkylkth d ekeyk e pkdUuk jgu dk vHkko &** कुछ ऐसे मामले सामने आये हैं जहाँ स्थानीय लेखापरीक्षा ने यह उल्लेख करते हुए स्वयं को संतुष्ट कर लिया है कि सम्बन्धित अधिकारियों ने कतिपय अभिलेखों का संधारण समुचित तरीके से नहीं किया है तथा इन दोषों को सुधार करने हेतु कहा है तथापि बाद में हुए विस्तृत विमर्श ने दर्शाया कि बहुत से मामलों में अभिलेखों के दोषपूर्ण संधारण में छिपे हुए गबन एवं जालसाजी का आवरण था। यदि स्थानीय लेखापरीक्षा ऐसे मामलों में पर्याप्त रूप से चौकन्नी होती और आगे जाँच करती तो गबन एवं जालसाजी के मामले बहुत पहले ही प्रकाश में आ सकते थे।

l>ko & गबन व जालसाजी के मामलों के सम्बन्ध में अंकेक्षण दल को चौकन्ना रहना चाहिए। अंकेक्षण प्रतिवेदन में गम्भीर प्रवृत्ति के आक्षेपों पर अविलम्ब कार्यवाही की जानी चाहिए तथा आवश्यक प्रभावी कदम उठाने चाहिए। गम्भीर आक्षेपों के होने पर संस्था के नियन्त्रण अधिकारी को तुरन्त सूचित किया जाना चाहिए ताकि इस तरह के मामले प्रारमी में ही उजागर हो जायें और वे गबन व जालसाजी का पूरा रूप न ले सकें।

8. **izFke vuqikyuk izkIr gksus dk vHkko ,oa cdk;k vk{ksi dh fLFkfr &** राजस्थान स्थानीय निधि अंकेक्ष्पण अधिनियम की धारा 10(1) एवं राजस्थान स्थानीय निधि अंकेक्षण नियम 28 के अनुसार अंकेक्षण प्रतिवेदन की प्राप्ति तीन माह में संस्था के अध्यक्ष को अनुपालना निदेशक को भेजना आवश्यक है। **'kk/k d nkjku bl lo/kkfud nkf;Ro dh ifr dk xEHkhj :i l vHkko ,oa vogyuk nf"Vxr gqbZ gA**

l>ko & अंकेक्षण कार्यक्रम व अंकेक्षण प्रतिवेदन समय पर जारी किये जाने चाहिए। अंकेक्षण कार्यक्रम व अंकेक्षण प्रतिवेदन समय पर जारी किये जाये तथा बकाया आक्षेपों की अनुपालना के लिए संबंधित संस्था को समयबद्ध दायित्व दिया जाये।

9. **lo lpuk d mijkUr Hkh vd{k.k u djkuk &** कुछ संस्थायें पूर्व सूचना के उपरान्त भी अंकेक्षण कार्य में रुचि नहीं दिखाती तथा जाँच दलों के समक्ष अंकेक्षण के रिकॉर्ड प्रस्तुत करने में असमर्थता व्यक्त करती हैं।

l>ko & राजस्थान स्थानीय निधि अंकेक्षण अधिनियम की धारा 5 के अनुसार प्रत्येक संस्था के अध्यक्ष का यह दायित्व है कि वह नियमों के अनुसार सूचना देने पर विभाग के जाँच दलों के समक्ष अंकेक्षण के रिकॉर्ड एवं आवश्यक सुविधा प्रदान करे। राजस्थान स्थानीय निधि अंकेक्षण नियम 8 के अनुसार भी संस्था का दायित्व है कि अंकेक्षण कार्य के लिए जाँच दलों को ऑफिस में सभी सुविधाएँ प्रदान की जाये।

10. **jkT; ljdkj dh v/khuLFkrk dk izHkko** (स्थानीय निधि लेखा-परीक्षा विभाग के संबंध में) – लेखा परीक्षण के लिए उत्तरदायी प्राधिकारी राज्य के वित्त सचिव के प्रशासनिक नियंत्रण में काम करता है। जो प्राधिकारी राज्य सरकार के सीधे नियंत्रण में कार्य करता हो वह राज्य सरकार द्वारा प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। राज्य के स्वायत्त शासन विभाग के अधिकारियों ने यदि स्थानीय संस्थाओं के संचालकों को अनियमित रूप से प्रभावित किया हो तो राज्य सरकार के नियंत्रण में ही काम करने वाला कोई प्राधिकारी उन अधिकारियों के विरुद्ध प्रभावी जाँच कैसे कर सकता है?

l>ko & स्थानीय निधि लेखापरीक्षा राज्य सरकारों के अधीन नहीं होना चाहिए तथा उन्हें पूर्ण स्वायत्तता दी जानी चाहिए ताकि वे अपना दायित्व सुसंगत तरीके से निभा सकें।

lUnHkZ

1. शर्मा, डॉ. रवीन्द्र, *भारत में लोक प्रशासन*] कॉलेज बुक हाउस, चौड़ा रास्ता, जयपुर, 1999, पृ. 13.1
2. कटारिया, डॉ. सुरेन्द्र, *भारतीय लोक प्रशासन*] नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, नई दिल्ली, 2010, पृ. 186
3. पूर्वोक्त, शर्मा, डॉ. रवीन्द्र।
- समस्त सारणियाँ इस शोध कार्य में प्रयुक्त प्रश्न अनुसूची के माध्यम से प्राप्त उत्तरों के आधार पर।

चुनाव सुधार में राजनीतिक दलों की भूमिका

सीमा दास

एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में चुनाव वह प्रक्रिया है जिसके तहत् जनप्रतिनिधियों का चयन होता है। ये प्रतिनिधि उन संस्थाओं के सदस्य होते हैं, जिनके द्वारा समाज में सुशासन स्थापित किया जा सके। परन्तु समकालीन राजनैतिक संस्कृति में हुए परिवर्तन के कारण हमारी प्रतिनिधि संस्थायें कमजोर और उत्तरदायित्वों के प्रति उदासीन हुई हैं। चुनाव आयोग और सरकार निर्वाचन प्रक्रिया को स्वच्छ और सुप्रवाही बनाने के लिये प्रयासरत् रहा है। किन्तु ये प्रयास दलगत मतभेदों और इच्छाशक्ति के अभाव के कारण कार्यान्वित नहीं हो पाते हैं। यद्यपि भारत जैसे विशाल आकार और मतदाताओं वाले देश में चुनाव कराना एक कठिन एवं जटिल कार्य है, तथापि संविधानतः हमारी राजनीतिक व्यवस्था में कई ऐसे उपबन्ध किये गये हैं जिससे निर्वाचन पारदर्शी, स्वच्छ एवं निष्पक्ष हो सके। भारतीय संविधान में 15 वें अध्याय के अन्तर्गत 324 से 329 अनुच्छेद रखे गए हैं[1]। संविधान के 39 वें संशोधन द्वारा इसमें एक अन्य अनुच्छेद 329 'ए' को भी सम्मिलित किया गया हैं। इसके अलावा 10वीं अनुसूची एवं उच्च न्यायालय की अनुच्छेद 136 महत्वपूर्ण उपबन्ध हैं। अनुच्छेद 327 द्वारा प्राप्त अधिकार के अनुसार संसद ने चुनाव के संबंध में आवश्यक कानून बनाये हैं तथा समय-समय पर उसमें संशोधन भी किए हैं। जिसमें जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1950 व जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 हैं। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण देश में चुनाव संविधान व संसद द्वारा निर्मित विधि के अनुरूप ही सम्पन्न होते हैं।

इन प्रमुख उपबन्धों के बावजूद हमारी चुनावी प्रक्रिया में कई ऐसे अप्रत्याशित आचरण उभर कर आए हैं, जिन्होंने राजनीतिक व्यवस्था में धन, बल एवं अपराधीकरण को बढ़ाने में सहायक भूमिका निभाई है।चुनाव प्रणाली में क्रमिक सुधार के कारण निर्वाचन प्रणाली सुदढ़ हुई है। लेकिन कुछ ऐसी चुन्नौतियाँ हैं जिन्हें सिर्फ राजनीतिक दलों के सन्दर्भ में समझने की आवश्यकता है। क्योंकि चुनावी प्रक्रिया जनता को राजनीतिक व्यवस्था के समीप लाती है और राजनीतिक दल का जनता से सम्पर्क

स्थापित होता है। चुनावी प्रक्रिया में राजनीतिक दल की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण होती हैं। वस्तुतः दल राजनीतिक प्रक्रिया को जोड़ने, सरल करने और स्थिर बनाने का माध्यम है। राजनीतिक दल सम्पूर्ण रूप से एक व्यवस्था की सृष्टि करते हैं। लेकिन वर्तमान समय में राजनीतिक दलों ने अपनी वास्तविक भूमिका का निर्वाह नहीं किया है। अतः चुनाव सुधार की सबसे प्रमुख चुनौती राजनीतिक दलों की पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व-बोध से है।

इस प्रपत्र का उद्देश्य उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव 2012 के संदर्भ में चुनाव सुधार के समक्ष राजनीतिक दलों के द्वारा अपने आचरण से किस प्रकार चुनौतियाँ दी जा रही थीं, इसका एक विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था को मजबूत करने और देश को प्रगतिशील बनाने के लिये योग्य प्रतिनिधियों का चुनाव किया जाना अत्यन्त आवश्यक है, और ऐसा स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव से ही संभव है। इस दिशा में सरकार, न्यायालय और स्वयं चुनाव आयोग ने भी लगातार प्रयास किये हैं।

चुनाव सुधार की आवश्यकता पर 1952 से ही प्रयास किया जा रहा है। लगभग सभी मुख्य निर्वाचन आयुक्तों ने अपनी रिपोर्टों में सुझाव दिये हैं।

चुनाव सुधार पर विचार करने के लिये 1975 में जयप्रकाश नारायण ने मुम्बई उच्च न्यायालय के पूर्व जज वी. एम. तारकुण्डे की अध्यक्षता में समिति का गठन किया।[2] फिर 1981 में तत्कालीन चुनाव आयुक्त श्यामलाल शकधर ने प्रमुख विचार रखे। 1990 में गोस्वामी समिति ने अपने सुझाव रखे। 1992 में पुनः चुनाव आयोग ने महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं। इसी प्रकार 1998, 1999, 2004 और 2006 में भी चुनाव आयोग ने महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं। 1999 में न्यायमूर्ति बी.पी. जीवनरेड्डी की अध्यक्षता में चुनाव सुधार के संबंध में विधि आयोग के 170 वें रिपोर्ट में चुनाव को पारदर्शी और न्यायसंगत बनाने के लिये सिफारिश की गईं। सबसे महत्वपूर्ण सुझाव 2002 में संविधान के कार्यकरण की समीक्षा के लिये बनाए गए, राष्ट्रीय आयोग के प्रतिवेदन में आया। 2002 में उच्चतम न्यायालय ने एक जनहित याचिका पर निर्णय देते हुए निर्वाचन आयोग को निर्देश दिया कि वह दो माह के भीतर आदेश निकालकर प्रत्येक उम्मीदवार के लिये यह आवश्यक कर दे कि नामांकन दाखिल करते समय शैक्षणिक, आपराधिक, लंबित मामले एवं आश्रितों के विषय में सूचना प्रस्तुत करें।[3] परन्तु सभी प्रयास चुनाव के मूल उद्धेश्य की प्राप्ति हेतु व्यवहार में सम्भव नहीं हो पाए।

पुनः 2010 में, विधि मंत्री और मुख्य निर्वाचन आयुक्त ने संयुक्त रूप से राष्ट्रीय और क्षेत्रीय परामर्श से सुधार के प्रयास किये। 2013 और 2014 में कुछ महत्वपूर्ण फैसले चुनाव सुधार की दिशा में किये गए। जिसमें राष्ट्रीय सूचना आयोग ने छः राष्ट्रीय दलों को सार्वजनिक प्राधिकरण घोषित करते हुए उन्हें जनसूचना अधिकारियों

की नियुक्ति का निर्देश दिया। उच्चतम न्यायालय ने एक महत्वपूर्ण फैसला देते हुए यह निर्देश दिया कि यदि निचली अदालतें भी किसी विधायक को आपराधिक मामलें में दो वर्ष या ज्यादा की सजा सुनाती है तो सम्बन्धित विधायक की सदस्यता तत्काल समाप्त हो जायेगी। इसी प्रकार चुनाव आयोग को उच्चतम न्यायालय ने यह अधिकार दिया है कि उम्मीदवारों को शपथ पत्र के महत्वपूर्ण कॉलमों को भरना अनिवार्य है अन्यथा वह नामांकन रद्द कर सकता है।[4]

उर्पयुक्त प्रयासों के बावजूद राजनीतिक दलों ने इन प्रयासों को सफल बनाने में कभी पहल नहीं की। इसलिये भारतीय लोकतंत्र के समक्ष महत्वपूर्ण चुनौती इसके प्रतिनिधिक स्वरूप को स्वयं प्रतिनिधियों के द्वारा बदलने की हैं जो वस्तुतः राजनीतिक दलों की कार्य-संस्कृति में बदलाव से ही सम्भव है। इसी संदर्भ में उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनाव 2012 में चुनावी प्रक्रिया का विश्लेषण अपरिहार्य है।

jktuhfrd nyksa esa opkfjd 'kU;rk

किसी भी राजनीतिक दल का अस्तित्व उसकी विचारधारा होती है जिससे जनता अपने आप को जुड़ा व प्रतिबद्ध महसूस करती है। ऐसे में अगर कोई राजनीतक दल, सम्बन्धित विचारधारा के प्रति निष्ठावान कार्यकर्ता को अपना उम्मीद्वार बनाने की जगह किसी ऐसे नये सदस्य को अपना प्रत्याशी बनाता हैं जो दल के प्रति प्रतिबद्ध और निष्ठावान नहीं है या फिर किसी अन्य हित को ध्यान में रखकर प्रत्याशी बनाता है तो मतदान व्यवहार करते हुए जनता के समक्ष यह भ्रम की स्थिति उत्पन्न होती है कि विचारधारा को महत्व दिया जाये या प्रत्याशी को ! उत्तर प्रदेश के चुनाव का यदि विश्लेषण किया जाये तो स्पष्ट है कि धर्म, जाति एवं क्षेत्रवाद पर आधारित राजनैतिक दल वैचारिक शून्यता की स्थिति में पहुंच चुके हैं। सभी दल एक दूसरे पर आरोप-प्रत्यारोप करते रहे हैं। मंहगाई, शिक्षा और आर्थिक तंगी से जूझ रही जनता को प्रदेश के विभाजन और मुस्लिमों के आरक्षण जैसी विभाजनकारी मुद्दों से प्रभावित करने का प्रयास किया गया है। इस चुनाव में स्पष्ट रूप से देखा गया कि किसी भी राजनीतिक दल के पास अपने दल के वैचारिकी के अनुरूप कार्यक्रम का पूर्णतः अभाव है।

lxBu esa ykdrU= dk vHkko

भारत में स्वस्थ दलतंत्र का विकास नहीं हुआ है। एक राष्ट्रीय दल के आन्तरिक संगठन में वंशानुगत राष्ट्रीय अध्यक्ष हैं। ज्यादातर दलों के भीतर मनोयनन की पद्धति है न कि निर्वाचन की। लोकसभा से लेकर विधानसभा तक के प्रत्याशी दल के हाईकमान की अनुमति से तय किये जाते हैं। दल के महत्वपूर्ण फैसले पार्टी के प्रमुखों द्वारा किया जाता है। दल के चुनाव नियमित नहीं होते है।[5] दल के स्वामी

जो निर्णय करते हैं सभी के लिए उसका पालन करना अनिवार्य होता है। प्रत्याशियों के चयन का आधार कोई नहीं जानता।

एक कार्यकर्ता का कार्यकुशल एवं जननेता होने की अपेक्षा अपने नेता के प्रति आज्ञाकारी और निष्ठावान होना ज्यादा आवश्यक है। इस प्रकार राजनीतिक दलों में केन्द्रीकृत निर्णय लेने की प्रवृत्ति से आंतरिक लोकतंत्र समाप्त हो जाता है।[6]

भारतीय संविधान ने बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों को शासन तंत्र में सहभागी होने का अवसर प्रदान किया है। लेकिन राजनीतिक दलों ने हमेशा से ही इन प्रावधानों की उपेक्षा की हैं। महिलाओं को समान अधिकार दिये जाने के राजनीतिक दलों के बार-बार के वादे गलत साबित हुए हैं। उत्तर-प्रदेश 2012 के चुनाव में सभी प्रमुख दलों ने महिला उम्मीदवारों को समान महत्व नहीं दिया। कुल 6839 उम्मीदवारों में सिर्फ 583 महिला अर्थात् कुल नौ प्रतिशत महिलाओं को उम्मीदवार बनाया गया। इस प्रकार कुल 403 विधायकों में 32 अर्थात् आठ प्रतिशत महिलाएं ही विजित हुई। जबकि तुलनात्मक रूप से महिलाओं की सफलता का प्रतिशत कही ज्यादा होने के बावजूद दलों द्वारा उन्हें हमेशा से हाशिए पर रखा गया है। जिससे ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय दल अपने संगठन को लोकतांत्रिक बनाने में असफल रहे हैं।[7] लोकतांत्रिक समाज के लिये राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली भी लोकतांत्रिक होनी चाहिये। राजनीतिक दलों ने हमेशा से ही चुनावों में रूढ़िवादी सोच को अपनाया है।

nyr= vkj /kur= dk lEcU/k

भारतीय राजनितिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों को मिलने वाली राशि से सम्बन्धित व्यापक कानून का सर्वथा अभाव है।[8] व्यक्तिगत या व्यावसायिक समूह द्वारा दिए जाने वाले दान के लिये कहीं कोई उल्लेख नहीं किया गया है। राजनीतिक दलों को मिलनेवाले दान को इण्डियन पिनल कोड (Indian Panel Code) में भ्रष्टाचार निरोधक कानून के अन्तर्गत भी नहीं रखा गया है। जिसका लाभ उठाकर राजनीतिक दल चुनावी प्रक्रिया में करोड़ों की राशि खर्च करते हैं दलों की आमदनी का मुख्य आधार चंदा होता है। उनमें से ज्यादा धन चुनावी चंदा के नाम पर आता है। जो पैसा दान के नाम पर आता है उसके एक छोटे हिस्से को ही आयोग के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

राजनीतिक दलों के उम्मीद्वारों के चुनाव खर्च की सीमा तय है लेकिन स्वयं राजनीतिक दलों के चुनाव खर्च पर चुनाव आयोग का कोई नियंत्रण नहीं है। ऐसे में उम्मीदवार चुनाव खर्च की सीमा से कहीं ज्यादा पैसे खर्च करते हैं।

ग्लोबल इंटीग्रिटी रिपोर्ट के अनुसार राजनीतिक दलों द्वारा उम्मीदवारों से जुड़ी वित्तीय जानकारी आम जनता को उपलब्ध कराने के मामले में भारत को 100 में से

0 अंक मिले हैं।[9] इस संदर्भ में उत्तर प्रदेश में चुनाव 2012 से पहले लखीमपुर में दो करोड़ रूपये पकड़े गये। इस प्रकार चुनाव से पहले अनेक जगह पर बेहिसाब काले धन का मिलना एक गंभीर मुद्दा है। इसके अलावा जो पकड़ से बाहर है उनका कोई हिसाब स्पष्ट नहीं है। अतः चुनाव आयोग के द्वारा खर्चों की सीमा तय किये जाने के बावजूद चुनाव में खर्च किये गये वास्तविक धन का आकलन करना कठिन कार्य है। वर्तमान में उत्तर प्रदेश की विधान सभा में 67.3 प्रतिशत विधायक करोड़पति की श्रेणी में आते हैं।[10] स्पष्ट है कि जनसेवा के क्षेत्र में धनतंत्र हावी है। जो एक गंभीर मुद्दा है। चुनाव में अपना प्रभाव कायम रखने के लिये बड़े पैमाने पर धन व्यक्ति का प्रभाव होता है जो कि भ्रष्टाचार को बढ़ाने का कार्य करता है।[11]

अतः पूर्व निर्वाचन आयुक्त एस.वाई. कुरैशी ने राजनीतिक दलों में पारदर्शिता की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए दलों को मिलने वाले धन का निष्पक्ष परीक्षण किये जाने और निर्वाचन आयोग को विशेष स्थिति में सम्बन्धित राजनीतिक दल की मान्यता समाप्त करने का भी अधिकार दिए जाने का प्रस्ताव रखा था।[12] राजनीतिक दलों के उम्मीदवारों के चुनाव खर्च की सीमा तय है लेकिन स्वयं राजनीतिक दलों के चुनाव खर्च पर चुनाव आयोग का कोई नियंत्रण नही है।जिससे उम्मीद्वार व्यय करने की सीमा से कहीं ज्यादा खर्च करते हैं।

ny-cny dh jktuhfr

भारतीय संसद ने दलबदल पर रोक लगाने के लिये 52वां संविधान संशोधन ऐक्ट (1985) पारित किया। इस दल-बदल कानून का मुख्य उद्धेश्य था कि राजनीतिक शक्तियें के स्वभाविक संतुलन में बिना किसी रूकावट के सिद्धान्त विहीन और अनैतिक दल-बदल पर रोक लग सके। इसलिये दलों में विभाजन अथवा दल परिवर्तन को मान्यता प्रदान की गई। जिससे सैद्धान्तिक ध्रुवीकरण में सहायता मिल सके।[13] लेकिन राजनीति में बढ़ती अवसरवादिता के कारण दल-बदल एक आम परिघटना बन कर रह गई है। राजनीतिक सत्ता और धन प्राप्त करने का लालच दल परिवर्तन का मूल कारण रहा है।[14] दल-बदल की प्रवृत्ति ने राजनीतिक वातावरण को इतना दूषित किया है कि विधायकों की दृष्टि में सिद्धान्त, अनुशासन या नैतिकता का मूल्य अर्थहीन है।

1 जून 1993 को तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष शिवराज पाटिल ने अपने सुझाव में कहा कि संविधान की दसवीं अनुसूची में उल्लिखित दल-बदल निरोधक कानून की कई धाराओं को अधिक परिमार्जित बनाने की आवश्यकता है। विशेषज्ञों की एक समिति के द्वारा इस कानून की धाराओं और व्यवहार का पुनरीक्षण किया जाये जिससे आवश्यक सुधार किया जा सके।[15] अतः दल-बदल कानून पर पुनःविचार कर समय के साथ आवश्यक संशोधन किया जाना अति आवश्यक है।

igpku dh jktuhfr

उत्तर प्रदेश 2012 के विधानसभा चुनाव के विश्लेशण से यह ज्ञात होता है कि समुदाय की पहचान ही एक प्रमुख मुद्दा बन गया है। प्रत्येक व्यक्ति को उसके धर्म, जाति या वर्ग के आधार पर पहचाना जाने लगा है। जैसा कि प्रसिद्ध इतिहासकार रामचन्द्र गुहा का मानना है कि उत्तर प्रदेश में नेताओं द्वारा किसी समुदाय को उनके सामुदायिक पहचान से सम्बोधित करते हैं व्यक्ति के समूहों की तरह नहीं। जबकि दलित, पिछड़े, मुसलमान सभी सामाजिक और आर्थिक विकास चाहते है।[16] भारत में राजनीतिक दल और दलीय व्यवस्था पूरी तरह से सांस्कृतिक, सामाजिक विभिन्नता, नस्ल, जाति, सम्प्रदाय और धार्मिक बहुलता से प्रभावित हैं।[17]

tu l nj gkr tulod

लोकतंत्र के सुचारू संचालन के लिये आवश्यक है कि लोगों का अपने प्रतिनिधियों पर नियन्त्रण रहे जबकि संविधान में राजनीतिक दलों व जन प्रतिनिधि ायों की कोई जवाबदेही तय नहीं की गयी है।

उत्तर प्रदेश में हुए विग्त चुनाव में कुछ जिलों के सर्वे के अनुसार यह तथ्य प्रकाश में आया कि एक-तिहाई लोग अपने क्षेत्र के प्रत्याशियों एवं चुनाव चिन्ह से अनजान है।[18] वास्तविकता यह है कि लोगों को पता नहीं होता कि आखिर कौन-सा प्रतिनिधि किस दल का है और किस दल ने किस व्यक्ति विशेष को अपना प्रतिनिधि घोषित किया हैं!उसके समक्ष यह भ्रम की स्थिति बनी रहती है कि वह किस दल, नेता, अथवा व्यक्ति विशेष से जुड़े। एक बार चुनाव जीतने पर विधायक उस क्षेत्र का न तो दौरा करते हैं और न ही उस क्षेत्र विशेष की समस्याओं के प्रति वे जागरुक होते हैं। जनता और शासन के बीच राजनीतिक दलों की मध्यस्थ की भूमिका में ह्रास, अपने आश्वासनों को पूरा करने में उनकी उदासीनता एवं निष्क्रियता ने भारतीय राजनीतिक दलों के प्रति समाज में निराशा उत्पन्न कर दी है।[19] जिससे राजनीतिक दलों का सामाजिक दायरा संकुचित होता जा रहा है। अतः समाज में जनप्रतिनिधियों के प्रति विश्वसनीयता को बनाये रखना भी राजनीतिक दलों की ही जिम्मेदारी है।

{k=h; nyk dh c<rh l[;k

जिन दलों को मतों व सीटों का एक निश्चित प्रतिशत प्राप्त होता है उन्हें चुनाव आयोग राष्ट्रीय या राज्य स्तर पर मान्यता प्रदान करती है। किन्तु एक निश्चित मत व सीट प्राप्त न करने वाले राजनीतिक दलों के चुनाव लड़ने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। इसी कारण उत्तरप्रदेश के 2012 के चुनाव में छोटे दलों की संख्या अप्रत्याशित रूप से बढ़ी है। इस चुनाव में करीब 149 दल अस्तित्व में आए। ये छोटे दल जिसकी

कोई स्पष्ट नीति नहीं होती है, मुख्य रूप से सौदेबाजी करने की भूमिका में होते हैं। इस सन्दर्भ मे नार्मन डी. पामर का कथन सार्थक है कि ''अब तक स्वस्थ दलीय व्यवस्था उभकर नहीं आयी है तो निकट भविष्य में ऐसा हो सकना कठिन मालूम होता है।[20] वर्तमान में देश में 1761 राजनीतिक दल अस्तिव में हैं।[21] अतः दलों की बहुलता ने लोगो के बीच असमंजस की स्थिति उत्पन्न की है।

uohu lkeurokn dk c<rk izHkko

राजनीतिक दल सबके हितों से मिलकर बना हुआ एक संगठन होता है। लेकिन वर्तमान में ज्यादातर राजनीतिक दलों में किसी परिवार विशेष का नियंत्रण स्थापित है। सियासत और रिश्ते एक-दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं कि प्रायः सभी राजनीतिक दल के प्रमुख नेता अपने दलों पर निजी सम्पति की तरह आधिपत्य स्थापित करते हैं। यह एक तरह से नये सामंतवाद का उदय है। ऐसे कई उम्मीदवार होते हैं जिनका अपने क्षेत्र विशेष में इतना प्रभाव होता है कि वे चाहे जिस दल से खड़े हो जाए, उनकी जीत निश्चित है। लोकतंत्र को प्रभावशाली बनाने के लिये इस नये तरह के सामंतवाद पर कुठाराघात करना आवश्यक है। क्योंकि लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को शासन में सहभागी होने का मूलभूत अधिकार है। एक नागरिक के लिए मतदान करना जितना आवश्यक है उतना ही एक उम्मीदवार को चुनाव आयोग द्वारा प्रतियोगिता का समान अवसर सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है।[22]

jktuhfr dk vijk/kdj.k

राजनीति का अपराधीकरण एक असमान्य परिघटना है। राजनीति को समाज सेवा का क्षेत्र माना जाता है। समाज जनप्रतिनिधियों से सुसंस्कृत होने की अपेक्षा करता है, लेकिन समय के साथ हमारी राजनीतिक संस्कृति में गम्भीर बदलाव आए हैं। जिसकी वजह से राजनीतिक दल विचारधारा से परे कर्मठ और निष्ठावान कार्यकर्त्ताओं के स्थान पर आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों को अपना उम्मीदवार बनाने लगे हैं। सभी दल राजनैतिक हित के लिये ऐसे व्यक्ति को अपना प्रत्याशी बनाते हैं जिनकी कोई सामाजिक कार्यकर्ता की पृष्ठभूमि नहीं है। यू.पी. इलेक्शन वाच (U.P. Election Watch) की ओर से किये गये विश्लेषण से ज्ञात होता है कि 403 विधायकों में 189 अर्थात् 47 प्रतिशत विधायक चुनाव लड़ने से पूर्व दाखिल हलफनामें में अपने खिलाफ आपराधिक मामले घोषित किये हैं। जिसमें 49.6 प्रतिशत, सपा, 36.3 प्रतिशत, बसपा, भाजपा 53.2 प्रतिशत, कांग्रेस 46.4 प्रतिशत, रालोद 22.2 प्रतिशत, निर्दलीय 83.3 प्रतिशत, पीस पार्टी और कौमी एकता दल के 50 प्रतिशत हैं।[23] तात्पर्य है कि दलों के बीच वैचारिक मतभेद होने के बावजूद अपराध को बढ़ावा देने में कोई भी दल पीछे नहीं है। अपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्तियों को राजनैतिक दल पनाह देने का कार्य कर रहे हैं। जनप्रतिधि समाज में अपना प्रभाव बढ़ाने और

अपराधी कार्य छुपाने के लिए एक दूसरे का सहयोग करने लगे हैं। इसलिये समाज में पूर्व की अपेक्षा राजनीतिक दलों की विश्वसनीयता में भी बदलाव आया है।

अतः ऐसे प्रतिनिधियों से यह अपेक्षा करना कि वे समाज और राष्ट्र की सेवा को प्राथमिकता देंगे, कोरी कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है। राजनीतिक दलों में आपराधिक प्रवृत्ति के लोगों को संरक्षण मिलने से उन कर्मठ और लगनशील कार्यकर्ताओं में भी हीन भावना कार्य करने लगती है जो वर्षों से दल के प्रति प्रतिबद्ध रहे हैं।

भारत में चुनाव सुधारों के लिये राजनीति का अपराधीकरण एक प्रमुख चुनौती बनता जा रहा है। चुनाव आयोग व सर्वोच्च न्यायालय की अनेक कोशिशों के बावजूद संसद और विधान सभाओं में आपराधिक पृष्ठभूमि के प्रतिनिधियों की संख्या में वृद्धि हुई है।

2002 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपराधीकरण पर अकुंश लगाने के उद्धेश्य से महत्वपूर्ण फैसला दिया। जिसके अनुसार उम्मीदवारों को हलफनामें में अपनी शिक्षा संपत्ति और आपराधिक ब्योरे देना अनिवार्य है। लेकिन गलत या आधी-अधूरी जानकारी देने पर उम्मीद्वारी खत्म होने या चुनाव स्थगित होने जैसे प्रावधान नहीं होने के कारण प्रत्याशी सही सूचना देने के लिए बाध्य नहीं हैं।

लेकिन हलफनामे की जांच पड़ताल और गलत जानकारी देने वाले उम्मीदवारों के खिलाफ कार्यवाई और विजयी प्रत्याशियों की सदस्यता रद्द करने के विषय पर अभी भी सर्वमान सहमति नहीं बन पायी है।[24]

राजनीति के अपराधीकरण और अपराध के राजनीतिकरण पर वोहरा समिति की रिपोर्ट (1993) से लेकर विधि आयोग की 244 वें रिपोर्ट (2014) ने इस संदर्भ में सुझाव दिए, लेकिन वस्तुतः परिस्थितियों में कोई सुधार नहीं हो पाया है।

इस प्रकार चुनाव व दलों के बीच संबंधों को विश्लेषित करके ही चुनाव सुधार को सफल बनाया जा सकता हैं। राजनीति के अपराधीकरण को केवल कानूनी या प्रशासनिक प्रावधानों से नहीं रोका जा सकता है। इसके लिये पहल राजनीतिक दलों को ही करनी पड़ेगी, क्योंकि दल के प्रजातांत्रिक न होने पर संस्थाएं भी अप्रजातांत्रिक हो जाएंगीं। ऐसी स्थिति में देश के नीति-निर्माता लोगों के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं होते। वे तो सिर्फ शक्तिशाली हितों के अभिकर्ता मात्र होते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन के उपरान्त निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि समय के साथ हमारा समाज अधिक जटिल हो गया है। ऐसे में संविधान द्वारा स्थापित हमारे लोकतांत्रिक संस्थान को अधिक विकसित होने की आवश्यकता है। इस सन्र्दभ में समाज में जनप्रतिनिधियों की घट रही विश्वसनीयता को बनाये ररवने की आवश्यकता है। जो कि निष्पक्ष एवं स्वतंत्र चुनाव से ही सम्भव है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में

राजनीतिक दल अपरिहार्य हैं। अतः इनमें सुधार के बिना चुनाव सुधार अपर्याप्त होगें। राजनीतिक दलों पर नियंत्रण व पारदर्शिता हेतु कानून बनाने और उसके कड़ाई से पालन किये जाने की आवश्यकता है।सभी दलों को इसके लिए वास्तविक, प्रतिबद्ध और गम्भीर प्रयास करने होगें। जिससे चुनावी प्रतियोगिता संसाधनों के बीच न होकर नीतियों एवं मूल्यों के लिए हो। चुनाव सुधार के द्वारा ही शक्ति और उतरदायित्व में सन्तुलन स्थापित हो सकेगा। अतः प्रतिनिधिक संस्थाओं की गरिमा को बनाये रखने के लिए अविलम्ब चुनाव सुधार की आवश्यकता है।

InHkxUFk Iph

1. बसु, दुर्गा दास, *भारत का संविधान–एक परिचय*, प्रेटिंस हाल और इंडिया प्राइवेट लिमिटेड, 1997, नई दिल्ली, पृष्ठ–375–377 ।
2. Saini, Pankaj. *Parliamentary Democracy and Political Change in India*, Alfa Publication, New Delhi, 2009. Page 60-63.
3. कश्यप, सुभाष, *हमारा संविधान*, नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली, पृश्ठ–257
4. छोकड़ एस0 जगदीश, 'चुनाव सुधार, अतीत और भविष्य', *योजना*, जुलाई 2014, वर्ष, 38, अंक–7. पृश्ठ 13–14,
5. R.P. Bhalla, 'Electoral Reforms' in *Electoral Reforms*, general editor, Dighe, Sharad and co- editor Sundriyal R.B., shree publishing house, New Delhi, page -135-136.
6. http://in.jagran.yahoo.com/news
7. *हिन्दुस्तान*, वाराणसी, सोमवार, 12 मार्च, 2012, पृ0–15.
8. Jain R.B., 'Political Financing in India', in *Electoral Reforms in India*, edited by Upadhyaya, Anjoo Sharan, Concept publishing company, 2005, New Delhi.
9. *हिन्दुस्तान*, 3 अप्रैल, 2012 वाराणसी, मंगलवार।
10. http://www.jansatta.com
11. Dubey, M.P, 'Perspectives on Electoral Reforms' in *Electoral Reforms in India*, edited by Uppadhyay, Anju Sharan Concept publishing company ,2005, New Delhi,page. 79-80.
12 *हिन्दुस्तान*, 18 अप्रैल, 2012, वाराणसी, पृष्ठ–11
13. सुभाष कश्यप, *भारतीय राजनीति और संविधान, विकास, विवाद और निदान*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, 1999, पेज–48,
14. एस.एम. सईद, *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था*, भारत बुक सेन्टर, लखनऊ 2006, पेज–308
15. सुभाष कश्यप, *तदैव*, पृष्ठ–54
16. गुहा, रामचन्द्र, 'उत्तर प्रदेश की राजनीति', *हिन्दुस्तान* 11 फरवरी, 2012, वाराणसी

17. Jain, R.B, 'Political Financing in India', in *Electoral Reforms in India,* edited by Uppadhyay, Anju Sharan Concept publishing company, 2005, New Delhi, Page, 86

19. कौशिक सुशीला, *भारतीय शासन एवं राजनीति,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1984, पृष्ठ–398

20. Palmer, Norman D., *The Indian Political System*, University of Pennsylvania, Honghton, MIfflin Company , Boston 1970. Page-209

21. http://en.wikipedia.org/List_of_political_parti

22. कुमार, संजय, 'चुनाव आयोग की और भी हैं चुनौतियाँ', *हिन्दुस्तान,* 24 अप्रैल 2014, वाराणसी, पृष्ठ–14.

23. *हिन्दुस्तान,* वाराणसी संस्करण सोमवार, 12, मार्च,2012, पृ0 –15

24. प्रधान, आनंद, 'चुनाव बनाम अपराधीकरण', *योजना,* जुलाई 2014, वर्ष–58, अंक–7, पृष्ठ–44.

भारत में राजनीति–प्रशासन–पूँजीवाद का गठबंधन एवं कालेधन का प्रश्न

सोनू कुमार

भारत में काले धन की समस्या लगातार गहराती जा रही है। इसके प्रभाव से राजनीति भी अछूती नहीं है। चाहे मुद्दा भ्रष्टाचार का हो या चुनावी राजनीति का व काले धन की समस्या का, हमेशा केन्द्र में रहता है। इस शोध पत्र के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया जा रहा है, कि भारतीय राजनेता जिन्हें सेवा भाव से ओत-प्रोत होना चाहिए था वे लगातार अपनी संपत्ति को बढ़ाने की होड़ में जुटे हुए हैं। वहीं दूसरी ओर राजनीतिक दल चंदे के रूप में औद्योगिक घरानों से मोटी रकम वसूल रहे हैं। औद्योगिक घराने भी संभावित विजेता दल या सारे महत्वपूर्ण दलों को मोटी रकम चुकाकर निश्चिंत हो राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था का दुरुपयोग कर अपने मुनाफे को कई गुना बढ़ाने की ताक में रहते हैं। वस्तुतः यह राजनीतिक चंदा औद्योगिक घरानों के लिए एक निवेश के समान है, जिसके माध्यम से मानों उन्होंने कोतवाल को अपने पक्ष में कर दिया है और अब कोई भी अपराध करने के लिए स्वतंत्र हैं। इस प्रकार काले धन की समस्या न केवल आर्थिक बल्कि राजनीतिक व्यवस्था पर भी काले बादल की तरह आच्छादित हो गई है।

हालांकि वर्तमान समय में भारतीय राजनीति में कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ उभर रही हैं। जैसा कि पिछले दिनों दिल्ली विधानसभा चुनाव में देखने को मिला। महज एक साल पुराने दल ने 15 साल से सत्तासीन दल को चुनावी सत्ता से बेदखल कर दिया। इस दल ने आम आदमी की रोजमर्रा की समस्याओं को मुद्दा बनाकर चुनाव में जीत हासिल की तथा यह साबित कर दिया कि केवल पैसे के बल पर चुनाव नहीं जीता जा सकता है।[1] इस चुनाव परिणाम के बाद कई नेताओं में आम दिखने की होड़ सी लग गयी है। अब यह देखना है कि यह चुनाव परिणाम भारतीय राजनीति को किस प्रकार तथा कहाँ तक प्रभावित करता है।[2] यह चुनाव परिणाम भारतीय राजनीति में बढ़ रहे काले धन के प्रवाह में अवरोधक साबित हो पाएगा या नहीं अभी से यह अनुमान लगाना अतिश्योक्तिपूर्ण होगा।

जिस धन पर कर न चुकाया गया हो वह धन काला धन है। आज यह वृहद या लघु स्तर पर लगभग सभी देशों में विद्यमान है। चाहे बड़े स्तर की योजना हो, मौद्रिक नीति, वित्तीय नीतियाँ हों, चाहे शिक्षा या स्वास्थ्य संबंधी नीतियाँ हो काली अर्थव्यवस्था के सर्वनाशक प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं है। इसका दुष्प्रभाव इतना ज्यादा बढ़ गया है कि अर्थव्यवस्था में भारी अक्षमता पैदा हो रही है, संसाधनों की बर्बादी हो रही है, उत्पादकता कम हो रही है तथा भारत की वैश्विक स्तर की प्रतिस्पर्धात्मक ताकत घट रही है। वर्तमान समय में काली अर्थव्यवस्था ने सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र को भी अपने आंगोश में ले लिया है।[3]

काली अर्थव्यवस्था का सबसे बड़ा आधार राजनीतिज्ञ, व्यवसायी वर्ग तथा नौकरशाही का गठजोड़ ही है। ये तीनों त्रिकोण बनाकर लोकतंत्र के वास्तविक मूल्य को समाप्त कर उसे जनविरोधी बना रहें हैं। इनके द्वारा राजकीय नियम का उल्लंघन किया जाता है, सरकारी खर्च में कमीशनखोरी तथा कई प्रकार के गैर-कानूनी तरीके से अपनी आय बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार अनैतिक तरीके से प्राप्त धन को बार-बार निवेश को द्वारा कानून के दायरे के बाहर एक विशाल और तीव्र वृद्धिमान और गैर-कानूनी तथा कलुषित अर्थव्यवस्था को जन्म दिया गया है। एक आकलन के अनुसार भारत में कालेधन जीडीपी का 50 प्रतिशत तक पहुंच गया है। हमारे यहाँ कालेधन के खपत का सबसे बड़ा क्षेत्र रियल इस्टेट, सोना तथा शेयर बाजार है।[4] रियल इस्टेट में तो स्थिति यह है कि यहाँ कागजों की तुलना में वास्तविक कीमत कई गुना अधिक होती है।

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अपनी आर्थिक स्थिति को संतुलित करने के उद्देश्य से मिश्रित अर्थव्यवस्था को अपनाया गया। परंतु सरकार के तीनों अंगो द्वारा अपने कार्य को सुचारू रूप से नहीं कर पाने के कारण घोटालों की राजनीति या काली अर्थव्यवस्था का खेल नेहरू जी के शासन काल से ही शुरू हो गया था। यह विकराल रूप में राजीव गांधी के समय तब सामने आया जब बोफोर्स मामले का पटाक्षेप हुआ। 1991 मे नरसिम्हा राव सरकार द्वारा नई आर्थिक नीति को अपनाने का परिणाम यह हुआ कि घोटाले और काला धन की सुनामी सी आ गयी। राव की अल्पमत सरकार बचाने के लिए संसदीय कार्य मंत्री विद्याचरण शुक्ल द्वारा कई सांसदों को मंत्री पद तथा संसदीय समिति की अध्यक्ष बनाने का वादा कर अपने पक्ष में करने का आरोप लगाया गया।[5] इस प्रकार संसद से शुरू हुआ यह भ्रष्टाचार की आग ऐसी फैली की समाज का शायद ही कोई तबका इससे बच पाया हो।

नई आर्थिक नीति या नवउदारवाद के अनुसार अधिक से अधिक से धन कमाना स्वागत योग्य है और इस प्रकार पूंजीपति वर्ग धड़ल्ले से नियमों का लगातार उल्लंघन कर लोकतंत्र एवं राष्ट्रीय भावना को तार-तार कर रहे हैं। यहाँ यह स्पष्ट होता है कि नवउदारवादी नीतियों के तहत काली अर्थव्यवस्था को न केवल प्रसार

के नये अवसर मिले हैं बल्कि उसने कुछ नये और सामाजिक दृष्टिकोण से और अधिक हानिकारक आयाम ग्रहण कर लिये हैं।

नव-उदारवादी नीतियों का सबसे बुरा प्रभाव यह है कि इसने गरीबी और अमीरी के बीच ऐसा फैसला पैदा कर दिया हे, जिसे भरा नहीं जा सकता। साल-दर-साल देश में अरबपतियों की संख्या तेजी से बढ़ रही है, समाज का एक तबका इसे नव-उदारवाद की सफलता का परिचायक मानता है। यह समूह दुनिया भर में निवेश करके बाकी विदेशी कंपनियों को खरीदने के बावजूद हंगामा मचा रहा है, लेकिन इनमें से किसी को भी उवउदारवादी नीतियों के कारण शोषित किसानों की चिंता नहीं है। देश के एक भाग एवं दूसरे भाग के लोगों में असमानता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। हरियाणा-पंजाब में प्रतिव्यक्ति आय और बिहार-झारखण्ड के प्रतिव्यक्ति आय का फासला कई गुना बढ़ गया है।[6] नवउदारवाद की लगभग सारी नीतियाँ कृषि के प्रति-उदासीन तथा कृषक-विरोधी रही हैं या इसका ज्यादा से ज्यादा आर्थिक लाभ लेने वाली ही रहीं हैं। खुदरा व्यापार का विदेशीकरण इसका ज्वलंत उदाहरण है। पिछले दिनों वालमार्ट द्वारा व्यापार के विदेशीकरण हेतु विभिन्न राजनीति एवं व्यावसायिक घटकों के लामबंदीकरण करने में चार करोड़ का खर्चा किया गया। इससे जुड़ी भारतीय कंपनियों ने भी काफी धन खर्च किया।

वर्तमान समय में भारतीय राजनीति एक व्यवसाय का रूप ग्रहण कर लिया है। अब यह जनसेवा, समाज सेवा या व्यवस्था परिवर्तन का औजार न होकर धन कमाने का जरिया बन गया है। हालांकि भारतीय संदर्भ में राजनीति और व्यवसाय का संबंध उतना ही पुराना है जितना कि भारतीय इतिहास। चाहे प्राचीन काल के राजा प्रसेनजीत की बात करें या स्वतंत्रता संग्राम के दौरान मदन मोहन मालवीय हों या गाँधी जी सभी का संबंध प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से व्यवसायी वर्ग से रहा है।[7] उनका उद्देश्य समाज कल्याण था पर वर्तमान समय में राजनीतिज्ञ और व्यवसायी वर्ग का संबंध समाज-विरोधी तथा निजी स्वार्थ के रूप में उभरा है। पहले नेताओं और पूँजीपतियों का गठजोड़ होता था, पर अब दोनों का मिश्रण हो गया है, राजनेता और व्यवसायी का फासला समाप्त सा हो गया है। नेता व मंत्री पूँजीपति व ठेकेदार बन रहे हैं तथा ठेकेदार व पूँजीपति नेता बन रहे हैं। आज भारतीय समाज में दोनों की मिली–जुली संकर नस्ल तैयार हो रही है। इसी का परिणाम है कि आज वोटों को नोटों के माध्यम से खरीदा जा रहा है। पिछले दिनों झारखण्ड में राज्यसभा चुनाव के दौरान नोटों से भरी एक गाड़ी बरामद हुई। यह इस बात का प्रमाण है कि राजनीति में भ्रष्टाचार कितना विकराल रूप धारण कर लिया है।

राजनीति और व्यापार का एकीकरण भी नवउदारवादी नीतियों का ही परिणाम है। वर्तमान में मंत्री-नेता व अफसर व्यवसायी वर्ग के दलाल बन गये हैं। आज के राजनेता यह समझ गये हैं कि कैसे आम लोगों के वास्तविक हितों को नजरअंदाज

करके मात्र चुनाव के समय कुछ लालच देकर तथा जातिवाद व संप्रदायिकता फैलाकर चुनाव जीता जा सकता है। वर्तमान समय में चुनाव इतना खर्चीला हो गया है कि आमलोग स्वयं को इसमें पूरी तरह असहाय पाते हैं। दूसरी तरफ उन नेताओं की लंबी कतार देखी जा सकती है। जिनकी संपत्ति चुनाव-दर-चुनाव अप्रत्याशित रूप से बढ़ रही है तथा उस पर कोई जांच या कार्यवाई नहीं हो तो यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। नीचे सारणी में ऐसे ही कुछ नेताओं की सूची दी जा रही है, जिन्हें यादृच्छिक रूप में लोकसभा तथा कुछ राज्य विधानसभा के दौरान घोषित सम्पत्ति के विवरण से लिया गया हैः

nk puko d chp dN jkturkvk d lifÙk dk vrj ¼lkj.kh&01½

राजनेता	पार्टी	वर्ष	कुल संपत्ति	वृद्धि
जगमोहन रेड्डी	वाई.एस. राजशेखर कांग्रेस	2004	10 लाख	
		2009	77 करोड़	66 करोड़, 90 लाख
		2011	366 करोड़	289 करोड़
मायावती	बसपा	2003	1 करोड़	
		2007	50 करोड़	49 करोड़
		2011	111.64 करोड़	61 करोड़
पवन कुमार बंसल	कांग्रेस	2004	3 करोड़	
		2009	8 करोड़	5 करोड़
ज्योतिरादित्य सिंधिया	कांग्रेस	2004	2 करोड़	
		2009	12 करोड़	10 करोड़
सचिन पायलट	कांग्रेस	2004	25 लाख	
		2009	4 करोड़	3 करोड़ 75 लाख
नवजोत सिंह सिद्धू	भाजपा	2004	6 करोड़	
		2009	14 करोड़	8 करोड़
मेनका गांधी	भाजपा	2004	6 करोड़	
		2009	17 करोड़	11 करोड़
अजीत सिंह	रालोद	2004	1 करोड़	
		2009	8 करोड़	7 करोड़
भरतहरि महताब	वीजद	2004	1 करोड़	
		2009	5 करोड़	4 करोड़
सिद्धेश्वर जी.एम	भाजपा	2004	5 करोड	
		2009	14 करोड	9 करोड
राज बब्बर	सपा	2004	2 करोड	
		2009	11 करोड	9 करोड
प्रणव मुखर्जी	कांग्रेस	2004	1 करोड	
		2009	2 करोड	1 करोड

ममता बैनर्जी	ए.आई.टी.सी.	2004	3.75 लाख	
		2009	4.73 लाख	1 लाख
प्रबोध पांडा	सी.पी.आई.	2004	32 लाख	
		2009	22 लाख	–10 लाख
जगतनारायण सिंह	राजद	2005	11 लाख	3.80 करोड
		2010	3.91 करोड	
पूर्णिमा यादव	जदयु	2005	34 लाख	2.43 करोड
		2010	2.78 करोड	
रेणु देवी	भाजपा	2005	41 लाख	2.31 करोड
		2010	2.78 करोड	
कौशल यादव	जदयु	2005	46.72 लाख	2.31 करोड
		2010	2.78 करोड	
एन.आर. रंगराजन	कांग्रेस	2006	2 करोड़	8 करोड
		2011	10 करोड	
मेहबूब अली	सपा	2007	31 लाख	4 करोड
		2012	4.65 करोड	
रमेश चंद्रा	बसपा	2007	2.50 लाख	3.72 करोड
		2012	3.75 करोड	
सतीश महाना	भाजपा	2007	3 करोड़	4 करोड
		2012	7 करोड	
नवाब काजीम अली खान	कांग्रेस	2007	9 करोड	47 करोड
		2012	56 करोड	
लालू प्रसाद	राजद	2004	86 लाख	1.14 करोड
		2009	2 करोड	
मुलायम सिंह यादव	सपा	2004	1 करोड	1 करोड
		2009	2 करोड	

स्रोतः ये आंकड़े http://adr.india.org से संकलित किये गये हैं।

जैसा कि उपरोक्त सारणी में दिखाया गया है कि कम समय में नेताओं की संपत्ति में अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है। जगनमोहन रेड्डी जो पहले कांग्रेस में थे, 2004 के लोकसभा चुनाव में उनके पास दस लाख की संपत्ति थी जो 2009 में बढ़कर 77 करोड़ हो गयी, तथा 2011 के उपचुनाव में पर्चा दाखिल करते समय उन्होंने अपनी संपत्ति 366 करोड़ बताया है। ऐसे ही मायावती की संपत्ति 2003 में 1 करोड़ थी, जो 2007 में बढ़कर 50 करोड़ हो गयी तथा 2012 राज्यसभा चुनाव के नामांकन के दौरान उन्होंने अपनी संपत्ति 111.64 करोड़ बताया।[8] राजद के जगत नारायण सिंह का भी हाल कुछ ऐसा ही है– 2005 से 2010 के बीच उनकी संपत्ति 11 लाख से बढ़कर 3.91 करोड़ हो गया। अघोषित संपत्ति की बात अलग है, घोषित संपत्ति में भी इस तरह की वृद्धि पर कोई सवाल नहीं उठाया जाता, जबकि यह सर्वविदित है कि नेताओं की कितनी वेतन और कितना भत्ता मिलता है। एक तरफ जहाँ अप्रत्याशित सम्पत्ति वृद्धि वाले नेता हैं, तो दूसरी तरफ वैसे भी नेता हैं, जिनकी

संपत्ति सामान्य ढंग से बढ़ी है, या कम बढ़ी है, या फिर घटी हे। ए.आई.टी.सी. के (ऑल इण्डिया तृणमूल कांग्रेस) ममता बैनर्जी का ही ले तो 2004–2009 के बीच उनकी संपत्ति में एक लाख रुपये की वृद्धि देखी गयी, जबकि सी.पी.आई. के प्रबोध पांडा की संपत्ति में कमी आयी है। नेताओं की एक ऐसी श्रेणी भी हैं, जिनकी अपने नाम की घोषित संपत्ति तो बहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन अपने पत्नी, बच्चे एवं

dN vk|kfxd ?kjkuk }kjk jktuhfrd nyk dk fn;s x;s pan dh jde

¼lkj.kh 2½

राजनीतिक दल	1.	2.	3.	4.	5.	6.
कांग्रेस	भारती इलेक्टोरल ट्रस्ट (11 करोड़)	टॉरेन्ट पावर लिमिटेड (4.5 करोड़)	अदानी एण्ड मुद्रा पोर्ट एण्ड सेज (3 करोड़)	क्रॉम्पटन ग्रीयर्स (1.50 करोड़)	रसेल क्रेडिट लिमिटेड (1.50 करोड़)	जनरल इलेक्टोरल ट्रस्ट (1 करोड़)
भाजपा	जेनरल अलेक्ट्रोरल ट्रस्ट (6.51 करोड़)	भारती इलेक्टोरल ट्रस्ट (6 करोड़)	पोपट भाई उकाभाई बेकरी	लार्सनएण्ड टर्बो लिमिटेड (2 करोड़)	विडियोकॉन इण्डस्ट्रीज़ (2 करोड़)	टॉरेन्ट पावर लिमिटेड (2.5 करोड़)
एन.सी.पी.	विडियोकॉन इण्डस्ट्रीज़ (1 करोड़)	अंबुजा सीमेन्ट (1 करोड़)	टॉरेन्ट पावर लिमिटेड (1 करोड़)	वैल्यु इण्डस्ट्रीज़ लिमिटेड (1 करोड़)	निप्पन इनवेस्टमेंट (1 करोड़)	इनफिना फाइनेन्स (1 करोड़)
सी.पी.एम.	सेव कंसट्रक्सन्स रंगारेड्डी (0.35 करोड़)	एलाइज़ डेवलपर्स (0.06 करोड़)	मायत्री प्रोजेक्ट (0.05 करोड़)	जी. बालरेड्डी (0.05 करोड़)	पोकरना लिमिटेड (0.05 करोड़)	सैमागढ़ रीयल (0.05 करोड़)
सी.पी.एम.	केरला स्टेट सी.पी.आई. (0.15 करोड़)	ए.बी. वर्धन (0.08 करोड़)	ए.पी. स्टेट सी.पी.आई. (0.07 करोड़)	कृष्ण श्याल 3.50 लाख	एन.के. गौर 3 लाख	डी. राजा 2.10 लाख
सपा	होण्डा सी. कार्स इण्डिया लिमिटेड (0.1 करोड़)	जय सिहं यादव (0.005 करोड़)	प्रनवीर सिंह इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी (0.005 करोड़)	नलीन टेण्डल (0.005 करोड़)		

स्रोतः ये आंकड़े http://adr.india.org से लिये गये हैं।

रिश्तेदारों के नाम पर कागजी रूप से व्यवसाय दिखाकर अरबों रुपये की अकूत संपत्ति इकट्ठा की है। राजद के लालू यादव और सपा के मुलायम सिंह इस श्रेणी में आते हैं। लालू प्रसाद की 2004 में 86 लाख की संपत्ति थी जो 2009 में बढ़कर दो करोड़ हो गयी। जबकि इनकी वास्तविक संपत्ति इससे कई गुना अधिक हो सकती है। मुलायम सिंह का भी लगभग यही हाल है। लेकिन कुल मिलाकर देखा जाये तो कमी या सामान्य वृद्धि वालों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं है। पर सवाल यह है कि इनके विरुद्ध कोई कारवाई क्यों नहीं की जाती, क्या इस तरह के भ्रष्टाचार को रोकथाम करने में हमारा लोकतंत्र सक्षम नहीं है? मेरे हिसाब से कुछ ऐसे उपाय अपनाने चाहिए ताकि इस पर काबू पाया जा सके, पहला यह हो सकता है कि किसी भी मंत्री को मंत्री पद ग्रहण करते समय अपनी संपत्ति का विवरण दें तथा पद छोड़ते समय भी अपनी संपत्ति का विवरण दें। दूसरा उपाय यह भी किया जा सकता है कि पद पर रहने क दौरान उनकी संपत्ति में अप्रत्याशित वृद्धि कैसे हुई, इस बात का लेखा-जोखा पेश करें।

सारणी–2 में राजनीतिक दल द्वारा औद्योगिक घराने द्वारा मिलने वाली राशि को दिखाया गया है। इन आंकड़ों से एक बात स्पष्ट है कि कई औद्योगिक घराना दोनों प्रमुख पार्टी कांग्रेस एवं भाजपा को चंदा देतें हैं, ताकि किसी की भी सरकार बने फायदा तो उन्हें मिलना ही है। औद्योगिक घरानों द्वारा बड़े पैमाने पर राजनीतिक दलों को दान देने के कई उद्देश्य होते हैं। जैसे, कर चोरी का मामला हो या सरकारी नीतियों को अपने अनुकूल करवाने की बात हो, सभी कार्य किसी भी दल के सत्ता में आने पर आसान हो जाते हैं अब राजनीतिक दल को दिये गये चंदे की रकम पर औद्योगिक घरानों को कर से राहत दे दी गई है। इससे चन्दे की रकम में और वृद्धि होने की उम्मीद है। भारतीय इलेक्टोरल ट्रस्ट द्वारा अकेले कांग्रेस और भाजपा को मिलाकर 17 करोड़ चंदा दिया गया। इसी प्रकार टॉरेन्ट पॉवर द्वारा दोनों पार्टियों को सात करोड़ का दान दिया गया है। इतनी बड़ी रकम कोई कंपनी अपना नुकसान करके नहीं दे सकती, इन कंपनियों द्वारा दीर्घकालिक निवेश की योजना बनाई जाती है। इस रकम की भरपायी के लिए वे सरकार का दुरुपयोग करते हैं, परिणामतः घोटाला के प्रचलन को बढ़ावा मिलता है। टू-जी स्पेक्ट्रम घोटाला और वर्तमान कोयला आवंटन घोटाला इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। औद्योगिक घरानों को फायदा पहुँचाने के लिए सरकारी नीतियों में ढील दे दी जाती है, तथा सार्वजनिक संसाधनों को समाज के शोषक वर्ग को सौंप दिया जाता है।

InHK

1. *दैनिक जागरणः राष्ट्रीय संस्करण,* 9 दिसम्बर 2013, पृष्ठ 8।
2. कुणाल प्रधान, 'शहरी मध्यम वर्ग का महाविद्रोह', *इण्डिया टुडे,* 22 जनवरी 2014।
3. अरुणा कुमार *'ब्लैक इकानोमी इन इण्डिया'*, पेंग्विन बुक्स, दिल्ली, 2002, पृ. 12।

4. वही, पृ. 4।
5. *टाइम्स ऑफ इण्डिया,* 23 सितम्बर 2012, पृ. 17
6. अरविन्द मोहन, *''बीस बरस के विकास का भ्रम''*, कमल नयन काबरा, एट.एल., (सं.), *वैकल्पिक आर्थिक वार्षिकी–3, भारत में आर्थिक वृद्धि और विकासः गहराते अंतर्विरोध, 1991–2011,* नई दिल्लीः युवा संवाद प्रकाशन, पृ. 23।
7. गिरीश मिश्रा एवं ब्रज कुमार पाण्डे, *व्हाइट–कॉलर क्राइम्स,* नई दिल्ली, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, 1998, पृ. 1991।
8. *द हिन्दू,* 30 जुलाई 2012, पृ. 8।

पर्यावरणीय राजनीतिः भारत के संदर्भ में एक अध्ययन

रवीन्द्र कुमार वर्मा

विडम्बना यह है कि एक तरफ जहाँ हमारे प्रधानमंत्री अंतर्राष्ट्रीय मंच पर जलवायु न्याय (climate Justice) की गुहार लगा रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर भारत पर्यावरण संरक्षा में सबसे पिछले पायदान पर है। येल सेंटर फॉर इनवायरमेंटल लॉ ऐण्ड पॉलिसी द्वारा तैयार 2014 के पर्यावरण उपलब्धि सूचकांक (इनवायरमेंटल परफॉरमेंस इन्डेक्स) के अनुसार भारत की कोटि (रैंक) 178 देशों में 155वीं है।[1] जलवायु न्याय कौन दिलाएगा? क्या जलवायु पर किसी का नियंत्रण है जो आह्वान मात्र से जलवायु न्याय मिल जायेगा? हम जानते हैं कि पर्यावरणीय संतुलन के बिगड़ने का मुख्य कारण मानवीय गतिविधियाँ ही है। मनुष्य वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों (CO_2, CH_4, N_2O) का उत्सर्जन विभिन्न तरीकों से करता रहा है। विकास के क्रम में उठाए गए सभी कदम पर्यावरण के विरूद्ध पड़े क्योंकि हमने इसे ध्यान में रख कर कदम नहीं उठाए। पिछले कुछ दशकों से हम सतत् विकास (sustainable development) का नारा लगा तो रहे हैं, पर उस दिशा में मजबूत प्रयास नहीं कर पाते। विपन्नता एवं आर्थिक पिछड़ेपन से निपटने में पर्यावरण पर ही चोट पड़ती है। बड़े–बड़े डैम, सड़कें, उद्योगों की स्थापना आदि में हम पर्यावरण को छेड़ते रहे हैं। हमारी राजनीतिक व्यवस्था पर्यावरण स्वयंसेवियों को नजरअंदाज करती रही है। सुन्दर लाल बहुगुणा द्वारा संचालित 'चिपको आंदोलन' या राजेन्द्र सिंह द्वारा जल संरक्षण के कार्य या मेधा पाटेकर द्वारा 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनका राष्ट्रव्यापी प्रसार नहीं हुआ और न ही उनके आधार पर ऐसी नीतियाँ बनाई गईं जिससे हमारा पर्यावरण संरक्षित रह सके। आज विडम्बना यह भी है कि पर्यावरण का प्रदूषण जो भी करे, फल सभी को भुगतना पड़ता है। एक ओर सम्पन्न देश या सम्पन्न वर्ग ज्यादा प्रदूषित करते हैं और दूसरी ओर गरीब देश एवं समाज के निम्न वर्ग ज्यादा पीड़ित होते हैं। तीसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि पर्यावरण संरक्षा के लिए सर्वव्यापी प्रेरक की कमी है। प्राचीन काल से ही पर्यावरण की संरक्षा भारतीय संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग रही है। धर्म के पालन के क्रम में राजा प्रजा

दोनों प्रकृत्ति की संरक्षा करते थे। परन्तु आज ऐसे तत्व का लोप हो गया है। मेरी मान्यता है कि ऐसी स्थिति की प्राप्ति केवल राजनीति से की जा सकती है।

बढ़ती भूमण्डलीय ऊष्मा एवं जलवायु परिवर्तन की स्थिति का विकासशील देशों, खासकर भारत जैसे कृषि-प्रधान देश की अर्थव्यवस्था एवं इसके प्राकृतिक पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। वैज्ञानिकों ने यह अनुमान लगाया है कि दक्षिण और दक्षिणपूर्व एशिया के वायुमण्डल में CO_2 कार्बनडाईऑक्साइड का जमाव लगभग दोगुना हो गया है, जिसका परिणाम यह होगा कि जल्द ही इस क्षेत्र में भारी वर्षा की आवृति बहुत अधिक बढ़ जायेगी। इन परितर्वनों से प्राकृतिक आपदाओं और महामारियों की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। जलप्लाव (precipitation) और वाष्पीकरण (evaporation) के स्वरूप में परिवर्तन के कारण न केवल सतही जल, अपितु भूमिगत जल का भी क्षरण हो रहा है, जिसका सीधा प्रभाव आर्थिक गतिविधियों, मानव बस्तियों और मानव स्वास्थ्य पर पड़ रहा है।[2] अर्थात् कृषि, शहरी जीवन, जंगलों की प्राकृतिक पर्यावरण और जलसंसाधन जैसे क्षेत्र इसके चपेट में आसानी से आ गये हैं।

प्राकृतिक आपदाओं का सीधा प्रभाव खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य तथा आवासीय कुव्यवस्था के रूप में कृषि पर भी पड़ता है। भारत के 7500 कि.मी. समुद्र तट पर समुद्री संसाधनों पर निर्भर रहने वाली आबादी चक्रवातों, सुनामी एवं तूफानों का सामना करती है। पैंसठ प्रतिशत नदी घाटियों में रहने वाली आबादी बाढ़ एवं सूखे से ग्रसित है। उन आपदाओं का प्रभाव गरीबों पर अधिक होता है। इन आपदाओं के अतिरिक्त, भूमि-क्षरण का कुप्रभाव स्पष्ट दिखता है। कृषि वैज्ञानिकों का मत है कि 0.5^0 तापमान की वृद्धि से गेहूँ के उत्पादन में 10 प्रतिशत की कमी आ जाती है। इसके अलावा फसलों की अवधि में भी वृद्धि, फसलों के प्रकाश-संस्लेषण की क्रिया में तथा हानिकारक कीटों में वृद्धि के कारण कृषि में प्रयुक्त खादों की क्षमता में भी कमी आ जाती है।[3] कहने का तात्पर्य यह है कि यदि पर्यावरण संरक्षित होगा तो रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का भी हल आसानी से निकलेगा।

प्रस्तुत आलेख तीन मान्यताओं पर आधारित है – *पहला*, पर्यावरण में ह्रास का मुख्य कारण प्रकृति नहीं बल्कि मानवीय गतिविधियाँ और उनसे उत्पन्न परिस्थितियाँ हैं। *दूसरा*, प्राकृतिक स्तर पर वातावरण में हुए ह्रास की भरपाई प्रकृति स्वयं कर लेती है, परन्तु मानवीय गतिविधियों द्वारा हुए ह्रास की भरपाई प्रकृति नहीं कर सकती। तथा, *तीसरा*, राजनीतिक कर्ताओं के बीच इस समस्या को राजनीतिक मुद्दे पर लाने में कोई दिलचस्पी नहीं होती क्योंकि इनसे उनको चुनावी लाभ नहीं मिलता। अतः इस निमित्त निर्मित नीतियों के कार्यान्वयन में ढिलाई आ जाती है। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में प्रस्तुत आलेख में भारत में पर्यावरणीय नीतियों एवं उनका कार्यान्वयन का वैधानिक–राजनीतिक परिपेक्ष्य में अनुशीलन किया गया है।

i;koj.kh; jktuhfr% vo/kkj.kkRed i{k

यहाँ 'पर्यावरणीय राजनीति' शब्द का प्रयोग किया गया है, इसलिए यहाँ इसे स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है। पर्यावरणीय साहित्य में इसके लिए अनेक शब्दों का प्रयोग होता है जैसे 'हरित या ग्रीन', 'पारिस्थितिकी' और पर्यावरण संरक्षा। हरित या ग्रीन शब्द का प्रयोग 1950 की दशक से ही होता रहा है[4], परन्तु आजकल तो पर्यावरणपेक्षी हर घटना, परिघटना तथा विचार को ग्रीन शब्द से व्यक्त किया जाता है जैसे ग्रीन टेक्नॉलॉजी, ग्रीन बिल्डिंग, ग्रीन पॉलिटिकल पार्टी, आदि। पारिस्थिकी या इकॉलॉगिज्म का अर्थ मानव और प्रकृति के बीच अंतःक्रिया या अंतःसंबंधों का अध्ययन करने से है।[5] वर्तमान औद्योगिक समाज में पर्यावरण संरक्षा शब्द का खूब प्रयोग होता है, जिसका तात्पर्य आर्थिक वृद्धि और भौतिक साधनों पर पर्यावरण ह्रास से उत्पन्न खतरों से निपटने एवं हरित प्रबंधन करने से है। इसी क्रम में सतत् विकास की अवधारणा का जन्म होता है। अर्थात् भविष्य के लिए पर्यावरण को बचा कर रखने की आवश्यकता को ही सतत् या (sustainable) का नाम दिया गया है ताकि आने वाली पीढ़ी को कम से कम वर्तमान पर्यावरण मिल सके। गार्नर ने 'पर्यावरणीय राजनीति' पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि 'यह सर्वमान्य है कि आधुनिक औद्योगिक समाज की संरचनाओं में वातावरणीय ह्रास के कुप्रभावों को कम करने के लिए थोड़ा बहुत परिवर्तन करने मात्र से पर्यावरणीय त्रासदी को रोका नहीं जा सकता, बल्कि आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं में मौलिक परिवर्तन कर एक भिन्न संस्थाओं एवं मूल्यों वाले समाज की रचना करना है, ताकि इस संकट की गम्भीरता को समझते हुए लोगों के जीवन को संतोषजनक और परिपूर्ण बनाया जा सके।'[6] पर्यावरणीय राजनीति से हमारा तात्पर्य ऐसी राजनीतिक व्यवस्था से है जिसमें मानव और प्रकृति द्वारा एक–दूसरे को प्रभावित करने वाले तत्वों का प्रबंधन सही तरीके से किया जा सके। इस प्रकार यह पर्यावरण का वैज्ञानिक अध्ययन करना या समाज का पर्यावरणीय अध्ययन करना नहीं है, अपितु यह राजनीतिक निर्णयों का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों, राजनीतिक संरचनाओं की पर्यावरण संरक्षा में भूमिका तथा उन कारणों का अध्ययन करना है, जिससे पर्यावरण एक राजनीतिक मुद्दा बनता है अथवा नहीं बनता है। इसमें राजनीतिक संस्थाओं का सार्वजनिक पर्यावरणीय मूल्यांकन को प्रेरित किया जाता है। अर्थात् पर्यावरण के प्रति सकारात्मक या नकारात्मक सरकारी प्रतिक्रियाओं तथा इस विषय पर बनी नीतियों एवं कानूनों में सतत् विकास की बाधाओं की पहचान कर निर्णय हेतु उपाय सुझाना भी पर्यावरणीय राजनीति का ही उद्देश्य है।

i;koj.k U;k;'kkL= ¼Environmental Jurisprudence½

पर्यावरण संरक्षा प्राचीन भारतीय संस्कृति का प्रमुख अंग रही है। प्राचीन काल

या यूँ कहें कि भारतीय सभ्यता के उदय से ही इसकी चिंता की जाती रही है। भारतीय शास्त्र परम्परा में वेदों से लेकर पुराणों एवं उपनिषदों में भी प्रकृति को संरक्षित रखने के उपदेश मिलते हैं, जिसका पालन तत्कालीन शासकों की जिम्मेवारी थी।[7] कहने का तात्पर्य यह है कि यह हमारी सांस्कृतिक विरासत रही है। परन्तु आज अंतर्राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय परिपेक्ष्य में सुनिर्दिष्ट रणनीतियों का निर्माण और उस पर अमल करने की उत्कृटता में कमजोरी दृष्टिगोचर होती है। इससे संबंधित विधायनों या निर्मित कानूनों पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि आजादी के पूर्व से हमारे देश में कतिपय कानून बने हैं और आजादी के बाद खास कर 1980 की दशक से ऐसे कानूनों में वृद्धि हुई है, जिन्हें हम दो श्रेणियों में रख सकते हैं – *पहला,* सामान्य कानून और दूसरा, पर्यावरण-निर्दिष्ट कानून।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व सामान्य कानूनों में डेढ़ सौ वर्ष पूर्व निर्मित भारतीय दंड संहिता 1860 की धाराएँ 268 से 295 तक के प्रावधान, इण्डियन एक्सप्लोसिव ऐक्ट 1884, इण्डियन फिसरीज़ ऐक्ट 1897, इण्डियन पोर्ट्स ऐक्ट 1908, प्यॉजन कंट्रोल ऐक्ट 1919, द मोटर व्हेकिल ऐक्ट 1939, इण्डियन फॉरेस्ट ऐक्ट 1927 आदि प्रमुख हैं जिनमें पर्यावरण-संरक्षा से संबंधित प्रावधान हैं। आजादी के बाद के कुछ सामान्य कानूनों में इण्डस्ट्रीज डेवलपमेंट ऐण्ड रेगुलेशन ऐक्ट 1951 एवं प्रीवेन्शन ऑफ फूड एण्ड एडल्ट्रेशन ऐक्ट 1952 प्रमुख हैं। इसके साथ ही हम भारतीय संविधान के राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के खण्ड में धाराएँ 48ए और 51ए को नजरअंदाज नहीं कर सकते।

1972 में पर्यावरण पर हुए स्टॉकहोम सम्मेलन के बाद भारत में पर्यावरण-संरक्षा के निमित कई कानूनों का निर्माण हुआ। 1980 में एन.डी. तिवारी की अध्यक्षता में बनी हाई पॉवर कमेटी ने कई वैधानिक एवं प्रशासनिक उपायों की अनुसंशा की जिसमें जैव संरक्षण, चरने हेतु भूमि का संरक्षण, विलुप्त होते प्राणियों का संरक्षण, नशीली पदार्थों पर नियंत्रण आदि के साथ–साथ कुछ संस्थाओं का गठन जैसे पर्यावरण विभाग, केन्द्रीय भूमि आयोग, एवं केन्द्रीय तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड आदि की स्थापना प्रमुख हैं।[8] इसके पूर्व वाटर प्रीवेंशन एण्ड कंट्रोल ऑफ पोल्युशन ऐक्ट 1974 तथा केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड का निर्माण हो चुका था। फॉरेस्ट कंजरवेशन ऐक्ट 1980, एअर प्रिवेसन एण्ड कंट्रोल ऑफ पोल्युशन ऐक्ट 1981 तथा सबसे महत्वपूर्ण द इन्वायरन्मेंट प्रोटेक्शन ऐक्ट 1986, पब्लिक लायबिलिटि इन्श्योरेंस ऐक्ट 1991, नेशनल इन्वायरन्मेंट ट्राइब्यूनल ऐक्ट 1995 आदि का निर्माण हुआ।

इस प्रकार, भारत में बजाप्ता पर्यावरणीय न्यायशास्त्र का निर्माण हो गया, जिसके तहत मुकदमों का निपटारा हुआ है। उदाहरण के तौर पर, यहाँ कुछ मुकदमों के निपटारा पर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि इनके द्वारा लोकोपेक्षी पर्यावरण प्रबंधन की दिशा में न्यायिक निर्णय हुए। *गोबिन्द सिंह बनाम शान्ति स्वरूप* (1979)

मुकदमें में पंजाब ऑयल मिल्स पर हानिकारक धुआँ पर नियंत्रण रखने का आदेश हुआ। *नगर परिषद् रतलाम बनाम वार्धीचन्द* (1980) के मुकदमे में अल्कोहल फैक्ट्री से बदबूदार पदार्थों को सड़क पर नहीं फेंकने का निर्देश दिया गया। *कृष्ण गोपाल बनाम मध्य प्रदेश सरकार* (1986) के मुकदमें में ग्लूकोज सेलाइन फैक्ट्री को बन्द करने का आदेश दिया गया। *मेहता बनाम भारत सरकार* (1988) के मुकदमें में लगभग 29 कम्पनियों को गंगा में कचरा बहाने पर रोक लगाने का आदेश जारी किया गया। उत्तर प्रदेश के दून घाटी में *रूरल लिटिगेशन एण्ड एन्टाइटेलमेंट बनाम उत्तर प्रदेश सरकार* (1985) के मुकदमें में सर्वोच्च न्यायालय ने खनन पर रोक लगाया। खनन के मसले पर ही हिमांचल प्रदेश में *किनकारी देवी बनाम हिमांचल प्रदेश सरकार* (1988) के मुकदमें में उच्च न्यायालय ने पर्यावरण संरक्षित रहने का आदेश दिया। बहुचर्चित *यूनियन ऑफ इण्डिया बनाम यूनियन कारबाईड* (1989) में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला सर्वविदित है। *सुभाष कुमार बनाम बिहार सरकार* (1991) के मुकदमें में उच्च न्यायालय द्वारा पर्यावरण संरक्षा को एक मानवाधिकार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। ये कुछ उदाहरण मात्र हैं। यह पाया गया है कि कानून तो ठीक हैं , परन्तु नागरिकों एवं राजनीतिक कर्ताओं द्वारा उनका अनुपालन पूरे मन से नहीं किया जाता और इन कानूनों के कार्यान्वयन हेतु उपलब्ध तंत्र पर्याप्त नहीं हैं।[9] इसके अतिरिक्त क्षेत्राधिकार की ओवरलैपिंग, इसके निमित पुलिस संरचना की अपर्याप्तता तथा कमजोर राजनीतिक–प्रशासनिक इच्छा संबंधी समस्याएँ भी इसमें बाधा पहुँचाते हैं।

i;koj.kh; uhfr;k

हम पहले चर्चा कर चुके हैं कि पर्यावरण संरक्षा हेतु समेकित एवं ठोस नीति का अभाव रहा है। विभिन्न अवसरों पर एवं अंतराष्ट्रीय सम्मेलनों के आलोक में समय–समय पर नीतियाँ एवं कार्यक्रम शुरू किये जाते रहे हैं, जैसे गैस रिसाव, खनन, भूमण्डलीय उष्मा, जलवायु परिवर्तन, उर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत, जंगलों का संरक्षण, बनारोपन, जैव संरक्षा, साफ–सफाई, सतह एवं भूमिगत जल संरक्षा, वायु प्रदूषण, मृदा संरक्षण आदि, आदि। कुछ प्रमुख नीतियों में नैशनल फॉरेस्ट पॉलिसी 1988, 1992 में राष्ट्रीय पर्यावरण और विकास नीति तथा एबेटमेंट ऑफ पोल्यूशन स्टेटमेंट, इसके अतिरिक्त कुछ सेक्टोरल नीतियाँ या विषय विशेष की नीतियाँ भी इससे संबंधित हैं, जैसे नेशनल एग्रीकल्चर पॉलिसी 2000, नेशनल पापुलेशन पॉलिसी 2000 तथा नेशनल वाटर पॉलिसी 2002। यहाँ हम उन नीतियों पर प्रकाश डालेंगे।

पिछले डेढ़ दशकों में पर्यावरण की दिशा में गम्भीरता से नीतियाँ बनीं हैं। क्योटो प्रोटोकॉल 1997 के बाद खासकर दिल्ली घोषणा 2002 से भारत में पर्यावरण संरक्षा हेतु कई नीतियाँ बनाईं गईं जो मुख्य रूप से जलवायु परिवर्तन, उर्जा, स्वास्थ्य, कृषि, गैर–कानूनी उत्खनन, आपदा प्रबंधन, जल एवं वायु प्रदूषण आदि विषयों से संबंधित

रहीं हैं। सन् 2002 में राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति बनाई गई जिसके तहत यह कहा गया कि पर्यावरण संरक्षा संबंधी जो भी कदम उठाए जाएँ उसमें स्वास्थ्य–परक और रोगों से संबंधित जोखिम को कम करने के उपाय किए जाएँ।

2006 में एक वृहद् या अम्ब्रेला नीति 'नेशनल इन्वायरन्मेंट पॉलिसी' का निर्माण किया गया, जिसमें उपरोक्त सभी वर्णित नीतियों को समाहित करते हुए नये उपायों से पर्यावरण की संरक्षा के कदम उठाने का संकल्प है। इसमें जलवायु परिवर्तन पर विशेष ध्यान दिया गया है। जिसमें ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी करना, सतत् विकास को प्राथमिकता तथा जल संसाधन, वनसंपदा, तटीय क्षेत्र, कृषि तथा स्वास्थ्य पर जलवायु परिवर्तन के प्रभावो एवं एडैप्टेशन या अनुकूलन का आकलन करना प्रमुख हैं। साथ ही साथ भारतीय उद्योगों में क्लीन डेवलपमेंट मेकैनिज्म को प्रोत्साहित करना और अन्य देशों एवं अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से सहयोग करना भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। यहाँ नेशनल पॉलिसी फॉर फारमर्स 2007 का उल्लेख आवश्यक है, जिसके तहत जलवायु परिवर्तन के अनुसार खेती की विधियों में अनुकूलन, वैकल्पिक भूमि एवं जल के प्रयोग तथा सूखे एवं बाढ़ से निपटने की रणनीतियों को प्राथमिकता दी गई है।[10]

नीतियों की श्रृंखला में सर्वाधिक महत्वपूर्ण डॉ. मनमोहन सिंह के नेतृत्व में भारत सरकार द्वारा 30 जून 2008 को जारी आठ-सूत्री ऐक्सन प्लान है जिसमें 2017 तक मिशन स्तर पर लक्ष्यों की प्राप्ति का संकल्प लिया गया जो इस प्रकार हैं – नैशनल सोलर मिशन (वैकल्पिक उर्जा स्त्रोत के रूप में सौर उर्जा का उपयोग), नैशनल मिशन फॉर एन्हांस्ड एनर्जी एफिसियेंसी (2012 तक 10000 मेगावाट की बचत करना), नैशनल मिशन ऑन ससटेनेबल हैबिटैट (शहरी इलाकों में कचड़ा-प्रबंधन और ईंधन-मितव्ययिता तथा रिसाइकिलिंग), नैशनल वाटर मिशन (20 प्रतिशत तक जलप्रयोग में मितव्ययिता), ससटेनिंग हिमालयन इको सिस्टम (जैव विविधता, वनाच्छादन तथा हिमालय क्षेत्रों में पर्यावरणीय मूल्यों का पालन), नैशनल मिशन फॉर ग्रीन इण्डिया (23 से 33 प्रतिशत तक वानिकी का लक्ष्य प्राप्त करना), नैशनल मिशन फॉर ससटेनेबल एग्रीकल्चर (जलवायु के अनुसार कृषि के अनुकूलन के उपाय) और एसट्रेटेजिक नॉलेज फॉर क्लाइमेट चेंज (जलवायु पर शोध के लिए संस्था एवं राशि की व्यवस्था तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग का संकल्प)।[11]

jktuhfrd ,oa i'kklfud pqukSfr;k¡

राजनीतिक चुनौतियाँः पर्यावरण संरक्षा के लिए इतने अधिक कानूनों एवं नीतियों के बावजूद भारत द्वारा लागू किए गए वन, मत्स्य पालन और जल संसाधन को छोड़कर सभी नीतियों एवं उपायों के अध्ययन के पश्चात् यह मूल्यांकन किया गया है कि भारत विश्व में 155वाँ स्थान रखता है। इस आकलन में पाया गया कि भारत

स्वास्थ्य तथा वायु प्रदूषण मानकों से सबसे पीछे है। यानि भारत पर्यावरण संरक्षा के मामले में अंतिम पायदान पर है। और तो और विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 91 देशों के 1600 शहरों के अध्ययन के बाद पाया कि नई दिल्ली का वायुमण्डल सर्वाधिक प्रदूषित है। द एनर्जी ऐण्ड रिसोर्स इन्सिटिच्यूट (TERI)द्वारा 2014 में किए गए सर्वेक्षण में पाया गया कि शहरी क्षेत्रों में लोगों को पर्यावरण ह्रास, भूमंडलीय ऊष्मा तथ जलवायु परिवर्तन, हरित छाजन (green cover) तथा पक्षियों की बहुल प्रजातीयता का लोप (loss of diversity of birds) जैसी परिघटनाओं का ज्ञान है। इसके अलावा जल एवं वायु प्रदूषण में वृद्धि को भी वे स्वीकारते हैं। 75 प्रतिशत लोग जल के लिए म्यूनिसिपल सप्लाई पर निर्भर करते हैं जिनमें आधे से अधिक गरीब तबके के लोग हैं जो जल का शुद्धिकरण नहीं करते। इसके अलावा यह भी तथ्य उजागर हुआ कि हमारे शहरी क्षेत्रों में कचड़ा-प्रबंधन ठीक से नहीं किया जाता जो लोगों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालते हैं।[12]

ऐसी परिस्थिति में यह विचार करने की आवश्यकता है कि राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तर पर क्यों नहीं गम्भीरता से पहल की जाती हैं। विभिन्न कानूनों एवं नीतियों के होते हुए भी हम पर्यावरण संरक्षा के मामले में हमारे पिछड़ने का मुख्य कारण यह है कि हमारे राजनीतिक कर्ता (politicians) अपनी राजनीतिक लाभ को प्राथमिकता देते हैं लोगों की प्राथमिकताएँ भी बुनियादी आवश्यकताओं में होती है जैसे रोज़गार, आवासीय सुविधाएँ, सबसिडाइज्ड वस्तुओं की उपलब्धता, पानी–बिजली की उपलब्धता, आदि। फलतः पर्यावरण ह्रास का ज्ञान होते हुए भी वे पर्यावरण को बुनियादी आवश्यकता में नहीं रखते। इसीलिए राजनीतिज्ञों को पर्यावरण के मामले को प्राथमिकता में पीछे रखना पड़ता है। दिल्ली में 14 मार्च 2015 को आयोजित ग्लोबल मीट में अपने उद्घाटन भाषण में हमारे उपराष्ट्रपति डॉ. हामिद अंसारी ने भी गरीबी और पर्यावरणीय के चक्र को एक मुख्य चुनौती बताया।

राजनीतिक दलों के चुनाव घोषणा–पत्रों में भी पर्यावरण प्राथमिकता नहीं होता है। वे गरीबी–उन्मूलन, रोजगार, और अर्थव्यवस्था के उन्नयन पर केन्द्रित होते हैं। सकल घरेलू उत्पाद को बढ़ाने पर ज्यादा बल देते हैं। राजनीतिज्ञ औद्योगिक जगत को नाराज नहीं करना चाहते जो पर्यावरणीय विषयों को मुनाफे में बाधक मानते हैं। 2014 के लोकसभा चुनाव में नरेन्द्र मोदी ने बनारस के मतदाताओं का समर्थन प्राप्त करने के लिए गंगा को स्वच्छ करने का वादा किया। ठीक उसी प्रकार, केजरीवाल ने सीवेज व्यवस्था ठीक करने की बात की। परन्तु दोनों में से किसी ने पर्यावरण और लोकस्वास्थ्य को सुधारने के लिए क्या योजना बनाई इस पर कुछ नहीं कहा। इनमें इनका उद्देश्य मतदाताओं से जुड़ने से होता है। पर्यावरण संबंधी जो मुद्दे होते हैं उनमें निवारण के उपाय नहीं होते या उनका विस्तार नहीं होता। भारतीय जनता पार्टी ने अपने घोषणा–पत्र में जलसंकट से निपटने के लिए इतनी खर्चीली योजना

(डीसेलाईनेशन और नदियों की जोड़ने की योजना) काल्पनिक-सी प्रतीत होती है। जल संरक्षण के मशहूर स्वयंसेवी राजेन्द्र सिंह ने एक बार कहा था कि 'ये राजनीतिज्ञ इतना कहते तो हैं गंगा हमारी माँ है और उन्हें बचाएँगे। परन्तु ये अर्थहीन जुमले है जो हर चुनाव में कहे जाते हैं'।[13] इतना ही नहीं सत्ता प्राप्ति के बाद भी राजनीतिज्ञ पर्यावरण संरक्षा संबंधी अंतराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में निर्धारित मानकों एवं राष्ट्रीय स्तर पर निर्मित विधियों एवं नीतियों के प्रति संजीदगी नहीं बरतते। इस निमित्त बने प्रशासनिक संगठनों एवं संस्थाओं का गम्भीरता से अनुश्रवण नहीं करते। फलस्वरूप भारत पर्यावरण प्रदूषण में कम योगदान देते हुए भी संरक्षा में सबसे पीछे है।

i'kklfud pukSfr;k¡ भारत में प्रदूषण को नियंत्रित करने के लिए नियंत्रक एजेंसियों एवं संगठनों का निर्माण किया गया है जो पर्यावरण संबंधी कानूनों और नीतियों को कार्यान्वित कराते हैं। हम जानते हैं कि आज के बाजार की शक्तियों की प्रबलता के कारण प्रदूषण कम करने में किसी को रुचि नहीं होती, इसलिए ऐसी एजेंसियों को प्रदूषण की रोकथाम के लिए तत्पर रहना होगा। ऐसी एजेंसियों में प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। परन्तु ये बोर्ड पर्यावरणीय संरक्षा और विकास को एक सूत्र में बाँधे रखने में प्रभावकारी नहीं रहे हैं। मूल्यांकनात्मक अध्ययनों से उजागर हुआ है कि इनके राह में कई रोड़े हैं – जैसे अपर्याप्त तकनीकी एवं वैज्ञानिक मानव संसाधन, हितसमूहों का प्रभाव, क्षेत्राधिकार संबंधी समस्याएँ, दण्डकारी प्रावधानों का अभाव, न्यूनतम जाँच मानक का अभाव, उद्योगों की हानिकारक गतिविधियों पर पर्दा डालने की प्रवृत्ति तथा कार्य संस्कृति का क्षीण होना। इसके अतिरिक्त पर्यावरण संरक्षा में कभी–कभी कई विभागों के बीच समन्वय की आवश्यकता होती है जिसके अभाव में काम कमजोर पड़ जाता है।[14] यह देखा गया है कि पर्यावरण नौकरशाही के अप्रभावकारी होने के कई कारण हैं जैसे सरकार एवं प्रदूषकों के बीच हित का टकराव, राज्य और केन्द्र सरकारों की प्राथमिकताओं के बीच विभेद तथा विभिन्न राज्यों के बीच खिंचाव। औद्योगिक परियोजनाएँ शुरू होने के पूर्व सहमति देने हेतु पूर्व इम्पैक्ट एसेसमेंट रिपोर्ट का अनुपालन का नहीं होना, पर्यावरण संरक्षा सरकारी एजेंसियों को विभिन्न कानूनों के तहत बिना शक्तियों के क्षमता से अधिक जिम्मेदारियों का दिया जाना। उदाहरणार्थ हम देखते हैं कि जल एवं वायु प्रदूषण नियंत्रण कानून के तहत बने प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों की स्थिति मात्र परामर्शदात्री है। उनके पास एक मात्र प्रभावकारी हथियार सहमति प्रमाण–पत्र जारी करना है। *दूसरा* तथ्य विभिन्न प्राधिकरणों की शक्तियों में ओवरलैपिंग का होना है जैसे प्रदूषण नियंत्रण बोर्डों के अलावा शहरी स्वशासी निकायों को भी उद्योगों को अनुश्रप्तियाँ या लाइसेंस जारी करने का अधिकार है।

एक पक्ष जनसहभागिता का भी है। 1991 के रियो डेक्लरेशन में जनसहभागिता

की वकालत की गई है। यह सर्वविदित है कि बिना लोकभागीदारी के कोई भी नीति सफल नहीं हो सकती है। यह भी एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि पर्यावरण नौकरशाही की संरचना सरकारी कर्मियों की है। जितने भी पर्यावरण संरक्षण अभिकरण हैं उनकी संरचना में नागरिक समाज की कोई भागीदारी नहीं है, अर्थात् जनसहभागिता का कोई स्थान नहीं है। अन्य कार्यक्रमों की तरह पर्यावरण नीतियों का कोई लक्ष्य-समूह भी नहीं है जिसके कारण नागरिक समाज में कोई हित समूह का अस्तित्व नहीं है। फलतः जनसहभागिता का सर्वथा अभाव होता है। दूसरी तरफ लोगों को उद्योगों द्वारा प्रदूषण का दंश झेलना पड़ता है और इन साधन संपन्न और राजनीतिक पहुँच वाले उद्योगपतियों का विरोध नहीं कर पाते क्योंकि पर्यावरण संरक्षा हेतु बने संगठनों में उनकी भागीदारी नहीं होती।[15]

निष्कर्ष यह कि हमारे राजनीतिक कर्ताओं या राजनीतिज्ञों को पर्यावरण के प्रति वास्तविक रूप से संवेदनशील होना पड़ेगा और साथ ही लोगों को भी। यानि लोगों के बीच इस विषय पर और अधिक जागरुकता बढ़ाने की जरूरत है। इतना ही नहीं पर्यावरण संरक्षा हेतु निर्मित एजेंसियों एवं सरकारी संगठनों को जनसहभागी प्रकृत्ति का बढ़ाना होगा ताकि आम लोगों की आवाज नीति निर्माण एवं उनके कार्यान्वयन में सुनी जाए। हम गरीबी और बुनियादी आवश्यकता की प्रतिपूर्ति को नजरअंदाज नहीं कर सकते, परन्तु सरकारी तंत्र संवेदनशील तथा प्रतिबद्ध रहे और सतत् विकास को हर हालत में प्राथमिकता दे तो लक्ष्य की प्राप्ति की जा सकती है। अंततः सबसे ज्यादा जरूरी है एक समेकित नीति के निर्माण की और पर्यावरण नौकरशाही को पर्याप्त कुशल मानव संसाधन, वित्त, समुचित दण्डनीय अधिकार और जनसहभागी बनाना होगा। यदि पर्यावरण अक्षुण्ण रहेगा तो ही रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या का भी हल आसानी से निकलेगा।

fVIi.kh ,oa lUnHkZ

1. Angel Hsu, Marc Levy and Kim Samuel, *Environment Performance Index*, Yale University, Davos, Switzerland, 2014
2. Vinod Kumar Sharma,; *Global Warming: Its Impact on India*, Indian Institute of Public Administration, New Delhi, 2008 (Background paper of annual conference)
3. Ashish Aggrawal, Varghese Paul and Soumitri Das, "Forest Resources: Degradation, Livelihoods, and Climate Change," in *Looking Back to Change Track*.
4. Amita baviskar, "For a Cultural Politics of Natural Resources", *Economic and Political Weekly*, 29 November, 2003.
5. Andrew Heywood; **Political Ideologies: An Introduction**, Macmillan, Basingtoke, 1992.
6. Robert Garner; **Environmental Politics,** Prentice Hall, Hrvester Wheatsheaf, London, 1995.

7. T N Dhar, *Resource management and Environment (Values and Institutions)*, Indian Institute of Public Administration, UP regional Branch, Lucknow, 2001.

8. *Ibid.*

9. *Ibid.*

10. Pawan Sikka, *Global Warming: India's Response to Climate Change, Disaster Mitigation and Adaptation*, Uppal Publishing House, New Delhi, 2010

11. Vinod Kumar Sharma, *op. cit,*.

12. TERI, *Environmental Survey 2014*, The Energy and Resources Institute, New Delhi, 2014.

13. "Indian Political Parties Gloss Over Environment", *The Telegraph*, April, 2014

14. P M Prasad, "Environmental Protection: The Role of Regulatory System in India" in O V Nandinath, *Handbook of Environmental Decision Making in India: An EIA Model*, Oxford University Press, New Delhi, 2005.

15. B S Praneetha, "People's Participation and Environmental Protection", *Journal of Business Management and Social Sciences Research*, Vol. 2 No. 2, February, 2013

विकेन्द्रीकृत जिला नियोजन : अवधारणा एवं प्रक्रिया

रमेश प्रसाद द्विवेदी

विश्व के सभी देश अपने विकास व उन्नति के लिए नियोजन में जुटे हुए हैं। यह एक ऐसी विवेकपूर्ण प्रक्रिया है, जो समस्त मानव व्यवहार में पायी जाती है। किसी भी विकासशील या अर्धविकसित देश के लिए, जहां सीमित संसाधनों द्वारा और निश्चित समय के भीतर बहुत-सा काम करना होता है, नियोजन का विशेष महत्व है। स्थानीय नियोजन का दृष्टिकोण लोकतांत्रिक है, क्योंकि उसके द्वारा नियोजन प्रक्रिया में आम लोगों की भागीदारी बढ़ जाती है। योजना निर्माण का कार्य जब स्थानीय लोगों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, तो समस्याओं को बहुत अधिक व्यावहारिक ढंग से समझा जा सकता है; उसके लिए रणनीति व्यावहारिक तौर पर स्थानीय समर्थन से बनायी जा सकती है।

केन्द्र सरकार ने विकेन्द्रीकृत नियोजन के महत्व को समझा और राज्यों की सहमति से संविधान में 73वाँ तथा 74वाँ संशोधन किया, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय निकायों का गठन करके उनको कुछ अधिकार सौंपे गए। इनके माध्यम से स्थानीय निकाय अपने स्तर पर विकासकारी योजनाओं के लिए नियोजन करेंगे तथा स्थानीय स्तर की मुख्य समस्याओं को हल करने में सफलता प्राप्त होगी। ऐसा इसलिए आपेक्षित है क्योंकि जिला नियोजन समिति जिले की ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों, जिला परिषद् तथा नगरपालिकाओं के माध्यम से योजनायें तैयार करवाती है और सम्पूर्ण जिले की योजना तैयार करने के लिए जिले की तीनों स्तरों के पंचायतों द्वारा व नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं को एकीकृत करती है।

सर्वविदित है कि 73वाँ एवं 74वाँ संविधान संशोधन के पश्चात् जिला नियोजन के लिए एक समिति के रूप में संस्थात्मक स्वरूप प्रदान करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 243 छ, 243 ब, 243 यघ, एवं 243 मङ मे तहत इनके गठन का प्रावधान किया गया है। इन अनुच्छेदों में मुख्य रूप से ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में आर्थिक

विकास एवं सामाजिक न्याय से संबंधित योजना बनाने के लिए जिला योजना बनाने का उल्लेख किया गया है, लेकिन अधिकतर राज्यों में जिला योजना समितियों को अभी भी अपना रूप धारण करना शेष है। इतना ही नहीं, जिन राज्यों में इनका गठन किया भी गया है, वहाँ उतनी भूमिकाएँ, उस भूमिका से काफी अलग है, जो संविधान द्वारा अपेक्षित, जिला योजना समितियाँ द्वारा पूरे जिलें के लिए विकास योजना प्रारूप न बना पाने का नियोजन की प्रक्रिया की अगुवाई करने के लिए पूरी तरह से साधनयुक्त नहीं होतीं, जो विकास के लिए पर्याप्त नहीं है।

fodUnhÑr fu;ktu dh vo/kkj.kk

प्रासंगिक तथ्य और आंकड़े एकत्रित करना, प्राथमिकतायें निर्धारित करने के लिए उनका विश्लेषण करना, निर्धारित प्राथमिकताओं का उपलब्ध बजट के साथ मिलान करना, कार्यान्वयन की प्रक्रियाओं को परिभाषित करना और लक्ष्य निर्धारित कर उनका अनुश्रवण करना आदि। विकेन्द्रीकृत जिला नियोजन में वह सब शामिल होता है जिसे जिले की विभिन्न आयोजन इकाईयाँ सामूहिक रूप से परिकल्पना करके अपने–अपने बजटों और कौशलों का उपयोग करके और अपनी चहलकदमियों को आगे बढ़ाकर मिलजुल कर हासिल कर सकती हैं। एक अच्छी विकेन्द्रीकृत जिला योजना के अन्तर्गत हर योजना इकाई, जैसे जिला, मध्यवर्ती और ग्राम स्तरों पर पंचायतें, नगरपालिकाएँ लोगों के साथ परामर्श करके अपने कार्य और उत्तरदायित्व पूरा करने के लिए एक योजना बनाती हैं। एक दूसरे के साथ सहयोग और समन्वय करते हुए वे सामान्यतः एक दूसरे की जिम्मेदारी वाले क्षेत्र में तब तक दखल नहीं देगीं, जब तक कि इससे निश्चित रूप में कोई लाभ प्राप्त न हो और इसे लेकर आपसी सहमति न हो।

सरकार का अन्तिम उद्देश्य जनता का विकास करना है, परन्तु देश की अधिकतर जनसंख्या गांवों व कस्बों में रहती है, जो सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से पिछड़ी हुई है। इसलिए यदि उनका वास्तविक विकास करना है, तो विकेन्द्रीकृत नियोजन को अपनाना होगा। विकेन्द्रीकृत नियोजन में योजना का निर्माण एवं उसका क्रियान्वयन केन्द्र से न होकर विभिन्न क्षेत्रों द्वारा संचालित होता है। इसके अन्तर्गत योजना निर्माण एवं संचालन में स्थानीय क्षेत्र के लोगों की सक्रिय भागीदारी रहती है।

लोकतांत्रिक नियोजन विकेन्द्रीकृत नियोजन का एक प्रमुख रूप है। इस प्रकार नियोजन में योजनाओं को बनाने तथा उनका क्रियान्वयन करने में जन सामान्य की भागीदारी रहती है। पंचायती राज प्रणाली में हम लोकतांत्रिक नियोजन का स्वरूप देख सकते हैं। भारत में योजनाओं की नीति, लक्ष्य आदि का निर्धारण योजना आयोग करता रहा है। साथ ही क्षेत्र विशेष की समस्याओं पर अपनी सलाह देता रहा है। मोदी सरकार ने इसका उन्मूलन कर दिया है। यहाँ पर राजनीति का रूप तो लोकतांत्रिक है, लेकिन इसका स्वरूप लोकतांत्रिक नहीं रहा है। यही कारण है कि

भारत में सरकार एवं जनता का विश्वास दिन-प्रतिदिन कम होकर दोनों के मध्य अविश्वास की खाई बढ़ती जा रही है। किसी भी आयोजन की सफलता इस बात पर अधिक निर्भर करती है कि आज जनता की भागीदारी उसमें किस सीमा तक विद्यमान है।

fodUnhÑr fu;kstu dk vFk

विकेन्द्रीकृत नियोजन का सीधी-सरल भाषा में अर्थ है 'लोगों के द्वारा अपने विकास के लिये बनाई गई योजना'। सामान्य रूप से पाया जाता है कि योजनाओं को बनाने का अधिकार कुछ मुट्ठी भर लोगों के हाथ में होता है। ये लोग कुछ विषयों के विशेषज्ञ होते हैं, किन्तु जमीनी अनुभवों के अभाव और व्यापक दृष्टिकोण के आधार पर इन लोगों के द्वारा बनाई गयी योजनाओं को भारत जैसे विशाल देश में एक समान लागू नहीं किया जा सकता है। इसलिये विगत् वर्षों में बनाई गयी बहुत-सी योजनाओं का वह परिणाम हासिल नहीं किया जा सका जैसा योजना बनाने वालों ने सोचा था। विकेन्द्रीकृत नियोजन की सोच यह है कि योजनाओं को बनाने के अधिकार को कुछ मुट्ठी भर लोगों, केंद्रीय संस्थाओं और अफसरशाही के हाथों में न रखा जाये, बल्कि इसे उन आम लोगों, प्रतिनिधियों और संस्थाओं के सुपुर्द किया जाए, जिनके हित के लिए योजनाएं बनाई जाती हैं। विकेन्द्रीकृत नियोजन एक ऐसी प्रणाली है जिसके द्वारा नियोजन प्रक्रिया में लोगों को शामिल करके उनकी भागीदारी ली जाती है और इस प्रक्रिया को विकेन्द्रीकृत नियोजन कहते हैं।

fty ;kstukvksa dh iÑfr

जिला योजनाओं के बारे में अच्छी खासी विभ्रम-पूर्ण स्थिति बनी हुई है। एक भ्रम तो उनके स्वरूप को लेकर है कि क्या पंचायतों या नगरपालिकाओं की योजनाओं का एकत्रीकरण से ही जिला योजना बनाई जाती है? एक अन्य प्रश्न कि वे कौन-सी चीजें हैं, जिनका निवारण ग्राम पंचायतों, मध्य पंचायतों और नगरपालिकाओं के सूक्ष्म स्तर पर नहीं किया जा सकता है, बल्कि ऐसी समस्याओं और मुद्दों के सफल समाधान के लिए एक समुचित अनुमान के लिए यहाँ एक बृहद एवं विस्तृत दृष्टिकोण अपनाया जाना जरूरी है। दूसरा भ्रम योजनाओं के अधिकार क्षेत्र को लेकर है कि क्या जिला योजनाओं में केवल उन्हीं योजनाओं को शामिल किया जाना चाहिए, जिन कार्यों को स्थानीय निकायों को सौपा गया है या उन योजनाओं को भी सम्मिलित किया जाये जिनसे जिले की अर्थव्यवस्था, समाज तथा भौतिक परिस्थिति पर प्रभाव पड़े।

73ok o 74ok lafo/kku la'kks/ku dk iwoZ fodUnhÑr fu;kstu gsrq lk;kl

- भारत में नियोजन का विचार वर्ष 1933 में एम. विश्वेसरैया ने दिया तथा वर्ष 1934 में नियोजन पर *'प्लाण्ड इकॉनोमी फॉर इण्डिया'* नामक पुस्तक

प्रकाशित हुई। पुस्तक से प्रेरित होकर वर्ष 1937 में राष्ट्रीय कांग्रेस ने एक राष्ट्रीय नियोजन समिति का गठन किया गया। पंडित जवाहरलाल नेहरू को उस समिति का अध्यक्ष बनाया गया। परन्तु समिति वर्ष (1942–46) तक राजनैतिक कारणों के कारण अपना कार्य नहीं कर पाईं और वर्ष 1949 में समिति योजना बनाने में सफल रही।

- स्वतन्त्रता के उपरान्त भारत में नियोजन प्रक्रिया केन्द्र स्तर पर लागू की गई, उसके लिए के. सी. नियोगी की अध्यक्षता में गठित एडवायज़री प्लानिंग बोर्ड की अनुशंसा पर भारत सरकार के प्रस्ताव द्वारा मार्च 1950 में योजना आयोग की स्थापना की गई। योजना आयोग की स्थापना संविधान के अधीन नहीं हुई और न ही किसी अधिनियम के माध्यम से हुई। यह आयोग सामाजिक व आर्थिक विकास के लिए सर्वोच्च निकाय है। 1 जनवरी 2015 से भारत में योजना आयोग का अस्तित्व समाप्त कर 'नीति आयोग' संस्था बनाई गई, जिसे अब राष्ट्रीय भारत परिर्वतन संस्थान 'नीति आयोग' (National Institution for Transforming India) 'NITI' के नाम से जाना जाता है।
- योजना आयोग केन्द्रीय स्तर पर सामाजिक व आर्थिक विकास के लिए योजनाएँ तैयार करता था, परन्तु भारत की भौगोलिक स्थिति एक समान नहीं होने के कारण योजना आयोग द्वारा बनाई गई योजनायें सभी क्षेत्रों में समान रूप से लागू नहीं हुईं और देश को विकेन्द्रित योजनाओं की आवश्यकता महसूस हुई। परिणामस्वरूप पहली पंचवर्षीय योजना (1951–56) में योजना प्रक्रिया को राष्ट्रीय, राज्य, जिला तथा स्थानीय स्तर पर सामुदायिक बनाने का सुझाव दिया और हर जिले में ग्राम स्तर पर अलग–अलग सीमा तक सहभागितापूर्ण प्रक्रिया के आधार पर योजनाएँ तैयार करने के लिए एक जिला विकास परिषद् का गठन किया गया।
- बलवंतराय मेहता समिति की रिपोर्ट और अनेक राज्यों में पंचायतों के गठन के बाद भी, पंचायती राज प्रणाली को बहु–स्तरीय सरकारी प्रणाली का स्थानीय तत्व नहीं माना गया था। इसलिए उनकी भूमिका अधिक–से–अधिक इस रूप में परिकल्पित की गई कि उन्हें ग्राम सभाओं – जिनमें लोग अपने विचार और सुझाव प्रस्तुत करेंगे और जिन पर लाइन विभागों द्वारा अमल किया जाएगा – के आयोजन के माध्यम से ऊपर से निर्देशित योजना प्रक्रिया के सहायकों के रूप में उनसे परामर्श लिया जाएगा या उन्हें शामिल किया जाएगा। पंचायतें अपने कार्य क्षेत्र में स्वायत्तता का उपयोग करने वाली स्वतंत्र नियोजन इकाइयों के रूप में प्रभावशाली न हो पाईं क्योंकि उनके पास प्रायः बहुत सीमित वित्तीय संसाधन थे।

- साठ के दशक के अंत से लेकर अस्सी के दशक के मध्य तक रुझान, प्रशासन के अधिक केंद्रीकरण की दिशा में रहा। अपने पक्ष में ठोस राजनीतिक और प्रशासनिक सहायता के बिना, साठ के दशक के अंत तक अधिकतर राज्यों में पंचायतों का अधिक्रमण (Supersession) कर दिया गया। मुख्यतः लाइन विभागों के माध्यम से क्रियान्वित की जाने वाली केंद्रीय रूप से प्रायोजित योजनाओं के सूत्रीकरण से जिला नियोजन प्रक्रिया वस्तुतः ढह गई। हालांकि केन्द्रीकरण को रोकने के अनेक प्रयास किये गये (दांतवाला समिति, जीवीके राव समिति), पर ये मुख्यतः विफल रहे। स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के कमजोर होने और सेक्टोरल विभागों की वृद्धि और बहुगुणन ने अनुलम्ब (Vertical) नियोजन को बल दिया और जिलों में विकेंद्रीकृत नियोजन के संसाधनों की उपलब्धता को अस्पष्ट बना दिया।
- पहले प्रशासनिक सुधार आयोग (1967) ने जिला स्तर पर, विशेषकर विकास प्रतिमानों की स्थानीय भिन्नताओं पर ध्यान केंद्रित करते हुए सार्थक नियोजन की प्रक्रिया पर बल दिया। योजना आयोग ने जिला नियोजन के लिए अपने पहले दिशा–निर्देश 1969 में जारी किये, जिसके फलस्वरूप कई राज्यों में जिला योजनाएँ तैयार की गईं। किंतु कुछ उत्कृष्ट उदाहरणों को छोड़ दें तो जिला नियोजन की दिशा में की गईं ये पहलकदमियाँ विफल हो गईं क्योंकि अधिकतर राज्यों में इन स्थानीय नियोजन प्रक्रियाओं को वार्षिक नियोजन प्रक्रिया से नहीं जोड़ा गया। साथ ही इन पहलकदमियों में जिला योजना के अंग के रूप में शहरी नियोजन प्रक्रियाओं को शामिल नहीं किया गया था। उस समय सुझाये गये जिला नियोजन के उपायों में इन योजनाओं के केंद्रीय स्वामियों के रूप में स्थानीय निकायों की भूमिका की मुख्यतः उपेक्षा की गई थी। उनमें क्षमता की कमी के कारण यह दृष्टिकोण पूरी तरह से अनुचित नहीं था।
- चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की अवधि में पायलट रिसर्च प्रोजेक्ट, पंचायत संस्थाओं द्वारा नियोजन के प्रयास 1969 में नियोजन आयोग द्वारा प्रसारित किया गया। जिला नियोजन मार्गदर्शन, 1970, में खंड स्तरीय नियोजन वार्ता, 1978, में दांतावाला समिति प्रतिवेदन एवं 1984 में जिला नियोजन पर हनुमंतराव प्रतिवेदन की अवधि में जिलों पर क्षेत्रीय नियोजन के सफल होने पर भी विकेन्द्रित नियोजन की आवश्यकता बार–बार अनुभव की जाती रही। जिला नियोजन के प्रति 1970 में अभिरुचि दिखाई पड़ी। *इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन* द्वारा बहुस्तरीय नियोजन 1973, *जर्नल ऑफ लालबहादुर शास्त्री नेशनल अकदमी ऑफ*

ऐडमिनिस्ट्रेशन द्वारा जिला नियोजन 1975, इस आवश्यकता का प्रत्यक्ष उदाहरण है। महाराष्ट्र शासन ने पंचायत स्तर पर राज्य स्तरीय नियोजन मूल्यांकन समिति प्रतिवेदन 1971 के परिपालन में 1972 में जिला नियोजन बोर्ड का गठन किया गया। 1974 में जिला नियोजन विभाग की स्थापना की गई।

- जिला नियोजन प्रक्रिया से सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन करने के लिए सी.एच. हनुमन्तराव की अध्यक्षता में जिला योजना कार्य दल वर्ष 1982 में गठित किया गया तथा वर्ष 1984 कार्य दल ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और सुझाव दिया था कि स्थानीय स्तर पर शक्तियों और वित्तीय संसाधनों का विकेन्द्रीकृत करके जिला स्तर पर एक प्रभावी एवं स्थायी आयोजना तंत्र स्थापित किया जाना चाहिए, जिसमें लगभग 50 सदस्य हों। जिला परिषद् पंचायत समितियाँ, नगर निगमों या नगरपालिकाओं, जिले के विधायकों, सांसद, श्रमिकों, उद्योगपतियों तथा बैंकों के प्रतिनिधि इस निकाय में सम्मिलित करने की अनुशंसा की गई। इस विशालकाय जिला आयोजन निकाय की छोटी कार्यकारी या क्रियान्वयन समिति बने, जिसका अध्यक्ष जिला कलेक्टर हो, मुख्य आयोजना अधिकारी सदस्य-सचिव एवं विकास कार्यों से जुड़े विभागों के अधिकारी सदस्य मनोनित हों। जिला आयोजन निकाय की तकनीकी सहायतार्थ एक पृथक् जिला आयोजना प्रकोष्ठ भी स्थापित किया जाये।
- सन् 1985 में जिला पंचायतों द्वारा सभी विकासकारी कार्यक्रमों का प्रबन्ध करना तथा ग्रामीण विकास के लिए प्रशासनिक प्रबन्धों पर जी. वी. के. राव. समिति का गठन हुआ तथा समिति ने नियोजन से सम्बन्धित निम्न सुझाव दिये :
  - जिला तथा इससे भी निम्न स्तर की पंचायतीराज की संस्थाओं को ग्रामीण विकास के लिए योजना बनाने, उन्हें लागू करने तथा उनका मूल्यांकन करने के लिए अधिक शक्तियाँ प्रदान करना।
  - जिला स्तर की सभी विकासशील योजनाओं को लागू करने के लिए एक जिला विकास आयुक्त की नियुक्ति करना।
- वर्ष 1983 में केन्द्र–राज्यों के सम्बन्धों पर सरकारिया आयोग को गठित किया गया। 1988 में सरकारिया आयोग ने भी जी. वी. के राव समिति की तरह जिला स्तर पर नियोजन एवं प्रशासन को सशक्त बनाने के सुझाव दिए। परन्तु स्थानीय निकाय कमजोर होने के कारण तथा सुझावों पर अमल के अभाव में सभी प्रयास असफल रहे।

73ok o 74ok lafo/kku la'kks/ku dk i'pkr fodsUnhÑr fu;kstu gsrq iz;kl %

- केन्द्र सरकार के द्वारा जिला नियोजन को विकसित करने के लिए जो राशि पिछड़े क्षेत्रों को अनुदान के रूप में दी जाती थी उसे जिला नियोजन समिति के साथ जोड़ दिया गया तथा यह प्रावधान किया गया कि उपरोक्त क्षेत्रों को अनुदान के रूप में दी जाने वाली धनराशि केवल उन राज्यों को आबंटित की जाएगी।
- 73 वां संविधान संशोधन के आधार पर संविधान में 11वीं अनुसूची की व्यवस्था कर पंचायतीराज को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया एवं इस संशोधन के माध्यम से ग्रामीण विकास हेतु अनुच्छेद 243 से 243 (16) में उल्लेख किया गया है तथा जिला नियोजन से संबंधित 74 वां संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के अनुच्छेद 243–26 (4) में जिला नियोजन के लिए समिति की स्थापना का उपबंध करता है। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा, जो जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा बनाई गई योजनाओं को समेकित करेगी और पूरे जिले के लिए एक विकास योजना तैयार करेगी, का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों और नागरिकों के मौलिक अधिकारों को वर्णित किया गया है। उदाहरण के लिए, पंचायती राज संस्थाओं के विकास नियोजन का उद्देश्य उस राष्ट्रीय लक्ष्य को प्रोन्नत करने के लिए होना चाहिए जिसमें सभी नागरिकों के प्राथमिक क्षमताओं को बढ़ाने और उनके लिए व्यापक सामाजिक अवसर सुनिश्चित करना, किया गया है।
- योजना में इस बात पर भी बल दिया गया है कि हर जिले को एक जिला विकास योजना तैयार करनी होगी जिसमें उसके शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की योजनाओं को समेकित किया जाएगा और साथ ही विभिन्न योजनाओं के सेक्टोरल आबंटन भी शामिल होंगे। इसमें आगे यह सुझाव भी दिया गया है कि तीन अवधियों – अर्थात
  - संदर्श या संरचना योजना (20–25 वर्ष),
  - अल्पावधिक समाकलित अवसंरचनात्मक विकास योजनायें जोकि राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजनाओं की सहअवसानिक हैं और
  - विशिष्ट परियोजनाओं और स्कीमों से संबंधित योजनाएँ – के लिए अंतः – संबद्ध योजनाओं की जरूरत है।
- राज्यों ने अपने राज्य योजना दस्तावेजों को तैयार करने में कुछ सीमा तक सुविधा हासिल कर ली है। इसके अलावा राज्यों में जिला नियोजन के लिए जरूरी संस्थागत सुधारों की दिशा में भी काम आगे बढ़ा है। अनुच्छेद 243

जेड डी के अनुरूप अधिकतर राज्यों ने जिला योजना समितियों के गठन के लिए कानून पारित किये हैं। दूसरी ओर, सामाजिक–आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने के उद्देश्य से चलाई गई केंद्र प्रायोजित योजनाओं और अतिरिक्त केंद्रीय सहायता के माध्यम से केंद्र की ओर से राज्यों को पर्याप्त संसाधन प्रदान किये जा रहे हैं जिनमें जमीनी स्तर पर इंफ्रास्ट्रक्चर का विकास और सेवा प्रदायगी भी शामिल है।

- केन्द्रीय सरकार जिला नियोजन समिति को लेकर चिन्तित थी। अतः जिला नियोजन समिति के गठन के लिए वर्ष 2004 में मैसूर में सभी राज्यों के पंचायती राज मन्त्रियों की द्वितीय गोल मेज सभा हुई तथा सभा ने फैसला लिया की वर्ष 2004–05 के अन्त तक सभी राज्यों में जिला नियोजन समितियों का गठन करना अनिवार्य है। जिला नियोजन समिति की नाजुक स्थिति को देखते हुए वर्ष 2005 में वी. रामचन्द्र की अध्यक्षता में जमीन स्तरीय योजना से सम्बन्धित एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया गया तथा वर्ष 2004 में द्वितीय गोल मेज सभा के द्वारा सभी राज्यों में जिला नियोजन समिति का गठन करने सम्बन्धित फैसले की स्थिति को सन्तोषजनक नहीं पाया गया। अतः समूह ने जिला स्तर पर पंचवर्षीय योजना एवं वार्षिक योजना निर्माण के प्रतिमान प्रतिपादित किये तथा जिला नियोजन समिति को स्थाई संस्था बनाकर उसकी सहायता के लिए सचिवालय स्थापित करने की बात कही। विशेषज्ञ समूह का यह भी मानना था कि जिला नियोजन समिति को अपने कार्यों को निष्पादित करने के लिए तकनीकी, शैक्षणिक एवं निपुण संस्थाओं की सहायता लेने की स्वतन्त्रता प्रदान कर देनी चाहिए।
- वर्ष 2005 में ग्यारहवीं योजना की तैयारी के समय पंचायती राज मंत्रालय ने श्री वी. रामचंद्रन की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ दल का गठन किया जिसका उद्देश्य "जमीनी स्तर पर नागरिकों की बुनियादी न्यूनतम जरूरतों की पूर्ति के लिए सभी पंचायत स्तरों पर जिला और उप–जिला योजनायें तैयार करने" के संबंध में अध्ययन कर अपनी सिफारिशें प्रदान करना था। पंचायती राज मंत्रालय और योजना आयोग ने विशेषज्ञ दल की रिपोर्ट को स्वीकार किया।
- केन्द्र सरकार ने पिछड़ा क्षेत्र अनुदान निधि पिछड़ेपन के कारणों का मानक सरकारी कार्यक्रमों की तुलना में और अधिक व्यापक ढंग से समाधान करने के लिए वित्त वर्ष 2006–07 में अनुमोदित की गई। इसका उद्देश्य जन भागीदारी के माध्यम से चुने गए कार्यक्रमों के कार्यान्वयन द्वारा निर्धारित पिछड़े जिलों का सकेन्द्रित विकास करना है। गाँव, मध्यवर्ती से लेकर सच्ची भावना के साथ योजना तैयार और कार्यान्वित करने के लिए पंचायती राज संस्थान जिम्मेदार है। अन्ततः 74वें संविधान संशोधन के

अनुरूप राज्यों में वर्ष 2006–07 जिला नियोजन समितियों का गठन किया गया। परन्तु सभी राज्यों में जिला नियोजन समितियों के संगठनात्मक ढांचों में विभिन्नता थी और उनके द्वारा जो जिला योजना तैयार की गई थी वे योजनायें पूर्णतया जिला योजना के उद्देश्यों के अनुरुप नहीं थीं।

- ग्याहरवीं पंचवर्षीय योजना (2007–12) के अन्तर्गत राज्यों में जिला नियोजन समिति को वार्षिक योजनाओं के मसौदे पर पंचायती राज स्तर पर विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त धनराशि की जानकारी शामिल करने की बात कही गई। पंचवर्षीय योजना के मसौदे में (राज्य स्त्रोतों के अतिरिक्त) अन्य संसाधनों का बंटवारा करने के निर्धारित मापदण्ड बनाने का भी आग्रह किया गया।

Ekgkjk"Vª jkT; esa fodsUnzhÑr fu;kstu gsrq i;kl

वर्तमान समय में देश के लगभग सभी राज्यों में जिला नियोजन समितियों का गठन किया गया है एवं जिन राज्यों में गठित नही हैं उनमें से – अरुणाचल प्रदेश, असम, महाराष्ट्र, त्रिपुरा, उत्तरप्रदेश, चंडीगढ़ एवं पुड्डुचेरी राज्य अथवा केन्द्र शासित क्षेत्र हैं। महाराष्ट्र राज्य में 73वाँ संविधान संशोधन से पूर्व भी जिला नियोजन एवं ग्रामीण स्वराज्य का मूल्यांकन व पंचायती राज की स्थापना प्राचार्य पी. व्ही. पाटिल की अध्यक्षता में 1984 में की गई। इस समिति ने अपना प्रतिवेदन 1986 में महाराष्ट्र शासन को सौप दिया। 73वाँ संविधान संशोधन के माध्यम से पंचायती राज को अत्यधिक प्रशासनिक व आर्थिक अधिकार प्राप्त हुए हैं, जिनके तहत आम जनता को सेवा का अवसर भी प्राप्त हुए हैं। 1997–98 में जिला नियोजन समिति अधिनियम पारित किया गया। 2000 में पुनः जिला नियोजन समिति (सुधार व कार्य) अधिनियम पारित किया गया। परन्तु, संवैधानिक प्रावधान होने के उपरान्त भी जिला नियोजन समिति का गठन सभी राज्यों में नहीं किया गया।

ipk;rh jkt 0;oLFkk ,oa fu;kstu

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण अथवा पंचायती राज संस्थाओं की योजना प्रस्तुत करते हुए तीन स्तर क्रमशः ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खंड स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद् का गठन किया गया है। वास्तव में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था द्वारा देश के ग्रामीणों में एक चेतना सौपने का प्रयास किये जाने का प्रस्ताव किया गया ताकि राष्ट्रीय जनतंत्र का आधार व्यापक व मजबूत हो सके। पंचायती राज व नियोजन का उद्देश्य प्रारंभ से लेकर आज तक विकास योजनाओं से संबंधित करना एवं प्रशासन के प्रत्येक स्तर पर जनता को सक्रिय रूप से भागीदार बनाना है।

ftyk fu;kstu lfefr;ksa dk {ks=

जिला नियोजन समितियों के क्षेत्र में वह योजनाएँ आती है, जिनका प्रभाव–क्षेत्र, कार्यक्षेत्र और उन योजनाओं का लाभ भी केवल उसी जिले तक सीमित रहता है,

जिस जिले की विकासकारी योजना हो। परन्तु जिले का निर्माण शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र से होता है जिससे जिला नियोजन समितियाँ का क्षेत्र भी शहरी व ग्रामीण होगा। अतः जिला नियोजन समितियाँ शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र में नियोजन करेंगी, जो इस प्रकार हैं:

1- xkeh.k Lrj ij fu;ktu dk {k=

ग्रामीण क्षेत्र में नियोजन का कार्यभार जिले की तीनों स्तरों की पंचायतों को

Vcy 1 % 11 oh vuqlfp

Xkko d lalk/kuk d ic/ku o mRiknu of) lac/kh dk;	Xkkeh.k 0;oLFkk o fuek.k lac/kh dk;	Ekkuoh; {kerk of) lac/kh dk;
1. कृषि प्रसार सहित कृषि; 2. भूमि सुधार एवं मृदा संरक्षण; 3. लघु सिंचाई, जल प्रबंधन एवं जल संभार विकास; 4. पशुपालन, दुग्घशाला एवं मुर्गीपालन; 5. मत्स्य पालन; 6. सामाजिक वानकी एवं कार्यवानकी; 7. लघु वन उत्पादन; 8. खाद्य संसाधन उपयोगों सहित लघु उद्योग; 9. खादी ग्राम एवं कुटीर उद्योग; 10. ईंधन;	11. ग्रामीण आवास; 12. पेय जल; 13. सड़कें, पुलिया, जलमार्ग एवं संचार के अन्य साधन, 14. विद्युत वितरण सहित ग्रामीण विद्युतीकरण; 15. उर्जा और गैर–परंपरागत स्रोत; 16. पुस्तकालय, 17. बाजार एवं मेले; 18. सार्वजनिक वितरण प्रणाली, 19. सामुदायिक संपत्ति का अनुरंक्षण;	20. गरीबी–उन्मूलन कार्यक्रम; 21. प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा; 22. तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा; 23. पौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा; 24. प्राथमिक चिकित्सा केन्द्र एवं उपचार केन्द्रों सहित स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, 25. परिवार कल्याण; 26. महिला एवं बाल विकास; 27. सामाजिक कल्याण; 28. कमजोर वर्गों का कल्याण (विशेषतः अनुसूचित जाति का कल्याण) 29. जल वितरण व्यवस्था;

सौंपा गया है। 73वें संविधान संशोधन से पंचायती राज संस्थाओं की संवैधानिक स्थिति में बदलाव आया और उनको संविधान के अनुच्छेद 243 जी में वर्णित कुछ विषयों को प्रदान किया गया, जिनकी सूची संविधान की 11वीं अनुसूची में दी गई है। उन विषयों की संख्या 29 है तथा सभी पंचायतें अपने स्तर पर उन विषयों में नियोजन कर सकती है।

2- 'kgjh Lrj ij fu;kstu ds {k=

Vcy 2 % 12 oh vuqlfp

Xkkso ds lalk/kuk ds iac/ku o mRiknu of) lac/kh dk;l	Xkkeh.k 0;oLFkk o fuek.k lac/kh dk;l	Ekkuoh; {kerk of) lac/kh dk;l
1. नगर आयोजन सहित शहरी आयोजन 2. सड़कें तथा पुल 3. अग्नि शमन सेवायें 4. गंदी बस्ती सुधार तथा उन्नयन 5. सांस्कृतिक, शैक्षिक तथा कलात्मक पहलुओं का संवर्धन 6. जन्म तथा मृत्यु पंजीकरण सहित व्यापक आंकड़ों का रख–रखाव	7. भूमि उपयोग तथा भवन निर्माण का विनिमयन 8. घरेलू औद्योगिक तथा व्यावसायिक प्रयोजनों के लिए जलापूर्ति 9. शहरी वानिकी, पर्यावरण संरक्षण तथा परिस्थितिकीय पहलुओं का संवर्धन 10. शहरी–निर्धनता उन्मूलन, 11. श्मशान घाटों, कब्रिस्तानों तथा पूजा स्थलों का रख रखाव 12. स्ट्रीट लाईट, पार्किंग स्थलों, बस स्टाप तथा सार्वजनिक सुविधाओं सहित जन सुविधाएं	13. आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतू आयोजन 14. लोक स्वास्थ्य, सफाई तथा ठोस उपशिष्ट प्रबन्धन 15. विकलांग तथा मानसिक रूप से रुग्न लोगों सहित समाज के कमजोर वर्गों के हितों की सुरक्षा करना 16. पार्कों, बगीचों और खेल के मैदानों के साथ–साथ शहरी सुविधाओं तथा सुख–सुविधाओं का प्रावधान 17. कांजी हाऊस पशुओं के प्रति क्रूरता पर रोक 18. बचूड़खानों और चर्म शोधशालाओं का पंजीकरण

74वें संविधान संशोधन के पश्चात् शहरी क्षेत्र की तस्वीर बदल गयी, क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 243 में शहरी निकायों को कार्य क्षेत्र के रूप में 18 विषय प्रदान किए गए, जिन पर नगरपालिकाएँ शहरी क्षेत्र में नियोजन करती है तथा उन विषयों का विवरण संविधान की 12वीं अनुसूची में किया गया है।

- **'kgjh ,oa xkeh.k fty fu;kstu lfefr dk xkeh.k {ks=k esa fu;kstu ls lEcfU/kr leku fo"k;**

  संविधान की 11वीं तथा 12वीं अनुसूचियों में जो विषय ग्राम पंचायतों तथा नगरपालिकाओं को सौंपे गए हैं उनमें अधिकतर एक समान है। सभी समान विषयों पर योजना बनाने के बाद जिला नियोजन समिति में उनका एकीकरण करना सरल कार्य नहीं है, जबकि असमान विषयों पर योजना तैयार करके उनका एकीकरण सरलतापूर्वक किया जा सकता है। ग्राम पंचायतों एवं नगरपालिकाओं के लिए समान विषय निम्न प्रकार हैः

fty Lrj ij ;kstuk r;kjh dh izfØ;k

जिला स्तर पर योजनाओं को तैयार करने के लिए शहरी तथा ग्रामीण निकायों की सहायता ली जाती है। क्योंकि जिले के क्षेत्र का निर्माण शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्र के मिलान से होता है। अतः उसके लिए जिले की योजना तैयार करने की प्रक्रिया भी शहरी तथा ग्रामीण होगी, जो इस प्रकार हैः

1- fty dk xkeh.k {ks= esa ;kstuk r;kj djus dh izfØ;k

जिले के ग्रामीण क्षेत्र में योजना तैयार करने की प्रक्रिया तीन स्तरों पर की जाती है, जो निम्नलिखित है :

- **xke iapk;r Lrj**

  ग्राम स्तर पर योजना तैयार करने के लिए ग्राम सभा का बहुत महत्व है, क्योंकि ग्राम सभा के माध्यम से गाँव की जनता से जनसहभागिता प्राप्त होती है। प्रत्येक ग्राम पंचायत अपनी योजनाएँ तैयार करने के लिए मुद्दों से सम्बन्धित आंकड़े तथा आय संसाधनों का ब्यौरा ग्राम सभा की प्रथम बैठक में 15 नवम्बर से 15 दिसम्बर को प्रस्तुत करती है। ग्राम सभा प्रथम बैठक में ग्राम पंचायत के सदस्य, गाँव के लोग तथा प्रत्येक क्षेत्रवार ग्राम स्तरीय कर्मचारी उपस्थित होते हैं। सभी ग्राम स्तरीय कर्मचारी अपने क्षेत्रवार अपनी सूचनाएँ ग्राम पंचायत को उपलब्ध करवाते हैं, जिसके आधार पर ग्राम स्तर पर दीर्घकालीन योजना का निर्माण किया जाता है। ग्राम पंचायत दीर्घकालीन योजना के तहत अगले 10–15 वर्षों की योजना तैयार करती है। दीर्घकालीन योजनाओं की तैयारी का मुख्य उद्देश्य आधारभूत ढाँचे का निर्माण करना, मानव संसाधनों का विकास करना तथा उत्पादक के क्षेत्र में विकास करना

है, ताकि भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं को हल किया जा सके।

दीर्घकालीन योजनाओं के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए ग्राम पंचायत पंचवर्षीय योजनायें तैयार करती है, जिसमें प्रत्येक पाँच वर्ष के लिए उद्देश्य निर्धारित कर लिए जाते हैं। अगली पंचवर्षीय योजना का निर्माण करने के लिए पिछली पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों का मूल्यांकन किया जाता है, जिससे अगली पंचवर्षीय योजना के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए सुझाव मिलते हैं। प्रत्येक ग्राम पंचायत अपनी वार्षिक योजनाओं का भी निर्माण करती है तथा उसके लिए पंचवर्षीय योजना में निर्धारित किये गए उद्देश्यों को वर्ष–वार पूरा करने का प्रयास किया जाता है। वार्षिक योजना पूर्ण होने के पश्चात् अगली वार्षिक योजना तैयार करने के लिए पिछली वार्षिक योजना का मूल्याकंन करके उसके उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त धन जुटा कर नई वार्षिक योजना में स्थान दिया जाता है।

सभी तैयार की गई योजनाओं के कच्चे–खाकों पर ग्राम सभा की बैठक में विचार–विमर्श किया जाता है तथा उसके बाद उन योजनाओं को निश्चित करने के लिए ग्राम पंचायत उन्हें स्थायी समिति को सौंप देती है। स्थायी समिति खण्ड विकास एवं पंचायत अधिकारी की उपस्थिति में उन्हें प्रत्येक क्षेत्रवार अधिकारियों से आय संसाधनों तथा आय वितरण का मिलान करवा के उन योजनाओं की त्रुटियों को दूर करने के उचित सुझाव प्रस्तुत करती है। स्थायी समिति द्वारा सभी विकासकारी योजनाओं को निश्चित करने के पश्चात् फिर उन्हें ग्राम सभा की दूसरी बैठक में लाया जाता है। ग्राम सभा की बैठक में योजनाओं को मान्यता मिलने के पश्चात् ग्राम पंचायत अपनी योजना तैयार कर लेती है तथा उन योजनाओं के अनुसार ही अपना कार्य करती है। ग्राम पंचायत अपने स्तर पर जो भी योजना बनाती है। उसका सम्पूर्ण ब्यौरा वह मध्यस्थ को सौंपती है तथा वार्षिक योजना का ब्यौरा ग्राम पंचायत जिला नियोजन समिति को भी सौंपती है ताकि नियोजन प्रक्रिया का विकास खण्ड एवं जिला स्तर पर हो सके।

ग्राम पंचायत द्वारा तैयार की जाने वाली वार्षिक योजना का समय चक्र अगस्त सितम्बर अक्तूबर नवम्बर दिसम्बर जनवरी फरवरी मार्च ग्राम सभा/एरिया सभा द्वारा मुद्दों की पहचान योजना निश्चित करने के लिए स्थायी समिति के पास भेजी जाती है स्थायी समिति मुद्दों की जाँच के बाद सुझाव प्रस्तुत करता है। दूसरी ग्राम/एरिया सभा की बैठक में लाया जाता है। स्थायी समिति द्वारा अन्तिम रूप दिया जाता है। स्थानीय शासन द्वारा अन्तिम रूप दिया जाता है। जिला योजना समिति योजना तैयार करके सरकार के पास भेजती है।

- **tuin ipk;r@ipk;r lfefr Lrj**

  मध्यस्थ पंचायत खण्ड स्तर पर स्थानीय सरकार के रूप में भूमिका निभा रही है तथा ग्राम पंचायतों के द्वारा तैयार की गई योजनाओं तथा कार्यों में नियन्त्रण करके उन्हें सहयोग देती हैं। मध्यस्थ पंचायत भी ग्राम पंचायतों की तरह अपनी दीर्घकालीन, पंचवर्षीय तथा वार्षिक योजनाएँ खण्ड स्तर पर तैयार करती है। खण्ड स्तर की विकासकारी योजनाओं को तैयार करने के लिए मध्यस्थ पंचायत खण्ड से सम्बन्धित प्रत्येक जानकारी अपने स्तर तथा ग्राम पंचायत स्तर से एकत्रित करके अपने पास रखती है। उसके पश्चात् खण्ड स्तर के सभी क्षेत्र–वार मुद्दों की पहचान करती है और उनको हल करने तथा खण्ड स्तर पर विकासकारी योजना बनाने के लिए अपनी बैठक में विचार–विमर्श करती है। मध्यस्थ पंचायत की बैठक में उन मुद्दों का जो भी हल निकाला जाता है। उसे स्थायी समिति को सौंप दिया जाता है। स्थायी समिति मुद्दों से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्रवार विभाग, अधिकारियों से आय संसाधन की जाँच करवाती है तथा योजना की त्रुटियों को दूर करके उचित सुझाव देकर उसे मध्यस्थ पंचायत के पास भेज देती है और मध्यस्थ पंचायत की अगली बैठक में मुद्दों से सम्बन्धित योजना को पास कर दिया जाता है।

  ग्राम पंचायतों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्धित जो योजनाएँ मध्यस्थ पंचायतों को सौंपी जाती है उन सभी योजनाओं को भी क्षेत्र से सम्बन्धित विभाग अधिकारियों से जाँच करवाई जाती है तथा उन्हें खण्ड विकास अधिकारी को सौंप दिया जाता है। यदि ग्राम पंचायतों की माँग औचित्यपूर्ण है तो विभागीय मापदण्ड़ों के अनुसार उन्हें खण्ड योजनाओं में स्थान दिया जाता है। मध्यस्थ पंचायतों द्वारा बनायी गयी योजनाओं तथा ग्राम पंचायतों द्वारा भेजी गयी स्वीकृत योजनाओं को एकीकृत करके खण्ड़ स्तर पर योजनाओं को पूर्ण किया जाता है और उन्हें मध्यस्थ पंचायत द्वारा जिला पंचायत को सौंप दिया जाता है।

- **fty ipk;r@fty ifj"kn Lrj ij**

  जिला पंचायत जिला स्तर पर सरकार का कार्य करती है, क्योंकि यह मध्यस्थ पंचायतों तथा ग्राम पंचायतों पर नियन्त्रण का कार्य भी करती है और योजना बनवाने में उनका सहयोग करती है। जिला पंचायत जिले के ग्रामीण क्षेत्र से सम्बन्धित योजना बनाने के लिए मध्यस्थ पंचायतों से सभी खण्ड़ों की सूचनाएँ प्राप्त करके अपने पास रखती है तथा जिला स्तर पर क्षेत्र–वार मुद्दों की पहचान करती है और उनको हल करने तथा जिला स्तर पर विकासकारी योजना बनाने के लिए अपनी बैठक में विचार–विमर्श

करती है। जिला पंचायत की बैठक में उन मुद्दों पर जो भी हल निकाला जाता है उसे जिला स्तर की स्थायी समिति को सौंप दिया जाता है। स्थायी समिति मुद्दों से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्रवार विभाग अधिकारियों से आय संसाधनों की जाँच करवाती है तथा योजना की त्रुटियों को दूर करके जिला पंचायत के पास भेजती है और जिला पंचायत अपनी अगली बैठक में मुद्दों से सम्बन्धित योजना को पास कर देती है। जब सम्पूर्ण जिले की योजना तैयार हो जाती है तो अपने स्तर पर उसको एकीकृत करके जिला नियोजन समिति को सौंप देती है।

2- fty d 'kgjh {k= e ;kstuk r;kj dju dh ifØ;k

शहरी क्षेत्र में योजना तैयार करने का कार्य नगरपालिकाओं का है। शहर की सभी नगरपालिकाएँ अपने क्षेत्र के लिए विकासकारी योजनाएँ तैयार करने में वार्डों की सहायता लेती है।

- **okMZ Lrj ij fu;kstuk ifØ;k**

  शहरी क्षेत्र में योजना तैयार करने के लिए प्रत्येक वार्ड से योजना तैयार करवायी जाती है। उसके लिए सभी वार्ड एरिया सभा की सहायता लेते है तथा अपनी दीर्घकालीन पंचवर्षीय योजना बनाने के लिए एरिया सभा में प्रस्ताव रखा जाता है ताकि शहरी जनता की सहभागिता प्राप्त की जा सके। प्रथम एरिया सभा की बैठक में प्रस्ताव के दौरान जिन योजनाओं को प्राथमिकता मिलती है उन योजनाओं को वार्ड स्तर की स्थायी समिति के पास विचार–विमर्श करने के लिए भेज दिया जाता है तथा वार्ड स्तर की स्थायी समिति क्षेत्रवार अधिकारियों से उनकी जाँच करवा के उनकी कमियों को दूर करवाती है और उपयुक्त सुझाव के साथ फिर उसे एरिया सभा की दूसरी बैठक में प्रस्तुत किया जाता है। एरिया सभा में जब उस प्रस्ताव को मान्यता मिल जाती है तो वह वार्ड की योजना बन जाती है।

  शहर में वार्ड स्तर पर योजना तैयार होने के पश्चात् नगरपालिकाओं के पास भेज दिया जाता है। नगरपालिकाएँ अपनी योजना तैयार करती है और क्षेत्रवार जो मुद्दे पाए जाते हैं उनको अपनी बैठक में प्रस्तुत करती है। शहरी क्षेत्र की योजनाओं को निश्चित करने के लिए क्षेत्रवार अधिकारियों से उनकी आय संसाधन सम्बन्धित जाँच करवायी जाती है तथा सभी क्षेत्र–वार अधिकारी उन योजनाओं की त्रुटियों को दूर करके उचित सलाह के साथ उनको नगरपालिका को सौंप देते है। नगरपालिका की अगली बैठक में कार्य क्षेत्र के आधार पर योजनाओं को मान्यता मिल जाती है। नगरपालिका द्वारा वार्डों की योजनाओं सम्पूर्ण शहर की योजनाओं में जगह

देने के लिए क्षेत्र की प्राथमिकता तथा योजना तैयारी सम्बन्धित नियमों की जांच करती है और उनको शहरी योजना के साथ एकीकृत करके जिला नियोजन समिति को सौंपती है।

3- xkeh.k rFkk 'kgjh ;kstukvksa dk lekdyu

- राज्यों की सभी ग्राम पंचायतें अपनी योजनायें तैयार करके पंचायत समिति को सौंपती है तथा पंचायत समिति खण्ड स्तर पर योजनाएँ तैयार करने के लिए सभी पंचायतों की योजनाओं का समांकलन करके प्राथमिकताओं के आधार पर अपनी योजना बनाती है।
- खण्ड स्तर की योजना तैयार होने के पश्चात् योजना को जिला पंचायत/जिला परिषदों को सौंपा जाता है। जिला पंचायत सम्पूर्ण जिले की योजना तैयार करके उसे जिला नियोजन समिति को सौंपती है।
- नगरपालिकाएँ अपनी विकासकारी योजनाओं को सीधे जिला नियोजन समिति को सौंप देती है। जिला नियोजन समिति में शहरी तथा ग्रामीण योजनाओं का समांकलन प्राथमिकताओं के आधार पर किया जाता है।

निम्न स्तर पर नियोजन सम्बन्धित विशेष समूह ने योजनाओं का समाकलन करने के लिए केरल राज्य के स्थानीय निकायों द्वारा अपनाये जाने वाले आयामों का उल्लेख किया है जो निम्नलिखित है।

- **LFkkuh; lekdyu%** स्थानीय समांकलन में सड़कों से सम्बन्धित कार्यक्रम होते है जो एक या एक से अधिक स्थानीय निकायों के माध्यम से चलते है।
- **{k=h; lekdyu%** क्षेत्रीय समांकलन में एक विशाल क्षेत्र से सम्बन्धित विभिन्न स्कीमों का विकास साथ में करना जैसे कृषि क्षेत्र में विकास के लिए कृ ा सम्बन्धित कार्यक्रमों को जैसे बागवानी, फव्वारों द्वारा सिंचाई ध्यान में रखकर क्षेत्र की योजनाओं का प्रबन्ध करना।
- **vUrj{k=h; lekdyu%** कार्यक्रम के लिए अन्य कार्यक्रमों से संसाधन जुटा कर उसका अधिकतम प्रभाव सुनिश्चित कराना।
- **m/ok/kj lekdyu%** जो इस बात को अलग करता है कि उच्चतर पंचायत स्तरों पर क्या किया जाना चाहिए, किसमें मात्रात्मक लाभ है और क्या है, जो स्थानीय सरकारों द्वारा नहीं किया जा सकता।
- **lalk/kuksa dk lekdyu%** जो कि केन्द्र और राज्य प्रायोजित दोनों तरह की विभिन्न स्कीमों के चैनलीकरण की पहचान करने और उनके नियोजन पर निगाह रखता है। जिसका पंचायतें प्रयोग कर सकती है तथा स्थानीय योजनाओं में समाकलन करके अतिरिक्त संसाधन प्राप्त कर सकती है।

ftyk fu;kstu lfefr d foRrh; lkr

जिला नियोजन समिति पंचायती राज संस्थाओं तथा नगरपालिकाओं से प्राप्त योजनाओं को एकीकृत करके राज्य/राष्ट्रीय सूचकांकों की तुलना में जिले की स्थिति का विश्लेषण करती है तथा पंचवर्षीय योजनाओं के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर उन्हीं आधारों पर जिला योजना तैयार करती है तथा उसे राज्य सरकार के पास भेज देती है। जिला नियोजन समिति के वित्तिय संसाधन जिला स्तर पर अनेकों योजनाओं को प्रारूप दिया जाता है और उनके लिए जो वित्तीय स्रोत निम्नलिखित हैं :

- केन्द्र सरकार से अनुदान
- राज्य सरकार से अनुदान
- स्थानीय शासन के अपने वित्तीय साधन
- निजी क्षेत्रों से अनुदान
- पिछड़े वर्ग आयोग तथा महिला आयोग आदि से प्राप्त अनुदान राज्य में विकेन्द्रीकृत नियोजन के माध्यम से पंचवर्षीय तथा वार्षिक योजनाओं के अन्तर्गत राशि जारी की जाती है।

fodsUnzhÑr fu;kstu dh igyw

1- **tulgHkkfxrk %** विकेंद्रीकृत नियोजन का मूल अर्थ है जनता से अपने विकास की योजनायें बनवा कर उनका क्रियान्वयन करना। अतः जनसहभागिता का तत्व उसमें स्वयं आ जाता है। योजनाओं के तकनीकी पहलुओं को भले ही विषेशज्ञ तैयार करें, पर विकास कैसा होना चाहिए, किसके लाभ के लिए होना चाहिए और किस दिशा में होना चाहिए इसका फैसला जनता करे, यही जनसहभागिता है। इसके अलावा योजनाओं के क्रियान्वयन मे भी जन–सहभागिता उतनी ही ज़रूरी है।

2- **tokcnsgh %** योजनायें जब ऊपर से बना कर थोपी जाती है तो योजनाओं की विफलता, सफलता, देरी आदि की जवाबदेही तय करना कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि प्रशासन तंत्र के इतने स्तर होते हैं कि कहाँ क्या गलत हुआ, किसने क्या फैसला लिया, या किसके कारण योजना प्रभावी न हो पाई – यह पता लगाना कठिन हो जाता है। विकेन्द्रीकृत नियोजन में योजना सूत्रीकरण और कियान्वयन के स्तर कम होते हैं। अतः जवाबदेही तय करना सरल होता है। ग्राम स्तर पर बनाई गई योजनाओं में तो स्पष्ट रूप से यह पहचान की जा सकती है कि किसकी क्या जवाबदेही है।

3- **lkjnf'kZrk %** लघु स्तरीय योजनायें बड़े स्तर की योजनाओं की तुलना में अधिक पारदर्शी होती हैं। ग्राम स्तर का ही उदाहरण लीजिए– ग्राम सभा अगर कोई योजना बनाती है और ग्राम पंचायत के माध्यम से उसका क्रियान्वयन होता है, तो सभी को यह मालूम रहता है कि परियोजना पर कितनी लागत आई है, परियोजना कितनी पूरी हुई है अभी और क्या करना बाकी है आदि।

4- **çHkkodkfjrk %** विकेन्द्रीकृत नियोजन किसी भी परियोजना की प्रभावकारिता को बढ़ाता है। इसका कारण यह है कि योजना लघु स्तर की होती है तथा उसमें सभी की भागीदारी होती है इसके साथ ही लोगों के हित सीधे–सीधे उसके साथ जुड़े होते हैं। विकेन्द्रीकृत आयोजन में स्थानीय स्तर पर ही लोग योजनायें बनाते हैं एवं स्वयं या अन्य संस्थाओं के माध्यम से उनका क्रियान्वयन करते हैं अतः जन–प्रयास और जन–उत्साह इन योजनाओं की प्रभावकारिता में वृद्धि करता है।

lalk/kuksa dh igpku vkj mUgsa y{;k lsa tksMuk

- **ikÑfrd lalk/ku &** जमीन, नदी, झरना, तालाब और पानी के अन्य स्रोत, जंगल और पेड़–पौधे, पहाड़ इत्यादि।
- **ekuoh; lalk/ku &** महिला और पुरुष, बच्चे–बच्चियाँ, वृद्ध, विकलांग इत्यादि।
- **foRrh; lalk/ku &** दान दाता, बैंकिंग संस्थायें, सरकार की विभिन्न योजनाओं से आना वाला धन, कर, चुंगी, फीस इत्यादि से होने वाली आय।
- **rduhdh lalk/ku &** खुद के या देशी ज्ञान पर आधारित और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध तकनीक जैसे आटा पीसने की चक्की, हाथ से चलने पंखा, कोल्हू से तेल निकालने की मशीन आदि।

ftyk ;kstuk lfefr dh Hkwfedk

1. जिला योजना निर्माण में नेतृत्व की भूमिका अदा करना।
2. जिले की स्थानीय अपेक्षाओं, प्राथमिकताओं का विश्लेषण कर समावेशित एवं सहभागी दृष्टि (Vision) विजन निर्माण में मुख्य भूमिका निभाना।
3. स्थानीय निकायों, संबंधित विभागों, स्वयंसेवी संस्थाओं, शैक्षणिक संस्थानों एवं अन्य हितभागियों के साथ चर्चा कर जिले के विकास की प्राथमिकताओं को तय करना।
4. स्थानीय स्तर पर तैयार की गयी योजनाओं के दोहराव को रोकना।

5. जिले स्तर पर योजनाओं के समेकन के समय स्थानीय निकायों एवं विकास से जुड़ी विभागों की योजनाओं के आधार पर यह सुनिश्चित करना कि उनसे जिले के विजन को हासिल किया जा सके।
6. जिले के विकास की योजना को समय सीमा में तैयार करवाने में सहयोग देना।
7. स्थानीय स्तर पर विकास की योजनाओं का निर्माण करने के संबंध में स्थानीय निकायों के जनप्रतिनिधियों और अधिकारियों का क्षमता विकास करवाना।

fodUnhÑr fty fu;tu dk;l e vojk/k

जमीन स्तर पर नियोजन को स्थापित करने के लिए जिला नियोजन समितियाँ अहम् भूमिका निभा सकती है, लेकिन विकेन्द्रीकृत नियोजन से सम्बन्धित कदम सरकार ने अभी तक उचित प्रकार से नहीं उठाए हैं। क्योंकि जिला नियोजन समितियों को अपने कार्यों को पूर्ण करने में विभिन्न प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। स्थानीय निकायों पर अब तक विशिष्ट वर्ग का कब्जा है जिससे स्थानीय स्तर पर जब नियोजन किया जाता है तो उसमें जनसहभागिता का अभाव मिलता है, लेकिन योजना पूर्ण होने पर जब उसको क्षेत्र में लागू किया जाता है तो उसमें जनसमूह सहयोग प्रदान नहीं करता। जिला नियोजन समिति योजना बनाने के लिए सम्पूर्ण जिले की भौतिक तथा मानव–संसाधन सम्बन्धित जानकारी एकत्रित करती है, परन्तु जब जिला नियोजन समिति विशेष क्षेत्र की प्राथमिकता के आधार पर वार्षिक तथा पंचवर्षीय योजना का निर्माण करती है तो उसके लिए अनुमानित धन की कमी पायी जाती है। जिसके लिए जिला नियोजन समिति ने सभी क्षेत्रों से पर्याप्त जानकारी एकत्रित करनी चाहिए। जिला नियोजन समितियां राज्यों के सभी दिशा–निर्देशों का पालन करती हैं जिससे राष्ट्रीय स्तर के उद्देश्यों तथा जिला स्तर के उद्देश्यों में भिन्न्ता पायी जाती है।

fu"d"k

उपर्युक्त समीक्षा से यह स्पष्ट होता है कि –

- नियोजन के प्रति राज्य का रवैया, जनता की भागीदारी, नीति निर्माताओं की सोच, नियोजन पर राजनैतिक व प्रशासनिक प्रभाव तथा नियोजन करने की गति शामिल हैं।
- विकेन्द्रीकृत नियोजन, जिला नियोजन एवं ग्रामीण विकास के महत्व को समझते हुए उसकी प्रक्रिया एवं कार्य प्रणाली के बारे में किसी भी प्रकार की समस्या का अध्ययन नहीं किया गया तथा एकीकृत जिला नियोजन से संदर्भित सूक्ष्म अध्ययनों का स्पष्ट अभाव है।

- कर्मचारी कार्य को छोड़कर अन्य जिला नियोजन समिति के सदस्यों को इसकी शक्तियों, कार्यप्रणाली तथा मूल्यांकन व्यवस्था के बारे में जानकारी नहीं है। विकेन्द्रीकृत होते हुए भी प्रक्रिया केन्द्रीकरण का शिकार है। इस समिति के त्रैमासिक एवं वार्षिक प्रतिवेदनों को नहीं तो इनके सदस्यों को दिखाया जाता है और नहीं आम जन को इन तक पहुँच है।

उपरोक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि समस्याओं के बावजूद ग्राम पंचायत की नियोजन प्रक्रिया जन–केन्द्रित इरादे जाहिर करती है। ग्रामीण नागरिक अपने अधिकारों को लेकर पहले तुलना में अधिक जागरुक बनें, तो विकेन्द्रित नियोजन का लक्ष्य पाया जा सकता है। हमें पिछली कमियों से सबक लेकर विकेन्द्रित नियोजन प्रक्रिया में वाच्छित सुधार तेजी से करने होंगे।

l>ko

उपरोक्त विवेचन के पश्चात विकेन्द्रकृत नियोजन प्रक्रिया को सफल बनाने हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं :

- इन सभी कमियों को दूर करने के लिए सबसे पहले निर्वाचित प्रतिनिधियों को इस योजना के निर्माण, क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन के बारे में प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है।
- जिला प्रशासन को नियोजन प्रक्रिया का पर्यवेक्षण एवं आकलन करना चाहिए। सामाजिक कार्य एवं विकास विभाग के प्रोफेशनल्स की एक टीम बनाई जाय, जो स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण दे और योजना पर अमल की देखरेख करे।
- स्थानीय स्तर पर योजना की तैयारी एवं अमल के बारे में स्वयं सहायता समूह, समुदाय-आधारित संगठन, अशासकीय संस्थाओं एवं स्थानीय क्लब के प्रतिनिधियों को शामिल करते हुए एक सामाजिक आंकेक्षण टीम बनाई जाए, जो नियोजन प्रक्रिया में जन सहभागिता एवं इसके संस्थाकरण की निगरानी करे। इसमें वित्तीय अनुशासन, जिम्मेदारी व जबावदेही के सिंद्धान्त को लागू किया जाए।

lanHk lwph

1. अवस्थी एवं अवस्थी (16वाँ संस्करण 2014) : *भारतीय प्रशासन*, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, पृ. 283
2. *समेकित जिला नियोजन कार्य से जुड़े स्वयं सेवी संस्थाओं के क्षमता विकास के लिये प्रशिक्षण मार्गदर्शिका,* मध्यप्रदेश सरकार, भोपाल।
3. *गर्वमैन्ट ऑफ इण्डिया मैनयुवल फॉर, इन्टीग्रेटिड डिस्ट्रीक प्लानिंग*, दिल्ली, 2008, पृ. 9.

4. शर्मा, के. के., *भारत में पंचायती राज*, कालेज बुक डिपो, नई दिल्ली, 2006, पृ. 68.
5. *समेकित जिला नियोजन कार्य से जुड़े जिला योजना समिति सदस्यों के क्षमता विकास के लिये प्रशिक्षण मागदर्शिका*, पृ. 21.
6. थापलियाल, बी. के., 'डीसैन्ट्रलाईज्ड प्लानिंगः कॉन्स्पट, स्कोप एण्ड मैथ्डोलोजी', जर्नल ऑफ रूरल डैव्लपमैन्ट, एन. आई. आर. डी., हैदराबाद 1990, पृ. 995–996.
7. *उपरोक्त*, 'थियोरी एण्ड प्रैक्टिस ऑफ इकोनॉमिक प्लानिंग', पृ. 405.
8. देशमुख, नीलिमा, *आर्थिक नीति और प्रशासन*, कालेज बुक डिपो, जयपुर, 1997, पृ. 49.
9. प्रतियोगिता दर्पण (2015) : 'भारतीय अर्थव्यवस्था', उपकार प्रकाशन, आगरा, पृ. 301.
10. 'ड्राफ्ट स्टेटस एण्ड फंक्सनिंग ऑफ डिस्ट्रीक प्लानिंग कमैटीज इन इण्डिया', *प्रिया*, नई दिल्ली, दिसम्बर 2007, पृ. 4.
11. *समेकित जिला नियोजन मैनुअल*, योजना आयोग, भारत सरकार नई दिल्ली, 2008
12. वही पृ. 82.
13. कटारिया, सुरेन्द्र, *भारतीय लोकप्रशासन*, नैशनल पब्लिकेशन हाऊस, जयपुर, 2005, पृ. 299.
14. 'ड्राफ्ट स्टेटस एण्ड फंगसनिंग ऑफ डिस्ट्रीक प्लानिंग कमैटीज इन इण्डिया, प्रिया, नई दिल्ली, दिसम्बर 2007, पृ. 5
15. *उपरोक्त*, ड्राफ्ट स्टेटस एण्ड फंक्सनिंग ऑफ डिस्ट्रीकट प्लानिंग कमैटीज इन इण्डिया', पृ. 5.
16. डी.डी. बसु, *भारत का संविधान*, बाधवा प्रकाशन दिल्ली, 2000 पृ. 282–283.
17. *समेकित जिला नियोजन कार्य से जुड़े जिला योजना समिति सदस्यों के क्षमता विकास के लिये प्रशिक्षण मागदर्शिका*, पृ. 28.
18. *समेकित जिला नियोजन मैनुअल*, योजना आयोग, भारत सरकार नई दिल्ली, 2008.
19. *उपरोक्त*, 'ड्राफ्ट स्टेटस एण्ड फंगसनिंग ऑफ डिस्ट्रीक प्लानिंग कमैटीज इन इण्डिया', पृ. 5.
20. हर्षा, एस., 'चेजिंग फेस ऑफ रूरल इण्डिया स्ट्रेटस ऑफ डिस्ट्रीकट प्लानिंग कमैटीज इन इण्डियाः इक्सपीरियंस ऑफ ए डेकेड', *कुरूक्षेत्र*, 2008, पृ. 55.
21. भारत सरकार, योजना अयोग, *वार्षिक रिपोर्ट*, नई दिल्ली, 2011–12, पृ. 87–8.
22. राजस्थान सरकार, ग्रामीण विकास एवं पंचायती राज विभाग, 2007.
23. *उपरोक्त*, ड्राफ्ट स्टेटस एण्ड फंगसनिंग ऑफ डिस्ट्रीकट प्लानिंग कमैटीज इन इण्डिया, पृ. 5.
24. en.wikipedia.org.wiki/district planning committees in india
25. महाराष्ट्र राज्य शासन, जिला नियोजन समिति अधिनियम (कार्य व सुधार) 2000.
26. भारत सरकार, छठी रिपोर्ट, *द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग*, नई दिल्ली, 2007, पृ. 58 शहरी स्तर पर नियोजन का क्षेत्र

27. भारत सरकार, छठी रिपोर्ट, *द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग*, नई दिल्ली, 2007, पृ. 5

28. गर्वमैन्ट ऑफ इण्डिया, *मैन्युअल फॉर इन्टीग्रेटिड डिस्ट्रीक प्लानिंग*, दिल्ली, 2008, पृ. 115–1168

29. गर्वमैन्ट ऑफ इण्डिया, *मैन्युअल फॉर इन्टीग्रेटिड डिस्ट्रीक प्लानिंग*, दिल्ली, 2008, पृ. 72

30. *समेकित जिला नियोजन कार्य से जुड़े जिला योजना समिति सदस्यों के क्षमता विकास के लिये प्रशिक्षण मागदर्शिका*, पृ. 28.

31. *आगे आयें लाभ उठायें* (तृतीय संस्करण), जन सम्पर्क विभाग, मध्य प्रदेश सरकार, भोपाल, 2006.

32. *समेकित जिला योजना मैनुअल*, राज्य योजना आयोग, मध्य प्रदेश.

33. अनीरबन, शेठ (मार्च 2015), पंश्चिम बंगाल में विकेद्रित नियोजनः नारेबाजी बनाम हकीकत, *पंचायती राज अपडेट*, इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज, नई दिल्ली, पृ. 1 व 8.

34. डॉ. राजेश कुण्डू (दिसम्बर 2015) : हरियाणा में जिला नियोजन समितियों की कार्यप्रणाली का विश्लेषण, *पंचायती राज अपडेट*, इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज, नई दिल्ली, पृ. 6 व 7.

महिला सशक्तिकरण : अवधारणा, समस्याएँ एवं प्रयास

जितेन्द्र कुमार पाण्डेय

महिला सशक्तिकरण का मुद्दा वैश्विक समुदाय के समक्ष एक प्रमुख चुनौती का विषय बना हुआ है। लैंगिक प्रश्न आज केवल राजनीति और सार्वजनिक जीवन में मानवता का समावेश करने के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि दुनिया में अपनी मानवीय अस्मिता को पुर्नपरिभाषित करने के लिए भी यह एक केन्द्रीय जरुरत है। महिलाओं का विकास और सशक्तिकरण विकास का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, क्योंकि इसी से समग्र विकास की गति निर्धारित होती है। संयुक्त राष्ट्र सहस्त्राब्दी विकास लक्ष्य में भी लैंगिक समानता एवं नारी सशक्तिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने पर बल दिया गया है। भारत, महिलाओं के प्रति भेदभाव समाप्त करने एवं उनके अधिकारों के संरक्षण संबंधी संयुक्त राष्ट्र सन्धि का हस्ताक्षरकर्ता होने के साथ-साथ महिलाओं की स्थिति पर संयुक्त राष्ट्र आर्थिक एवं समाजिक परिषद् के आयोग कमीशन ऑन स्टेटस ऑफ वीमेन का भी सक्रिय सदस्य है।

भारत ने महिलाओं को समान अधिकार प्रदान करने के लिए विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय कन्वेंशनों तथा मानवाधिकार तंत्रों का अनुसमर्थन भी किया है। इनमें वर्ष 1993 में महिलाओं के साथ सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन पर कन्वेंशन का अनुसमर्थन प्रमुख है। भारत द्वारा मैक्सिको कार्ययोजना (1975), नैरोबी फारवर्ड लुकिंग स्ट्रेटजीज़ (1985), बीजिंग घोषणा तथा कार्रवाई मंच (1995), 21वीं शताब्दी में महिला-पुरुष समानता और विकास एवं शान्ति पर संयुक्त राष्ट्र महासभा सत्र में अंगीकार किये गये निष्कर्ष दस्तावेज का भी समर्थक है। लैंगिक असमानता के खिलाफ सितम्बर 2014 में संयुक्त राष्ट्र संघ के 69वें महासभा अधिवेशन द्वारा चलाये गये विश्व अभियान 'ही फॉर शी' में भी भारत सम्मिलित हुआ।

किसी भी राष्ट्र की परम्परा और संस्कृति उस राष्ट्र की महिलाओं में परिलक्षित होती है, किन्तु यह निराश एवं सदमा पहुँचाने वाला तथ्य है कि महिलाओं सहित सबके लिए भोजन के अधिकार को लेकर हमने बहुत काम नहीं किया है। लिंग-भेद

और माताओं के कुपोषण को समाप्त करने के लिए अभी बहुत कुछ किया जाना है। ये मूल रूप से असली समस्याएँ हैं। हमारे यहाँ माताओं के कुपोषण की घटनाएँ इस कदर व्यापक है कि गर्भ में पल रहे शिशु कुपोषण के शिकार होते हैं। कम वजन के बच्चे पैदा होते हैं। और ऐसे बच्चे स्वस्थ लड़के या लड़कियाँ नहीं बन पातें हैं। उनके पैदा होने के बाद भी वे वंचित रहते हैं। यह चीज भी ज्यादातर कोख से मिलती है। इसकी वजह भी लिंग-भेद है इस प्रकार लैंगिक वंचना, लिंग-भेद और बच्चों में वंचना ज्यादातर एक दूसरे से जुड़ी हुई है। ऐसी चिकित्सकीय तर्क ये है कि कुपोषित बच्चों को हृदय संबंधी बीमारियाँ हो जाती हैं। माताओं में कुपोषण, कुपोषित बच्चे और भारत में बड़े पैमाने पर हृदय रोग एक दूसरे से जुड़ी हुई चीज है जिसकी मूल रूप से बड़ी वजह महिलाओं की उपेक्षा है।

efgyk l'kfDrdj.k % vo/kkj.kk] i;kl ,oa leL;k,¡

महिला सशक्तिकरण एक महत्वपूर्ण सामाजिक घटक है जिसको समझने के लिए हमें अपने राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक ढाँचे सहित उसके बहुआयामी प्रभाव पर चिन्तन करना होगा। जहाँ तक राजनीतिक संरचना का प्रश्न है महिलाएँ आज विश्व मतदाताओं का आधा हिस्सा बन चुकीं हैं, लेकिन इनमें से सिर्फ 18 फीसदी ही सांसद है। भारत के सन्दर्भ में राष्ट्रीय विधायिकाओं में भागीदारी के मामले में यह आँकड़ा मात्र 9.1 प्रतिशत है। अधिकतर राज्यों में यह आँकड़ा और भी कम है।

सामाजिक घटक तो सदमा पहुँचाने वाला है। जनगणना 2011 में एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलता है कि देश में स्त्री और पुरुष कर अनुपात असंतुलित है। इससे भी चिन्ता की बात यह है कि शून्य से छह वर्ष की आयु तक के बच्चों में भी लिंगानुपात लड़कों के पक्ष में झुका हुआ है और इस दशक में शिशु लिंगानुपात में कमी आई है, जनगणना 2001 में शिशु लिंगानुपात 927 था जो 2011 घटकर 914 हो गया, यह निराश करने वाला तथ्य है। जहाँ तक आर्थिक ढाँचे का प्रश्न है, महिलाएँ यहाँ भी वंचित हैं। कृषि उद्योग और सेवाओं में महिलाओं को रोजगार में सिर्फ 26.1 प्रतिशत की भूमिका प्राप्त है। सेवा क्षेत्र में यह मात्र नौ प्रतिशत है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के अद्यतन रिपोर्ट के अनुसार वेतनदायी कार्य में महिलाओं की कुल संख्या 15 प्रतिशत है अर्थात 85 प्रतिशत महिलाओं की नियति निर्भरता के संरचनात्मक रूप में निहित है। इन घटकों का अवलोकन करने से यह तथ्य दृष्टिगत होता है कि महिलाएँ आज भी वंचना का शिकार हैं। इस वंचना को दूर करने के लिए महिला सशक्तिकरण एक आवश्यक पूर्व-शर्त है।

महिला सशक्तिकरण से तात्पर्य महिलाओं को पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों में निर्णय लेने की स्वतंत्रता से

है। उनमें इस प्रकार की क्षमता का विकास जिसमें वे अपने जीवन का निर्वाह इच्छानुसार कर सके एवं उनके अंदर आत्मविश्वास और स्वाभिमान को जागृत करना है। महिला सशक्तीकरण एक बहुआयामी एवं सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। इसका उद्देश्य एक न्यायपूर्ण एवं सम–समाज की स्थापना करना है। क्योंकि लिंगगत् समानता को सुशासन की कुंजी कहा जाता है।

स्पष्ट है कि सभी समस्याओं की जड़ असमानता में अन्तर्निहित है एवं समाज अपने स्वभाव और प्रकृति में पितृसत्तात्मक है। सीमोन दी बुआ ने अपनी पुस्तक *'द सेकेण्ड सेक्स'* में लिखा है कि ''अब तक औरत के बारे में पुरुषों ने जो कुछ लिखा है उस पर शक किया जाना चाहिए, क्योंकि लिखने वाला न्यायधीश और अपराधी दोनों है। इसलिए महिलाओं के साथ व्यवहार में समानता और देश के विकास में उनकी पूरी सहभागिता के लिए आवश्यक कदम उठाना चाहिए।

महिलाओं और बच्चों के विकास के लिए सरकारी नीतियों एवं कार्यक्रम बनाने तथा विभिन्न मंत्रालयों और क्षेत्रों के बीच समन्वय बढ़ाने हेतु 2006 में एक पृथक महिला और बाल विकास मंत्रालय का गठन किया गया। मंत्रालय का प्राथमिक उत्तरदायित्व महिलाओं और बच्चों के अधिकारों और सरोकारों से संबधित कार्यो को आगे बढ़ाना तथा उनकी उत्तरजीविता, सुरक्षा, विकास एवं भागीदारी को समग्र रूप से प्रोत्साहित करना है।

महिला और बाल विकास मंत्रालय के विज़न के अनुसार हिंसा व भेदभाव से मुक्त वातावरण में सशक्त महिलाएँ सम्मान से रहें और विकास में पुरुषों के समान भागीदारी निभा सकें। मंत्रालय का मिशन है कि विभिन्न क्षेत्रों से संबद्ध नीतियाँ और कार्यक्रमों के जरिये महिलाओं के सरोकारों को मुख्यधारा से जोड़कर, महिलाओं के अधिकारों के बारे में उनमें जागरूकता बढ़ाकर या महिलाओं को अपने मानवाधिकारों को प्रेरित और सम्पूर्ण विकास के लिए संस्थागत और कानूनी समर्थन प्रदान करके महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण को बढ़ावा देना है।

efgyk l'kfDrdj.k dh fy, fd;s x;s lao/kkfud mik;

महिला पुरुष समानता के सिद्वान्त जो भारतीय संविधान मे भी उल्लेखित है। भारतीय संविधान महिलाओं को न केवल समानता प्रदान करता है, बल्कि महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक भेदभाव करने के लिए राज्य को शक्ति प्रदान करता है। अतः महिलाओं को बराबरी का अधिकार संवैधानिक रूप से प्रदत्त है। भारतीय संविधान में महिलाओं के सशक्तिकरण एवं सुरक्षा हेतु निम्न प्रावधान है।

- सभी व्यक्तियों के लिए कानून के समक्ष समान। (अनुच्छेद–14)।
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या स्थान के आधार पर भेदभाव पर निषेध (अनुच्छेद–15(1), महिलाओं और बच्चों के लिए अनुच्छेद–15(3) में विशेष प्रावधान।

- राज्य के अधीन किसी भी पद, रोज़गार या नियुक्ति से सम्बन्धित समान अवसर (अनुच्छेद–16)।
- पुरुषों और महिलाओं के लिए सुरक्षित जीविका के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराने का अधिकार (अनुच्छेद–39(ए))।
- समान कार्य के लिए समान भुगतान का अधिकार (अनुच्छेद–39(द))।
- 73वें एवं 74वें संविधान संशोधन अधिनियम–1994 के द्वारा पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया। जो महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से मील का पत्थर साबित हुआ।

efgyk l'kfDrdj.k esa iapk;rhjkt dh Hkfedk

महिला सशक्तिकरण में पंचायतीराज की भूमिका अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके माध्यम से सामाजिक एवं संस्थात्मक स्तर पर बदलाव आया है एवं राजनीतिक सशक्तिकरण के माध्यम से सामाजिक सशक्तीकरण लाने का प्रयास किया जा रहा है। महिला सशक्तिकरण की दृष्टि से पंचायतीराज दूरगामी महत्व का साबित हुआ है, कई अध्येता, जैसे निर्मल मुखर्जी, जॉर्ज मैथ्यू और रजनी कोठारी इसे क्रान्ति का नाम देते हैं। क्योंकि इसका दायरा बहुत ही व्यापक है। महिला अधिकारिता के पूर्ववर्ती प्रयास व्यक्तिगत निर्णय तथा माहौल में परिवर्तन तक सीमित थे।

सामाजिक ढाँचे में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया गया, जिससे महिलाओं की हैसियत में संरचनात्मक सुधार हो। इसके विपरीत 1992 के 73वें संशोधन अधिनियम में जो प्रयोग हुए वह महिलाओं के लिए 'संस्थागत प्रतिनिधित्व' का प्रावधान करता है।

पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से उनकी स्थिति में व्यापक बदलाव आया है। पंचायतों के द्वारा महिलाओं को प्राप्त राजनीतिक सशक्तिकरण की देन है कि लगभग 20 वर्षों में देश के भीतर राजनीतिक विमर्श में महिलाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है, देश भर में 30 लाख 10 हजार पंचायत प्रतिनिधि में लगभग 38 प्रतिशत महिलाएँ हैं।

यह संख्या विश्व में कुल निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों से भी अधिक है जबकि आरक्षण से पहले निर्वाचित महिलाओं की संख्या मात्र 4.5 फीसदी थी। कुल राज्यों में जैसे बिहार में 55 प्रतिशत, उत्तराखंड में 54 प्रतिशत, मध्यप्रदेश में 52 प्रतिशत, कर्नाटक में 48 प्रतिशत एवं केरल में 47 प्रतिशत महिलायें पंचायतों में चुनाव जीत कर आती हैं।

यह बदलाव सिर्फ संख्यात्मक ही नहीं है बल्कि यह अन्तर गुणात्मक भी हैं। ये निर्वाचित महिला प्रतिनिधि ''नागरिक समाज'' (Civil Society) के राजकाज संबंधी

अपने अनुभवों को राज्य के राज-काज संचालन में भी ले आई हैं। इस प्रकार वे राज्य को गरीबी, गैर-बराबरी व लैंगिग न्याय सरीखे मुद्दों के प्रति संवेदनशील बना रही है।

इन महिलाओं को राजनीति में लाने के लिए उठाया गया यह कदम 'सकारात्मक भेदभाव' कहा जा सकता है। पंचायती राज व्यवस्था ने महिलाओं के स्वयं के बारे में सोच बदलने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जैसा कि प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पंचायत प्रतिनिधियों को संबोधित करते हुए कहा कि ''पंचायती राज की सबसे बड़ी सफलता यही है कि उसने महिलाओं का राजनैतिक व सामाजिक सशक्तिकरण किया है जो आधुनिक युग में विश्व इतिहास में एक अनोखी मिसाल है। पंचायतों में निर्वाचित महिलाएँ नेतृत्व गुण व नारीवाद सोच के जरिए राजकाज में बदलाव ला रही हैं। ये महिलाएँ, पानी, शिक्षा, स्वास्थ्य, घरेलू हिंसा नशामुक्ति, उत्पीड़न और बुनियादी सुविधाओं के विकास सरीखे मुद्दों को प्राथमिकता देती हैं, क्योंकि उनकी आवश्यकताएँ उसी प्रकार की हैं''।

महत्वपूर्ण बात यह है कि गाँव की स्थानीय सभा में महिलाओं द्वारा उठाए गए मुद्दे 1995 में कोपेनहेगन में आयोजित सामाजिक शिखर सम्मेलन एवं संयुक्त राष्ट्र संघ मिलेनियम डेवलपमेंट गोल (2000) के विषय से जुड़े हुए हैं, जैसे गरीबी-उन्मूलन, खाद्य-सुरक्षा, सामाजिक सुरक्षा, बाल-विकास, विकलांग-कल्याण, वृद्ध-कल्याण व महिला विकास। वे इन्हीं सामाजिक विषयों पर चर्चा करते हुए इस 'ग्लोबल थीम' को स्थानीय स्तर पर नीतियों व कार्यक्रमों में शामिल करने एवं रूपान्तरित करने में लगी हुई है।

efgyk l'kfDrdj.k dh fy, fd;s x, uhfrxr ,oa ;kstukxr mik;

महिला सशक्तिकरण के लिए भारत सरकार की नीति में स्वतंत्रता के बाद से अनेक परिवर्तन हुए हैं। 1960 के दशक में अपनायी गई कल्याण की नीति में सबसे उल्लेखनीय परिवर्तन पाँचवी पंचवर्षीय (1974–1978) के दौरान आया जब महिलाओं के कल्याण से हटकर महिलाओं के विकास पर जोर देने की नीति अपनाई गई। सरकार की पाँचवीं पंचवर्षीय योजना से लेकर आगे तक महिलाओं के मुद्दों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण से विकास की ओर परिवर्तन आ रहा है। आठवीं योजना (1992–97) में नीति को पुनः परिवर्तित करते हुए सशक्तिकरण एवं विकास प्रक्रिया में महिलाओं को समान भागीदार बनाने पर जोर दिया गया। वर्तमान में ग्यारहवीं 2007–12 एवं बारहवीं योजना (2012–17) में समावेशी विकास पर हमारा ध्यान केन्द्रित है। बाद की दोनों पंचवर्षीय योजनाओं में महिला एवं बाल-कल्याण के लिए अनेक विकासात्मक योजनाओं को शुरू किया गया, जिससे महिलाओं के सशक्तिकरण के प्रति हमारी जागरुकता में और वृद्धि हुई है।

iem[k i;kl

महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के द्वारा 30 प्रतिशत महिलाओं के लिए रोजगार आरक्षित है, जबकि वर्तमान परिपेक्ष्य में 47 प्रतिशत महिलाएँ इस योजना का लाभ प्राप्त कर रहीं हैं। सरकार ने महिलाओं के रोजगार-उन्मुखी प्रशिक्षण के लिए छः लाख से अधिक महिलाओं के लिये नौंवी पंचवर्षीय योजना (1997–2002) में व्यवसायों व कौशल शिक्षण का प्रावधान किया था।

वर्ष 2010 में ''महिला एवं बाल विकास मंत्रालय'' के द्वारा चुनिंदा 200 जिलों में सबला योजना प्रारम्भ की गई है। जिसका उद्देश्य है कि किशोरी बालिकाओं का सर्वांगीण विकास जैसे कि पोषण व स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार, जीवन कौशल व व्यावसायिक कौशल में सशक्त बनाना। यह योजना आने वाले कुछ वर्षों में देश के सभी जिलों में लागू की जाएगी। महिलाओं के स्वंय सहायता समूहों के लिए सरकारी बैंकों से कम ब्याज दर पर ऋण देने का प्रावधान सरकार के द्वारा किया गया है। सामाजिक क्षेत्र के उत्थान के लिए पिछले बजट में महिला स्वंय सहायता समूहों के विकास कोष के लिए केन्द्र सरकार द्वारा 500 करोड़ रूपये का प्रावधान किया गया था।

^^cVh cpkvk] cVh i<kvk** jk"Vªh; vfHk;ku

22 जनवरी 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा बाल लिंगानुपात में वृद्धि हेतु इस महत्वाकांक्षी अभियान की शुरुआत की गई। इसका प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है:

1. बालिका शिशु के जन्म पर खुशी एवं उत्सव मनाना।
2. बालिका-शिशु-भ्रूण-हत्या पर रोक लगाना।
3. बालिका की उत्तरजीविता और संरक्षण सुनिश्चित करना।
4. बालिका की शिक्षा एवं सशक्तिकरण सुनिश्चित करना।

lqdU;k lef) ;kstuk

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा राष्ट्रीय ''बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'' अभियान के तहत् बेटियों की उच्च शिक्षा और उनके विवाह के लिए 'सुकन्या समृद्धि योजना' नाम से एक लघु बचत योजना की शुरुआत की गई। बालिकाओं के सशक्तिकरण के उद्देश्य से शुरू की गयी इस योजना के अन्तर्गत खाता खोलने से 14 वर्ष तक धन जमा करने का प्रावधान है, जिस पर 9.1 प्रतिशत का उच्चतर वार्षिक चक्रवृद्धि दर से ब्याज निर्धारित किया गया है।

efgyk l'kfDrdj.k dh fn'kk esa fo/kk;h iz;kl

महिला सशक्तिकरण का मुद्दा 21वीं सदी का ज्वलंत मुद्दा है। अगर भारत को विश्व की महान शक्ति के रूप में पहचान दिलाने में महिला सशक्तिकरण, की अहम् भूमिका हो सकती। इसलिए 21वीं सदी में प्रवेश करने के साथ तथा भूमंडलीकरण से प्रेरित परिस्थितियों के कारण के लिए सरकार के द्वारा इस दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए गयेः

jk"Vªh; efgyk l'kfDrdj.k uhfr] 2001

- इस नीति का लक्ष्य महिलाओं की उन्नति/विकास और शक्ति-संपन्नता है। इस नीति का बल है महिलाओं की पूर्ण क्षमता की प्राप्ति के लिए सकारात्मक आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के माध्यम से वातावरण का सृजन।
- इसका कहना है कि आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक सभी क्षेत्रों में महिलाओं को समान अधिकार एवं सुविधाएँ मुहैया कराना। फिर, स्वास्थ्य, शिक्षा स्तरीय शिक्षा, जीविका एवं रोजगार सभी क्षेत्रों में महिलाओं की समान पहुँच होनी चाहिए तथा महिलाओं को भी व्यावसायिक मार्गदर्शन एवं समान पारिश्रमिक प्राप्त हो।
- साथ ही, महिलाओं के साथ होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन के लिए कानूनी प्रणालियों का सुदृढ़ीकरण हो और महिलाओं एवं बालिकाओं के साथ होने वाली हिंसा के सभी रूपों तथा भेदभावों को उन्मूलन हो।
- इसमें यह भी कहा गया है कि पुरुषों और महिलाओं दोनों की सक्रिय भागीदारी द्वारा सामाजिक रवैये एवं प्रयासों में परिवर्तन हो। अंत में सिविल समाज विशेषकर महिला संगठनों के साथ भागीदारी बनाई जाये।

?kjsyw fgalk lq:{k.k vf/kfu;e] 2005

महिलाओं को घरेलू हिंसा से बचाने तथा उन्हें राहत और आपातकाल में संरक्षण देने के लिए भारत सरकार द्वारा घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम, 2005 लागू किया गया। यह अधिनियम 14 सितम्बर 2005 में संपूर्ण देश में एक साथ लागू किया गया। इसके निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रावधान हैः

- इस अधिनियम के तहत् पहली बार घरेलू संबंधों एवं घरेलू हिंसा को स्पष्ट रूप में परिभाषित किया गया। बहन, विधवा माँ, अकेली बेटी, अविवाहित महिला, आदि को भी इस नियम के अंतर्गत राहत घरेलू संबंधों में शामिल किया गया।

- इस अधिनियम में घरेलू हिंसा को बहुत व्यापक अर्थों में लिया गया है।
- यह कानून घरेलू हिंसा को रोकने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार को उत्तरदायी ठहराता है।
- इससे यह भी कहा गया है कि प्रत्येक राज्य को एक आश्रय स्थल (Shelter home) की व्यवस्था करनी चाहिए, ताकि उन महिलाओं को, जो संयुक्त घर में नहीं रहना चाहतीं, निवास प्राप्त हो।
- सरकार उन महिलाओं को, जो अपने अधिकारों के लिए, संघर्ष कर रही हैं, एक सुरक्षा अधिकारी प्रदान करेगी जो न्यायालय एवं उस महिला के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाएगा।

jk"Vªh; efgyk l'kfDrdj.k fe'ku

महिला सशक्तिकरण मिशन का शुभारम्भ 8 मार्च 2010 को किया गया। इसका उद्देश्य विभिन्न मंत्रालयों और राज्य सरकारों के सम्मेलन द्वारा महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक सशक्तिकरण है। शीर्ष स्तर पर राष्ट्रीय महिला सशक्तीकरण मिशन नीतिगत दिशा निर्देश देता है। इसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करते हैं और 13 मंत्री इसके सदस्य हैं। इनकी सहायता के लिए केंद्रीय समिति और अंतर मंत्रालयी समिति होती है। यह मिशन महिला सरोकारों को लोक नीति और प्रशासन के केन्द्र में रखने का एक महत्वपूर्ण प्रयास करता है। इसका उद्देश्य शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण और आजीविका की सुविधायें मुहैया कराने के अलावा महिलाओं के विरूद्ध हिंसा को कम क्रमिक रूप से समाप्त करना और सेवा प्रदान करना है। मिशन का मुख्य जोर निम्न दो बातों पर है।

- महिलाओं का आर्थिक सशक्तिकरण।
- महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा को क्रमिक रूप में समाप्त करना।

dk;LFky ij efgykvksa dh ;kSu izrkMuk ls lajf{kr fo/ks;d] 2010

भारतीय संविधान तथा अन्य कानून में महिलाओं को सामनता का अधिकार उपलब्ध कराने तथा उसे सुरक्षा प्रदान करने के अनेक उपबंध किये गये है। भारत ने महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव को खत्म करने से जुड़े अंतर्राष्ट्रीय समझौते पर भी हस्ताक्षर किए हैं। यह विधेयक लिंग समानता को सुनिश्चित करने के साथ कार्य स्थल पर यौन दुर्व्यवहार समेत महिलाओं के खिलाफ भेदभाव नहीं होने देने की गारंटी देता है।

- भारतीय दंड संहिता की धारा 209 भी महिलाओं को यौन प्रताड़ना से जुड़े आपराधिक हिंसा से सुरक्षा प्रदान करता है तदापि यह विडंबना ही है कि भारत में कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ यौन दुर्व्यवहार होता रहा है।

- भारतीय दंड व्यवस्था के इन्हीं लूपहोल्स को बंद करने तथा कार्यस्थल पर महिलाओं को सम्मानपूर्वक कार्य करने का माहौल निर्मित करने हेतु कार्यस्थल पर महिलाओं की यौन प्रताड़ना से सुरक्षा विधेयक 2010 विधेयक को लाया गया है।
- इस विधेयक में महिलाओं के लिए भारतीय संविधान में वर्णित समानता के अधिकार तथा सम्मान के साथ जीने के अधिकार की भी चर्चा की गई है।
- विधेयक में प्रावधान किया गया है कि नौ से ज्यादा कर्मचारियों वाली कंपनियों या प्रतिष्ठानों में नियोक्ता को एक आंतरिक शिकायत समिति का गठन करना होगा। जिला अधिकारी प्रत्येक जिले में भी इसी प्रकार के केन्द्र स्थापित करेंगे जहाँ पीड़ित महिला अपनी शिकायत कर सकेगीं।
- अधिनियम में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्रों के सभी कार्यस्थलों पर चाहे वह संगठित या असंगठित यौन अपराध हो से महिलाओं को सुरक्षा प्रदान की गई है। इस विधेयक में उन महिलाओं को शामिल किया गया है जो रोजगाररत् हैं और साथ ही उन्हें भी जो कार्यस्थल पर क्लांइट, ग्राहक या प्रैक्टिस के अलावा महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में छात्र और अनुसंधान अध्येता तथा अस्पतालों में रोगी के रूप में दाखिल होते हैं।

efgykvk d vkfFkd l'kfDrdj.k d fy, dh xb ub igy

tsUMj ctfVx igy % जेंडर बजटिंग महिलाओं को मुख्यधारा में लाने के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु वर्ष 2005–06 में इसकी शुरुआत की गई ताकि विकास का लाभ पुरुषों के समान महिलाओं को भी मिल सके। महिला और बाल विकास मंत्रालय को लिंग आधारित बजट के लिए नियामक मंत्रालय बनाया गया है। अब तक 56 मंत्रालयों में जेन्डर बजटिंग प्रकोष्ठ की स्थापना हो चुकी है तथा कुल बजट में जेन्डर बजटिंग पर आवंटन 2005–06 के 2.79 प्रतिशत से बढ़कर 2013–14 में 6.22 प्रतिशत हो गया है।

efgyk cSd] Hkkjrh; efgyk cSd fyfeVsM % समाज में महिलाओं समान अवसर देने और सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने भारत में पहली बार केवल महिलाओं की आर्थिक आवश्यकताओं के लिए महिला बैंक स्थापित करने का निर्णय लिया। इस बैंक की पहली अध्यक्ष उषा अनन्त सुब्रमण्यम को नियुक्त किया गया है। बैंक का उद्देश्य महिलाओं को वित्तीय सुविधायें मुहैया कराकर इनका सशक्तिकरण और वित्तीय समावेशन सुनिश्चित करना है। इस बैंक की पंचलाइन है **^efgyk l'kfDrdj.k&Hkkjr dk l'kfDrdj.k*** करना है। भारतीय महिला बैंक 1000 करोड़ की पूँजी से नवम्बर 2013 से कार्य करना प्रारम्भ कर दिया है।

efgyk l'kfDrdj.k ,oa fodkl ds fy, iaeq[k oS/kkfud ,oa Lok;Ùk lxBu

1- **jk"Vh; efgyk vk;kx %** राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन राष्ट्रीय महिला आयोग अधिनियम–1990 के अंतर्गत जनवरी 1992 में किया गया। आयोग का मुख्य उद्देश्य महिलाओं को सुरक्षा प्रदान करने वाले संवैधानिक और सभी कानूनों के प्रावधानों का अध्ययन और निगरानी करना तथा आवश्यक संशोधनों की सिफारिश करना है। आयोग आवश्यक रूप से महिलाओं की शिकायतों को सुनता है या स्वतः संज्ञान भी लेता है। यह उन जरूरतमंद और असहाय महिलाओं को कानूनी और दूसरी सहायता प्रदान करता है जो अपने अधिकारों से वंचित है। आयोग का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं की संवैधानिक एवं कानूनी संरक्षण में सुधार, कानूनी उपचार का प्रावधान, कल्याणकारी सुविधायें प्रदान करना, महिलाओं को प्रभावित करने वाली सभी सरकारी नीतियों में सरकार को सुझाव देना।

2- **dsUnzh; lekt dY;k.k cksMZ %** केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना 12 अगस्त 1953 को की गयी थी। इसका उद्देश्य स्वैच्छिक संगठनों के माध्यम से समाज कल्याण की गतिविधियों को बढ़ावा देने तथा महिलाओं और बच्चों के कल्याण के कार्यक्रम को चलाना है।

3- **jk"Vh; efgyk dk"k ¼efgykvk gsrq jk"Vh; _.k fuf/k½ %** वर्ष 1993 में असंगठित क्षेत्र में जरूरतमन्द एवं गरीब महिलाओं को आजीविका संबंधी गतिविधियों जैसे– आवास एवं लघु उद्यमों हेतु 21 करोड़ रूपये के आधारभूत निधि से इस कोष की शुरुआत की गई। राष्ट्रीय महिला कोष गरीब महिलाओं के आय सृजन के लिए एक उन्नत संगठन के रूप में उभरा है। आजीविका हेतु ऋण उपलब्ध कराकर यह गरीब महिलाओं और उनकी अधिकारिता पर ध्यान केन्द्रित करता है। अपनी स्थापना से लेकर अब तक राष्ट्रीय महिला कोष में लगभग सात लाख महिला लाभार्थियों को 500 करोड़ रूपये मूल्य के ऋण स्वीकृत किये गये हैं। राष्ट्रीय महिला कोष लघु ऋण के माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाना चाहता है तथा महिला स्वंय सहायता समूह के सदस्यों की शिक्षा, साक्षरता, स्वास्थ्य, पोषण के प्रति जागरूक बनाने और कानूनी अधिकारों के लिए भागीदार संगठनों को ऋण प्रदान करता है।

अतः यह स्पष्ट है कि सरकार द्वारा महिला सशक्तिकरण के लिए बहुत सारे प्रयास एवं सकारात्मक कानून बनाये गये हैं, किन्तु मात्र कानून बनाने से महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सशक्तिकरण नहीं हो सकता। इसके लिए

हमें यह बात आत्मसात एवं अंगीकार करना होगा कि महिलाओं के सशक्तिकरण की दिशा में किए गये सभी प्रयास पुरुष-विरोधी नही हैं, वरन् यह विकास का अनिवार्य घटक है। यह प्रयास महिलाओं के साथ-साथ सम्पूर्ण समाज के सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है क्योंकि जब तक आधी आबादी का सशक्तिकरण नहीं होगा तब तक पूरे समाज का सशक्तिकरण सम्भव नहीं है।

महिलाओं के हितों की रक्षा व उनका सशक्तिकरण हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है। इस संदर्भ में दूसरा महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि सिर्फ सकारात्मक कानून आवश्यक नहीं है; उससे भी अधिक आवश्यकता है लोगों में जागरुकता फैलाना, कानूनों का प्रभावी निष्पादन एवं सरकारी अनुप्रियशीलता का होना क्योंकि कानून के भय एवं ऊपर से थोपे गये विचार से वास्तविक सशक्तिकरण सम्भव नहीं है। आवश्यकता है ऐसी सरकारी नीतियों की जो महिलाओं के लिए सार्थक जीवन व्यतीत करने का वातावरण तैयार कर सकें। उनके व्यक्तित्व का समग्र विकास, अवसर तथा ऐसी परिस्थिति तैयार करना जिनसे महिलाओं का जीवन सार्थक हो और सम्मान के साथ समाज की मुख्यधारा में सहभागी हो सकें। किसी भी राष्ट्र की परम्परा और संस्कृति उस राष्ट्र की महिलाओं से परिलक्षित होती है। क्योंकि महिलायें समाज की रचनात्मक शक्ति होती हैं। वर्तमान समाज को समृद्ध करने एवं भविष्य को बेहतर बनाने के लिए हमें महिलाओं की स्थिति को सुधारना होगा। इसके लिए समाज की मानसिकता बदलनी होगी एवं अपनी रूढ़िवादिता का त्याग कर एक नई समावेशी विकासवादी रणनीति अपनानी होगी। यहाँ पर स्वामी विवेकानन्द की उस उक्ति को स्मरण करना उपयुक्त होगा, जब तक महिलाओं की स्थिति में सुधार नहीं होगा तब तक विश्व के कल्याण की कोई संभावना नहीं है।

I UnHk

1. साधना आर्या, निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता, *नारीवादी राजनीतिः संघर्ष एवं मुद्दे*, हिन्दी माध्यम कार्यान्यवन निदेशालय, नई दिल्ली, 2001।
2. नेशनल कमीशन ऑन सेल्फ इम्प्लॉयड वूमेन, *श्रमशक्ति रिपोर्ट*, नई दिल्ली, 1988।
3. रजनी कोठारी, *राजनीति की किताब*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002।
4. साइमन दि बुआ, *द सेकेण्ड सेक्स*, पिकाडोर, 1988।
5. एस प्रसन्ना राजन का आलेख, *जिन्हें नाज है हिन्द पर वो कहाँ हैं*, के अन्तर्गत अमर्त्य सेन एवं ज्यांद्रेज, की पुस्तक एन अनसर्टेन ग्लोरी इण्डिया एण्ड इट्स कन्ट्राडिक्शन का अंश, *इण्डिया टुडे*, 17 जुलाई 2013।
6. *योजना*, अप्रैल 2007।
7. *इण्डिया टुडे, स्वतंत्रता विशेषांक*, 26 अगस्त 2009।
8. *रविवारी जनसत्ता* 27 अप्रैल 2008।
9. *जनसत्ता*, 24 अप्रैल 2008।

10. *योजना, स्त्री सशक्तिकरण,* जून 2012।
11. *योजना, आजादी के 65 वर्ष,* अगस्त 2012।
12. *कुरूक्षेत्र, ग्रामीण महिला सशक्तिकरण,* अंक 10, अगस्त 2013।
13. *कुरूक्षेत्र, पंचायती राज,* अंक 10, 2006।
14. *भारत, 2015* सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
15. राष्ट्रीय महिला आयोग के अधिकार एवं शक्तियों के लिए देखें– www.ncw.nic.in।

विद्यालयीन गतिविधियों में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता : मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में : एक अध्ययन

सन्दीप जोशी एवं अमित तिवारी

समाज में सामाजिक समरसता सुनिश्चित किये जाने हेतु शिक्षा एक अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं सशक्त माध्यम है। यह सर्वकालिक रूप से मान्य है कि शिक्षा व्यक्तियों के विकास एवं राष्ट्रीय विकास में मुख्य भूमिका निभाती है। शिक्षा द्वारा सार्वभौमिक ज्ञान के माध्यम से व्यक्तियों के लाभ और राष्ट्रीय विकास को बढ़ावा दिया जा सकता है। यदि महिला एवं पुरूष दोनों ही शिक्षित होंगे तो उनकी आय में वृद्धि के साथ-साथ भविष्य में कार्य करने के अवसरों में भी वृद्धि होगी। बालिकाओं की शिक्षा से समाज में अतिरिक्त रूप से सामाजिक एवं आर्थिक सुदृढ़ता आती है जिसका लाभ पूरे समाज को मिलता है। बालिका शिक्षा के माध्यम से अनेकों लक्ष्यों को प्रभावी तरीके से प्राप्त किये जाने की सम्भावनायें विकसित होती हैं जिनका प्रभाव उनके सम्पूर्ण परिवार पर पड़ता है। इन्हीं बातों को दृष्टिगत रखते हुये प्राथमिक शिक्षा को संविधान में मूलभूत अधिकार के रूप में सम्मिलित किया गया। इसके अन्तर्गत छह से 14 साल के बच्चों को अनिवार्य शिक्षा बिना किसी जाति अथवा लैंगिक विभेद के दिये जाने का प्रावधान है (द राइट ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री एण्ड कम्पल्सरी एज्युकेशन ऐक्ट, 2009)। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात से ही शिक्षा को आंगनवाड़ी से लेकर विश्वविद्यालयीन स्तर तक आगे बढ़ाने का निरन्तर प्रयास किया जा रहा है। इसके बावजूद भारतीय समाज के ग्रामीण परिवेश में शिक्षा के सन्दर्भ में उतनी जागरुकता नहीं पैदा हुई जितना शहरी क्षेत्रों में इसका फैलाव हुआ। इन्हीं कारणों से समाज में कई तरह की बुराइयों, जैसे जातिगत संघर्ष, अस्पृश्यता रूढ़िवादिता, लिंगभेद आदि को समाप्त करने के अनेक प्रयासों के आशाजनक परिणाम प्राप्त होने में कठिनाईयाँ आती रही हैं।

यह कहा जा सकता है कि लिंगभेद समाप्त करने एवं सामाजिक समरसता बढ़ाने के लिये बाहरी कारक जैसे – गरीबी, परिवार का सामाजिक आर्थिक परिवेश

आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बच्चों की प्राथमिक शिक्षा के दौरान उचित वातावरण का निर्माण कर इन बुराइयों पर काबू पाया जा सकता है। विद्यालय मे मध्यान्ह भोजन की नीति, खेल गतिविधियाँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम, शिक्षकों का बालिकाओं के प्रति दृष्टिकोण आदि कारक सामाजिक समता बढ़ाने एवं लिंगभेद समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे छात्राएँ जिनके अभिभावक आर्थिक रूप से कमजोर हैं, उन्हें समाज की मुख्य धारा मे लाने के लिये सहपाठियों एवं शिक्षकों की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है।

मूल रूप से हमारे देश में दो तरह की विद्यालयीन व्यवस्थाएँ विद्यमान हैं : शासकीय एवं अशासकीय (निजी)। अशासकीय विद्यालयों में अधिकांशतः उच्च वर्ग एवं आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों के बच्चे शिक्षारत् है। सर्व शिक्षा अभियान के माध्यम से अनुसूचित जातियों एवं अन्य पिछड़ी जातियों के शैक्षणिक स्तर को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है जिसके अन्तर्गत विशिष्ट आवश्यकताओं के आधार पर संचालित कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिक के लिए बालक-बालिकाओं के नामांकन के अंतर को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। सरकार द्वारा विभिन्न राष्ट्रीय कार्यक्रमों जैसे प्राथमिक स्तर पर बालिका शिक्षा (एमडीएम) के द्वारा लैंगिक विभेद एवं सामाजिक असमानता को कम करने का प्रयास किया जा रहा है। इसी प्रकार से विद्यालय में निःशुल्क पाठ्य पुस्तकें, गणवेश, छात्रवृत्ति और मध्याह्न भोजन आदि प्रोत्साहन योजनाओं को भी क्रियान्वित किया जा रहा है। साथ ही इस क्षेत्र में अन्य प्रयास भी किए जा रहे हैं जैसे समान रूप से विद्यालय एवं शिक्षण कक्ष के वातावरण/गतिविधियों को अधिक न्यायसंगत बनाना, साथ ही सेवाकालीन प्रशिक्षण के माध्यम से शिक्षकों में व्याप्त जाति पूर्वाग्रह समाप्त कर शिक्षकों के व्यवहार में परिवर्तन करना इत्यादि। सरकार द्वारा बालक-बालिकाओं के मध्य समाज में विद्यमान लैंगिक अन्तर की रूढ़िवादी विचार धारा को समाप्त करने हेतु विभिन्न अभियानों के माध्यम से समय-समय पर प्रयास किये जा रहे हैं किन्तु उन्हें अन्य सामाजिक क्रियाओं के आज भी पूर्ण रूप से समानता नहीं मिल पाई। समाज में आज भी बालक-बालिकाओं में भेदभाव विद्यमान है जिसके परिणाम स्वरूप भारत में निरन्तर लिंगानुपात में कमी आ रही है।

उपर्युक्त कारकों को ध्यान में रखते हुए इस अध्ययन में शाला प्रणाली के अन्तर्गत विद्यालयीन गतिविधियों में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता का विश्लेषण किया गया है।

bl 'kk/k i= d 'kk/kk í' ; fuEuku l kj g %

- शाला प्रणाली के विभिन्न घटकों में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता की स्थिति को ज्ञात करना।

- शाला प्रणाली में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता के सम्बन्ध कें शिक्षकों, अभिभावकों, विद्यार्थियों एवं समुदाय की अभिवृत्ति एवं विचारधारा को ज्ञात करना।

'kk/k ifof/k % यह शोध प्राथमिक एवं द्वितीयक आंकड़ों के संग्रह और विश्लेषण पर आधारित है। प्राथमिक आंकड़ों के अध्ययन हेतु विशेष रूप से तैयार की गई साक्षात्कार अनुसूचियों का उपयोग किया गया है, जबकि द्वितीयक आंकड़ों का संग्रहण संबंधित कार्यालय के अभिलेखों, सरकारी निर्देशों, हैंडबुक, योजना दस्तावेज, प्रगति प्रतिवेदन पर निर्भर है। प्रश्न अनुसूची का उपयोग मात्रात्मक परिणाम उपलब्ध कराने के लिए किया है जिसका उपयोग शोध में गुणात्मक आंकड़ों से उत्पन्न मुद्दों की पृष्ठिभूमि तैयार करने के लिए किया गया है। प्रश्न अनुसूची के अलावा शिक्षकों से अभिवृत्ति अनुसूची के माध्यम से बातचीत की गयी। इसके माध्यम से विभिन्न सामाजिक वर्गों के शिक्षकों को चयनित कर प्रति चयन में शामिल करने का प्रयास किया गया है।

विद्यार्थियों के व्यवहार अभिवृत्ति एवं उनकी समझ को प्रभावित करने में अभिभावक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस कारण शोध में उन अभिभावकों का चयन किया गया जिनके छह-14 आयु वर्ग के बालक-बालिकाएँ विद्यालयों में नामांकित है। साक्षात्कार के लिए अभिभावक शिक्षक संघ के अध्यक्ष/उपाध्यक्ष के अलावा कार्यकारणी सदस्यों का भी चयन किया गया।

शोध हेतु मध्यप्रदेश के प्रत्येक संभाग से एक जिला, इस प्रकार कुल 10 जिलों का चयन किया गया। चयनित किये गये जिले हैं – श्योपुर, ग्वालियर, रतलाम, धार, राजगढ़, पन्ना, नरसिंहपुर, शहडोल, बैतूल एवं सीधी। प्रत्येक जिले से दो विकासखंड चयनित किये गये एवं प्रत्येक विकासखंड से 10 विद्यालयों का चयन किया गया। इस प्रकार कुल 20 विकास खण्डों से 200 विद्यालयों का चयन किया गया। प्रत्येक विकास खण्ड से 10 शासकीय प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों का चयन पृथक-पृथक गांवों से किया गया। चयनित विद्यालयों में मुख्य रूप से प्राथमिक इकाई (कक्षा 1 से 8) तक थी। प्रत्येक विद्यालय एक इकाई था इस कारण विद्यालय से संबंधित सभी इकाई प्रादर्श का हिस्सा थीं।

शोध का प्रथम उद्देश्य शाला शिक्षा प्रणाली के विभिन्न घटकों जैसे कक्षागत शिक्षण, मध्याह्न भोजन, खेल-कूद में लैंगक एवं सामाजिक समरसता की स्थिति को जानना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न गतिविधियों जैसे कक्षा में बैठक व्यवस्था, बालक-बालिकाओं का आपस के संप्रेषण, कक्षागत गतिविधियों एवं क्रीड़ा गतिविधियों की भागीदारी, विद्यालयों में मध्याह्म भोजन योजना का क्रियान्वयन इत्यादि का अवलोकन किया गया। इस दौरान यह भी देखा गया कि एक ऐसा भी समूह है जिन तक विभिन्न सुविधाओं की पहुँच नही है जिसके परिणामस्वरूप उस

समूह के विद्यार्थी शिक्षा के संदर्भ में उत्कृष्ट प्रदर्शन करने में असमर्थ है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र के गरीब एवं पिछड़े तथा शारीरिक रूप से अक्षम एवं ऐसे बच्चे सम्मिलित हैं जोकि तुलनात्मक रूप से कम विकसित सामाजिक वर्ग जैसे अनुसूचित जाति एवं जनजाति के हैं।

fo|ky; e uekfdr fo|kfFk;k d fyxku lkj foj.k

जिला	बालक		बालिका	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
रतलाम	1214	45.7	1442	54.3
राजगढ़	1713	49.6	1735	54.4
ग्वालियर	1163	49.0	1207	51.0
श्योपुर	1485	45.5	1782	54.5
धार	1124	48.7	1183	51.3
शहडोल	1542	47.8	1682	52.8
सीधी	1200	43.8	1534	56.2
नरसिंहपुर	1383	48.0	1497	52.0
बैतूल	994	47.7	1086	52.3
पन्ना	1461	49.5	1488	50.5
dy	**13279**	**47-5**	**14636**	**52-5**

विद्यालय में नामंकित विद्यार्थियों के लिंगानुसार आंकड़ों पर दृष्टिपात करें तो सभी जिलों के शासकीय विद्यालयों में बालक एवं बालिकाओं के नामांकन में अन्तर विद्यमान है। जिनमें सर्वाधिक लैंगिक अन्तर मुख्यतः रतलाम, सीधी एवं बैतूल जिलों में विद्यमान है। अधिकांश शासकीय विद्यालयों में बालिकाओं का नामांकन बालकों की अपेक्षा अधिक है। इसका प्रमुख कारण ऐसे रहवासी क्षेत्र जहां निजी विद्यालय स्थापित हैं वहां अधिकांशतः अभिभावकों द्वारा बालकों को निजी विद्यालयों में अध्ययन हेतु प्रवेश दिलाया जाता है जबकि बालिकाओं को शासकीय विद्यालय में भेजा जाता है। चूंकि आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा को कम महत्व दिया जाता है जिस कारण शासकीय विद्यालयों में बालिकाओं की संख्या बालकों से अधिक है एवं निजी विद्यालयों में बालकों का नामांकन अधिक है। अतः शैक्षणिक स्तर पर मध्य प्रदेश में बालक–बालिकाओं के मध्य लैंगिक विभेद विद्यमान है।

fo|kfFk;k dh fyxku lkj cBd 0;oLFkk

अध्ययन के दौरान एकत्रित किये गये आंकड़ों से स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की लिंगानुसार बैठक व्यवस्था के आधार पर 66.5 प्रतिशत विद्यालयों में शिक्षण कक्ष में

बालक एवं बालिकाओं को पृथक-पृथक पंक्तियों में बैठाया जाता है। माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों में लैंगिक संवेदनशीलता अधिक है। इसका मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महिलाओं एवं पुरुषों में आपसी संवाद की कमी, पर्दा तथा आदि बाल्यकाल से बच्चों को पारिवारिक परिवेश में देखने को मिलती हैं एवं धीरे–धीरे यह उनके व्यवहार में समाहित हो जाती है जो अन्ततः लैंगिक संकीर्णता के रूप में दृष्टिगोचर होती है।

f'k{k.k d{k d cgj ckyd-ckfydkvk dk vkil e li"k.k

अध्ययन में यह पाया गया कि चयनित 200 विद्यालयों में से 166 विद्यालयों में शिक्षण कक्ष के बाहर सभी वर्ग के बालक-बालिकाएँ आपस में वार्तालाप करते हैं। जबकि 34 विद्यालयों के बालक-बालिकाएँ आपस में बातचीत करना पसंद नही करते हैं। बालक-बालिकाओं के मध्य आपसी सम्प्रेषण न करने की स्थिति मुख्यतः शहडोल, बैतूल एवं श्योपुर जिलों के दूरस्थ आदिवासी बाहुल्य विद्यालयों में मुख्य रूप से विद्यमान है। इस समस्या का मुख्य कारण आज भी विशेषकर ग्रामीण एवं आदिवासियों क्षेत्रों में लड़के एवं लड़कियों का एक साथ वार्तालाप करना ठीक नहीं समझा जाता है। विशेषकर बालकों की अपेक्षा बालिकाओं पर अत्यन्त सख्त रवैया रखा जाता है। इससे स्पष्ट है कि आंशिक रूप से शाला प्रणाली में लैंगिक भेदभाव विद्यमान है।

lgikfB;k dh ikfjokfjd i"BHkfe dh tkudkjh

इस संदर्भ में 86 प्रतिशत विद्यालयों में बालक-बालिकाओं की सहपाठियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि की जानकारी है। इसी प्रकार स्तर के आधार पर देंखें तो प्राथमिक में 82.8 प्रतिशत एवं माध्यमिक में 88.5 प्रतिशत विद्यालयों में बालक एवं बालिकाएँ अपने सहपाठियों के नाम एवं पते जानते हैं।

वहीं कुछ ऐसे विद्यार्थी भी हैं जो अपने समीप बैठने वाले विद्यार्थियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि से अनभिज्ञ पाये गये। इस संदर्भ में विद्यालय में अध्ययनरत् उच्च वर्ग एवं आर्थिक रूप से सम्पन्न विद्यार्थी आर्थिक एवं सामाजिक स्तर से पिछड़े हुए समूह के विद्यार्थियों से सामाजिक सम्बन्ध बनाने में असहजता महसूस करते हैं। इसका मुख्य कारण क्षेत्रों में विद्यमान जातिगत कारण एवं व्यवस्था में विभिन्न जातियों का उच्च एवं निम्न वर्ग सोपान इस प्रकार की स्थिति को निर्मित करता है। ऐसी स्थिति में वर्ग भेद के कारण विद्यार्थी कक्षा में अन्य वर्ग के विद्यार्थियों से उचित प्रकार से घुल-मिल नहीं पाते हैं।

leku ykfxd leg d lkFk [ky xfrfof/k;k e Hkkxhnkjh

खेल गतिविधियों में भागीदारी के संदर्भ में 46 प्रतिशत विद्यालयों को अपने

लैंगिक समूह के विद्यार्थियों के साथ खेल गतिविधियों में भाग लेना पसंद है जिसमें प्राथमिक की अपेक्षा माध्यमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की संख्या अधिक है, क्योंकि माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों की आयु एवं समझ विकसित होने के कारण लैंगिक मुद्दों पर संवेदनशीलता अधिक होती है। माध्यमिक विद्यालय में प्रवेश करने वाले विद्यार्थियों में लैंगिक विभेद अधिक पाया गया। इस कारण अधिकांश बालक–बालिकाएं एक दूसरे के साथ खेल गतिविधियों में भाग लेना पसंद नहीं करते हैं। जिसका मुख्य कारण विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में अभिभावकों द्वारा बालक–बालिकाओं के एक साथ खेलने पर विशेषकर बालिकाओं के पालकों द्वारा आपत्ति की जाती है।

fo|ky;k e/;kgu Hkkstu ;kstuk dk fØ;kUo;u

मध्याह्न भोजन योजना एक ऐसी महत्वपूर्ण योजना है जो सामाजिक भेदभाव को कम करने में सहयोग प्रदान कर सकती है। इस योजना का उद्देश्य जहां एक ओर विद्यालयों में विद्यार्थियों को पौष्टिक आहार प्रदान करना है वहीं दूसरी ओर प्रतिदिन एक साथ भोजन ग्रहण करने माध्यम से विद्यार्थियों में सामाजिक समरसता में वृद्धि करना है।

विश्लेषण के आधार पर लगभग 68 प्रतिशत विद्यालयों में सभी विद्यार्थियों द्वारा मध्याह्न भोजन ग्रहण किया जाता है तथा शेष 32 प्रतिशत (लगभग एक तिहाई) विद्यालयों में सभी विद्यार्थियों द्वारा मध्याह्न भोजन ग्रहण नही किया गया। मध्याह्न भोजन ग्रहण नही करने वाले विद्यार्थियों में माध्यमिक विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या अधिक है। सामाजिक वर्गानुसार विद्यार्थियों द्वारा मध्याह्न भोजन नही ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों में मुख्यतः सामान्य वर्ग के ऐसे विद्यार्थी जोकि आर्थिक रूप से सम्पन्न है, उनकी संख्या अधिक है। इसका मुख्य कारण जिन विद्यालयों में मध्याह्न भोजन पकाने हेतु निम्न वर्ग के रसोइया नियुक्त हैं, वहां उच्च वर्ग के विद्यार्थी भोजन करना पसंद नही करते हैं। इसी संदर्भ में विद्यार्थियों के द्वारा घर से भोजन लाने की प्रवृत्ति भी लगभग समान है। इसमें कोई विशेष लैंगिक अंतर नहीं है।

शोध अध्ययन अध्ययन के उद्देश्य – शिक्षकों, अभिभावकों एवं विद्यार्थियों के लैंगिक और सामाजिक समरसता के विषय पर उनके दृष्टिकोण को जानना है। शिक्षा व्यवहार परिवर्तन की कला है इसलिए उन कारणों को ज्ञात करना अत्यंत आवश्यक है जिनके द्वारा व्यवहार प्रभावित होता है (एरतुक्र, 1972)। व्यवहार को जानने को एक प्रमुख निर्धारक तत्व मनुष्य की प्रवृत्ति है।

प्रवृत्ति विभिन्न कारकों के प्रत्युत्तर में दी गई एक अस्थायी प्रतिक्रिया की स्थिति है। दूसरे शब्दों में, प्रतिक्रिया करने की आदत ही प्रवृत्ति है। व्यक्ति को किसी अवस्था में अपनी प्रवृत्ति का पता तभी चलता है जब वह प्रतिक्रिया देता है। इसीलिए बोगार्डस (1947) ने कहा है कि व्यवहार एक प्रकार से किसी व्यक्ति को परखने का एक तरीका है। यद्यपि यहां परिभाषित किया गया है कि व्यवहार प्रत्यक्ष रूप से

निरीक्षण किये गये व्यवहार से पूर्णतया भिन्न है। प्रवृत्ति संभावित व्यवहार से जुड़ी हुई है।

फेनेमा और शेरमैन के द्वारा गणित के प्रति अभिवृत्ति जानने हेतु 1977 में एक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन में उन्होंने एक स्केल निर्मित की जिसके नौ सब-डायमेंशन थे। प्रत्येक सब-डायमेंशन में 12 प्रश्न थे। अध्ययन में बताया गया कि स्केल के प्रत्येक सब-डायमेंशन का उपयोग अपनी तरह से किया जाना संभव है।

इस शोध मे दो सब–डायमेंशन (लैंगिक एवं सामाजिक समरसता) की एक स्केल विकसित की गई जिसके 15 प्रश्न थे। इसमें लैंगिक समरसता की अभिवृत्ति जानने के लिये आठ प्रश्न एवं सामाजिक समरसता की अभिवृत्ति जानने के लिए सात प्रश्न रखे गये। पाँच बिन्दु की लिकर्ट टाइप स्केल का उपयोग विभिन्न वर्गों एवं लैंगिक समाज में किया गया। इनके द्वारा उनकी लैंगिक एवं सामाजिक समरसता की अभिवृत्ति को कक्षा के वातावरण एवं एम.डी.एम. वितरण के परिपेक्ष्य में देखा गया जो कि प्राथमिक शिक्षा के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण है।

lgf'k{kk dk lEcU/k esa vfHkofÙk

प्रतिदर्श में सम्मिलित अधिकांश विद्यालय सह-शिक्षा पर आधारित हैं। ऐसी स्थिति में 72.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं (अभिभावक,शिक्षक एवं समुदाय के सदस्यों) के अनुसार बालकों और बालिकाओं को साथ अध्ययन करना चाहिए जबकि 27.5 प्रतिशत इससे सहमत नहीं है कि इन्हें साथ में अध्ययन करना चाहिए। अधिकांश अभिभावक, शिक्षक एवं विद्यार्थी सहशिक्षा व्यवस्था में रूचि रखते हैं एवं इससे पूर्णतः सहमत हैं। वहीं विद्यालय के शिक्षण कक्ष में बालक और बालिकाओं की बैठक व्यवस्था पृथक-पृथक होने के पक्ष में उत्तरदाताओं की संख्या अधिक है।

ckyd&ckfydkvksa dk vkilh okrkyki ij lgefr dk Lrj

विद्यालय के बाहर बालक और बालिकाओं के आपसी वार्तालाप से सम्बन्धित तथ्य में लगभग 35 प्रतिशत उत्तरदाता बालक-बालिकाओं के आपसी वार्तालाप के पक्ष में नहीं थे। क्योंकि ग्रामीण समाज में आज भी इसे पसंद नही किया जाता। वहीं दूसरी ओर एक दूसरे के साथ संवाद स्थापित करने की आवश्यकता का समर्थन देनेवालों का प्रतिशत भी लगभग इतना ही है। विद्यालय परिसर के बाहर बालक-बालिकाओं के आपस में बात करने के पक्ष एवं विपक्ष में लगभग समान अभिवृत्ति प्राप्त हुई है।

ylfxd lekurk dk lEcU/k esa vfHkofÙk ¼tkfr vuqlkj½

उत्तरदाताओं की लैंगिक समानता के सम्बन्ध में जाति अनुसार अभिवृत्तियों का अध्ययन करने पर स्पष्ट है कि लगभग सभी जाति वर्ग के 67 प्रतिशत उत्तरदाता समान रूप से शाला प्रणाली में बालक-बालिकाओं के मध्य लैंगिक भेदभाव रखते हैं। किन्तु शेष 33 प्रतिशत उत्तरदाताओं में शाला प्रणाली में लैंगिक भेदभाव विद्यमान हैं जिनमें आनुपातिक रूप से अनुसूचित जाति वर्ग के व्यक्तियों की संख्या अधिक है।

ylfxd lekurk dk lEcU/k esa vfHkofÙk ¼'k{kf.kd Lrkj dk vk/kkj ij½

उत्तरदाताओं की लैंगिक समानता के सम्बन्ध में शैक्षणिक स्तर के आधार पर अभिवृत्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि लैंगिक समानता के सम्बन्ध में शिक्षा के स्तर का सार्थक सम्बन्ध विद्यमान है। विशेष रूप से माध्यमिक स्तर तक शिक्षित उत्तरदाताओं में लैंगिक भेदभाव की अभिवृत्ति अधिक विद्यमान है। अतः शिक्षा के स्तर में वृद्धि के साथ-साथ व्यक्तियों की अभिव्यक्ति में लैंगिक समरसता के प्रति सकारात्मक सोच में वृद्धि होती है।

ylfxd lekurk dk lEcU/k esa vfHkofÙk ¼0;olkf;d i"BHkfe dk vuqlkj½

अभिभावक, शिक्षक एवं विद्यार्थियों के लैंगिक समानता के प्रति अभिवृत्ति को उनकी व्यावसायिक पृष्ठभूमि के अनुसार विश्लेषित करें तो लैंगिक समानता के संदर्भ में कृषि कार्य में संलग्न व्यक्तियों को छोड़कर लगभग सभी व्यावसायिक पृष्ठभूमि वाले उत्तरदाता सकारात्मक सोच रखते हैं। क्योंकि कृषि कार्य संलग्न व्यक्ति अधिकांशतः ग्रामीण परिवेश में ही अपना जीवनयापन कर रहे है एवं उनके स्वभाव में लिंगभेद की परम्परागत रूढ़ीवादिता विद्यमान है। शाला प्रणाली में लैंगिक समरसता के संदर्भ में कृषि कार्य की अपेक्षा अन्य व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों की अभिवृत्ति अधिक सकारात्मक है।

उत्तरदाताओं की अभिवृत्तियों का अध्ययन सामाजिक समरसता से सम्बन्धित मुद्दों कें संदर्भ में प्रस्तुत अभिवृत्तियों को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों जैसे सामाजिक जाति, शिक्षा का स्तर एवं व्यावसायिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया गया है।

lkekftd lekurk dh fn'kk esa vfHkofÙk ¼tkfr vuqlkj½

भारतीय समाज में अभिवृत्ति को सर्वाधिक रूप से प्रभावित करने वाला कारक जाति है, क्योंकि भारत में विभिन्न जातीय समूह की अपनी संस्कृति, परम्परागत मान्यताएँ एवं रूढ़िवादिता विद्यमान है जो कि उसकी अभिव्यक्ति को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

सामाजिक समानता के प्रति विभिन्न सामाजिक जाति के उत्तरदाताओं की अभिवृत्ति को विश्लेषित करें तो 67.5 प्रतिशत अर्थात् दो तिहाई उत्तरदाताओं का सामाजिक समानता के प्रति निष्पक्ष रवैया है। वहीं एक तिहाई उत्तरदाताओं में मुख्यतः सामान्य वर्ग के व्यक्तियों की संख्या अधिक है जोकि सामाजिक समानता के संदर्भ में पक्षपाती हैं अर्थात् वे सामाजिक समरसता से सम्बद्ध विभिन्न मुद्दों के प्रति नकारात्मक रवैया रखते हैं एवं आज भी वह जातिगत विभेद की मानसिकता से मुक्त नहीं है जोकि दर्शाता है कि शाला प्रणाली में सामाजिक समरसता के संदर्भ में भेदभाव विद्यमान है।

lkekftd lekurk dh fn'kk e mÙkjnkrk dh vfHkofÙk ¼'k{kf.kd Lrj vuqlkj½

शिक्षा व्यक्ति की सामाजिक समरसता की अभिवृत्ति को एक निश्चिय स्वरूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अतः सामाजिक समरसता के संदर्भ में शिक्षा को आधार मानें तो 67.5 प्रतिशत उत्तरदाता जो सामाजिक समरसता के प्रति सकारात्मक विचारधारा रखते हैं उनमें सभी शिक्षित वर्ग के व्यक्तियों की संख्या लगभग समान है। वहीं सामाजिक समरसता के संदर्भ में नकारात्मक विचारधारा रखने वाले उत्तरदाताओं में हाई स्कूल एवं स्नातक स्तर तक शिक्षा ग्रहण करने वाले उत्तरदाताओं की संख्या आनुपातिक रूप से अधिक है। ये आंकड़े इस बात की ओर संकेत करते है कि शिक्षित व्यक्तियों द्वारा भी जातिगत व्यवस्था को महत्व दिया जाता है।

lkekftd lekurk dh fn'kk e mÙkjnkrk dh vfHkofÙk ¼;kolkf;d i"BHkwfe d vuqlkj½

व्यवसाय भी किसी व्यक्ति की अभिवृत्ति को समान रूप से प्रभावित करता है क्योंकि विभिन्न प्रकार के व्यवसाय में व्यक्ति के मानसिक संरचना भिन्न–भिन्न प्रकार की होती है। कुछ व्यवसाय शारीरिक एवं कुछ मानसिक शक्ति के द्वारा संचालित किये जाते हैं।

सामाजिक समानता की दिशा में उत्तरदाताओं की व्यावसायिक पृष्ठभूमि के आधार पर नौकरीपेशा, व्यापारी वर्ग, कृषक एवं मजदूर वर्ग के उत्तरदाताओं की सामाजिक समरसता के संदर्भ में कृषि कार्य में संलग्न उत्तरदाताओं की सोच अन्य व्यवसायों में संलग्न उत्तरदाताओं की सोच में कम सकारात्मक है। साथ ही मजदूर वर्ग के व्यक्तियों का व्यवहार अन्य की अपेक्षा सामाजिक समानता के प्रति अधिक सकारात्मक है। अतः व्यवसाय में परिवर्तन होना आवश्यक नही है। यद्यपि मजदूरी कार्य में संलग्न उत्तरदाता अन्य व्यवसायरत् उत्तरदाताओं की अपेक्षा सामाजिक समरसता के सम्बन्ध में अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं।

ylfxd ,oa lkekftd lejlrk

mRRkjnkrkvksa dh ylfxd ,oa lkekftd lejlrk dh ifr vfHkofÙk

अभिवृति	पक्षपातपूर्ण	निष्पक्ष	कुल प्रतिशत
लैंगिक समरसता	13 (6.5)	187 (93.5)	200 (100)
सामाजिक समरसता	65 (32.5)	135 (67.5)	200 (100)

उत्तरदाताओं की लैंगिक एवं सामाजिक समरसता के विश्लेषण से स्पष्ट है कि 6.5 प्रतिशत उत्तरदाता लैंगिक समानता के पक्ष में नहीं थे और वहीं 93.5 प्रतिशत उत्तरदाता लैंगिक समरसता के सम्बन्ध में निष्पक्ष थे अर्थात् बहुत कम उत्तरदाता बालक–बालिकाओं से सम्बंधित लैंगिक एवं सामाजिक मुद्दों पर असमानता में विश्वास रखते हैं।

इसी प्रकार लगभग 32.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं की अभिवृत्ति सामाजिक असमानता प्रदर्शित करती है। वहीं 67.5 प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक समरसता के पक्ष में हैं अर्थात वे शाला प्रणाली में सामाजिक समरसता से सम्बंधित मुद्दों के सम्बन्ध में कोई भेदभाव नहीं रखते हैं। विद्यार्थियों, शिक्षकों एवं अभिभावकों द्वारा सामाजिक समरसता के सम्बन्ध में इनकी संख्या 32.5 प्रतिशत से अधिक थी।

निष्कर्षतः विश्लेषण में यह तथ्य स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है कि समाज में सामाजिक असमानता, लैंगिक असमानता की अपेक्षा अधिक प्रभावी है।

izFke mís'; dk fu"d"k

प्रस्तुत अध्ययन के प्रथम शोध उद्देश्य शाला प्रणाली के विभिन्न घटकों में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता की स्थिति ज्ञात करने के संदर्भ में कक्षागत शिक्षण प्रक्रिया, मध्याह्न भोजन योजना एवं विद्यालयीन खेल कूद गतिविधियों का अध्ययन किया गया जिसमें सर्वप्रथम कक्षागत शिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत लैंगिक एवं सामाजिक समरसता के संदर्भ में उभरकर सामने आए बिन्दुओं पर प्रकाश डालने पर स्पष्ट है कि शासकीय विद्यालयों में बालिकाओं का नामांकन बालकों की अपेक्षा अधिक है। इसका प्रमुख कारण ऐसे रहवासी क्षेत्र जहाँ निजी विद्यालय स्थापित है वहां अधिकांशतः बालकों को निजी विद्यालय में अध्ययन हेतु नामांकित किया जाता है जबकि बालिकाओं को शासकीय विद्यालय में भेजा जाता है। आज भी समाज में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं की शिक्षा को कम महत्व दिया जाता है जिस कारण शासकीय विद्यालयों में बालिकाओं की संख्या बालकों से अधिक है। इसी परिपेक्ष्य में सरकार द्वारा बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं एवं अनेक महत्वपूर्ण योजनाएं संचालित की जा रही है। अतः मध्य प्रदेश में विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के क्षेत्र में आज भी बालक–बालिकाओं के मध्य लैंगिक भेदभाव विद्यमान है। विद्यालय में शिक्षण कक्ष की बैठक व्यवस्था के अन्तर्गत माध्यमिक

विद्यालयों के विद्यार्थियों में लैंगिक संवेदनशीलता अधिक है। इसका मुख्य कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी महिलाओं एवं पुरुषों में आपसी सम्वाद की कमी, पर्दा प्रथा आदि सभी प्रथाएँ बाल्यकाल से बच्चों को पारिवारिक परिवेश में मिलती है एवं धीरे–धीरे यह उनके व्यवहार में समाहित हो जाती है जिस कारण लैंगिक संकीर्णता में वृद्धि होती है।

विद्यालयों में मध्याह्न भोजन योजना के क्रियान्वयन में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता का अध्ययन एवं विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि विद्यालयों में नियमित मध्याह्न भोजन ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की उपस्थिति आनुपातिक रूप से लगभग समान है अर्थात् इनकी संख्या में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

शाला में उपस्थित रहने वाले सभी विद्यार्थियों द्वारा भोजन ग्रहण करने वाले विद्यालयों का अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि लगभग एक–तिहाई विद्यालयों में उपस्थित रहने वाले सभी विद्यार्थी मध्याह्न भोजन ग्रहण नहीं करते हैं। सामाजिक वर्गानुसार विद्यार्थियों द्वारा मध्याह्न भोजन ग्रहण नहीं करने वाले विद्यार्थियों में मुख्यतः सामान्य वर्ग के ऐसे विद्यार्थी जोकि आर्थिक रूप से सम्पन्न है, उनमें घर से भोजन लाने की प्रकृति विद्यमान है। इसका मुख्य कारण जिन विद्यालयों में निम्न वर्ग के रसोइया भोजन पकाने हेतु नियुक्त हैं, वहाँ उच्च वर्ग के विद्यार्थी भोजन करना पसंद नही करते हैं जो कि 21वीं सदी के समाज में भी सामाजिक असमानता की ओर इंगित कर रही है।

f}rh; mís'; dk fu"d"kZ

लैंगिक एवं सामाजिक समरसता के संदर्भ में अभिभावकों, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों की अभिवृत्ति का अवलोकन करने पर स्पष्ट है कि शाला प्रणाली में लैंगिक समानता की तुलना में सामाजिक समानता अधिक है।

लगभग सभी उत्तरदाता (अभिभावक, शिक्षक एवं विद्यार्थी) लैंगिक समरसता से सम्बद्ध मुद्दे क्रमशः बालक और बालिकाओं को एक साथ विद्यालय में अध्ययन करने, शैक्षणिक प्रर्दशन में समानता, समान भोजन की आवश्यकता, विद्यालय गतिविधियों में समान रूप से भागीदारी लेने एवं प्रत्येक विद्यालय में महिला शिक्षिका अनिवार्यता के पक्ष में हैं। जबकि विद्यालय परिसर के बाहर बालक–बालिकाओं के आपसी सम्प्रेषण के पक्ष में लगभग समान अभिवृत्ति है। इससे स्पष्ट है कि शाला प्रणली में लैंगिक विभेद आशिंक रूप में विद्यमान है।

शैक्षणिक स्तर को आधार मानकर लैंगिक समानता के सम्बन्ध में शिक्षा का लैंगिक एवं सामाजिक समरसता से सार्थक सम्बन्ध विद्यमान है अर्थात् शिक्षा में वृद्धि के साथ–साथ लैंगिक समरसता एवं समानता के संदर्भ में सकारात्मक विचारधारा में भी वृद्धि होती है।

द्वितीय उद्देश्य में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शाला प्रणाली में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता के सम्बन्ध कें शिक्षकों, अभिभावकों एवं विद्यार्थियों की अभिवृत्तियों में सामाजिक की अपेक्षा लैंगिक समरसत पायी गयी। परन्तु समाज में लैंगिक एवं सामाजिक समरसता कों पूर्णतः स्वीकार नहीं किया गया है। जिसके लिए शासन एवं समुदाय को ओर भी प्रयास करने की आवश्यकता है जिससे भारत में कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को पूर्णस्वरूप में लाया जा सके।

l|>ko

- अभिभावकों में विशेष रूप से पुरुष अभिभावक को बालिका शिक्षा के लाभ एवं बाल विवाह से होने वाले दुष्प्रभावों के प्रति जागरूक बनाए जाने की अत्यन्त आवश्यकता है।
- विद्यालयीन वातावरण में लैंगिक समानता को ढालने हेतु बुनियादी आधारभूत आवश्यकताओं जैसे पृथक–पृथक शौचालय, बालिका विश्राम कक्ष की व्यवस्था माध्यमिक विद्यालयों में सुनिश्चित की जाये।
- अभिभावकों, समुदाय के सदस्यों, शिक्षकों, बालक–बालिकाओं को लैंगिक समानता के मुद्दों पर संवेदनशील बनाया जाये।
- शिक्षकों के प्रशिक्षणों के दौरान लैंगिक उत्तरदायी कार्य योजना को विषय के रूप में शामिल किया जाये।
- बालिकाओं में सशक्तिकरण कार्यक्रमों के माध्यम से उनमें आत्मविश्वास, बोलने की कला, निर्णय लेने की स्वतंत्रता आदि विषयों पर प्रयास किये जावें।
- कक्षा प्रबन्धन एवं विद्यार्थियों में नेतृत्व कला के विकास हेतु प्रति सप्ताह बारी–बारी से विद्यार्थियों को कक्षा प्रतिनिधियों के रूप में नियुक्त किया जाए एवं कक्षा प्रतिनिधि के नेतृत्व में समय–समय पर कक्षा प्रबन्धन तथा शैक्षणिक एवं गैर शैक्षणिक गतिविधियों पर बैठकों का आयोजन किया जाये।
- लैंगिक समानता के सम्बन्ध में विद्यालय प्रबंधन समिति के सदस्यों को प्रशिक्षण दिया जाये।
- विद्यार्थियों में सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने हेतु समय–समय पर खेल गतिविधियाँ, सांस्कृतिक कार्यक्रम खोजयात्रा एवं प्रदर्शनियों का प्रत्येक विद्यालयों में आयोजन किया जाए एवं इन कार्यक्रमों में विद्यार्थियों की भागीदारी सुनिश्यित की जाये।

InHk

1. अलेक्जेन्डर, जे. एम. (2003) 'इनइक्वालिटी, पॉवर्टी एण्ड अफरमेटिव एक्शनः कान्टेम्परेरी ट्रेन्डस इन इंडिया', पेपर प्रिप्रेयर्ड फॉर द वायडर कॉन्फ्रेन्स, 30–31 मई 2003, यूनाईटेड नेशन यूनिवर्सिटी हेलसिंन्की, फिनलेन्ड।
2. भोंसले एस, (2009), 'एज्यूकेशन फॉर एम्पावरमेन्ट एन्ड डेवलपमेन्ट ऑफ वीमेन', *यूनिवर्सिटी न्यूज*, (47) 2 जनवरी 12–18 2009।
3. द राइट ऑफ चिल्ड्रन टू फ्री एण्ड कम्पल्सरी एज्युकेशन एक्ट, 2009
4. फ्रेशर ई (2010) *द दलित्स ऑफ इंडिया : एज्यूकेशन एन्ड डेवलपमेन्ट*।
5. *इंडिया टूडे* (2006) द राइजिंग ऑफ मध्यप्रदेश, स्पेशल आर्टिकल, 24 जुलाई 2006।
6. मेहरा, वी, (2009) 'जेन्डर डिस्पेरिटी इन एज्यूकेशन', *यूनिवर्सिटी न्यूज* 47 (20) मई 18–24 2009।

साम्प्रदायिक हिंसा के बदलते हुए चरित्र में एक नया अध्याय : गोपालगढ़ (भरतपुर), राजस्थान (13-14 सितंबर 2011) की घटना

शिम्पी पाण्डेय

भारतीय संदर्भ में साम्प्रदायिक हिंसा एक ऐसा विषय है जो न केवल वर्तमान बल्कि ब्रिटिश शासन से पूर्व से ही सदैव एक महत्त्वपूर्ण विषय बना हुआ है। भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता की विचारधारा तथा साम्प्रदायिक हिंसा का इतिहास बहुत पुराना है। यदि साम्प्रदायिकता व साम्प्रदायिक हिंसा के अर्थ को परिभाषित किया जाये तो यह बहुत ही व्यापक विषय के रूप में उभरकर सामने आता है। एक ओर भारत विकास की दिशा में अग्रसर है वहीं राजनीतिक-सामाजिक स्तर पर भी विकास संबंधी कार्य किए जा रहे हैं। वहीं साम्प्रदायिक हिंसा एक ऐसी समस्या है जिससे भारत के विकास की गति अवरुद्ध हो रही है। वर्ष 2011 की गोपालगढ़ की घटना वर्तमान साम्प्रदायिक हिंसा की स्थिति को स्पष्ट करती है। जिसमें भूमि-विवाद विकराल रूप में साम्प्रदायिक हिंसा में रूपांतरित हुआ, जिसके अंतर्गत पुलिस संगठन, व शासन की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। गोपालगढ़ की हिंसा की घटना से पूर्व साम्प्रदायिक हिंसा के ऐतिहासिक पक्ष की व्याख्या की जानी आवश्यक है।

lkEiznkf;drk o lkEiznkf;d fgalk

साम्प्रदायिकता एक विचारधारा है तथा राजनीति इसी विचारधारा के इर्द–गिर्द घूमती है।[1] साम्प्रदायिकता इतिहास से जुड़ी हुई है तथा यह धर्म निरपेक्षता के विरुद्ध है जो हाल के वर्षों में संशय के दायरे में आती है।[2] साम्प्रदायिकता राष्ट्रवाद की विरोधी नहीं, बल्कि यह पूर्ण रूप से सेकुलरवाद का विरोध करती है।[3]

भारतीय जगत में साम्प्रदायिकता की विचारधारा अति विशिष्ट हैं यह विचारधारा भारतीय राजनीति में तीव्र गति से बढ़ती ही जा रही है तथा अंतर-सामुदायिक संबंध

भी नाटकीय रूप से अधिक चिंताजनक हो रहे हैं। बिपन चन्द्र ने भारत में साम्प्रदायिकता को आधुनिक राजनीतिक विचारधारा के रूप में परिभाषित किया है जिसमें केवल औपनिवेशिक बल्कि धार्मिक समुदायों द्वारा संकुचित धर्मनिरपेक्षीय हितों को पूरा करने के लिए इसका विस्तार किया गया है। परम्परागत रूप से भारत में साम्प्रदायिकता की विचारधारा को हिन्दू-मुस्लिम विवाद तक संकुचित रूप से व्याख्यायित किया जाता है। किन्तु 1980 के बाद से ही इसके स्वरूप में परिवर्तन आया तथा सन् 1990 के बाद इनकी व्यापकता हुई। समय-समय पर हिन्दू-ईसाई विवाद भी उभरकर सामने आने लगे। साम्प्रदायिकता के वर्तमान स्वरूप का एक मुख्य लक्षण यह है कि इसके अंतर्गत आम जन की भूमिका बढ़ती जा रही है तथा साम्प्रदायिक हिंसक घटनाएँ भी बढ़ने लगी हैं। साम्प्रदायिक हिंसा का ज्वलंत उदाहरण बाबरी मस्जिद-विध्वंस है जिसमें जन-भागीदारी प्रत्यक्ष रूप से बहुत अधिक पाई गई है तथा अब दलित वर्ग व महिलाएँ भी इस विचारधारा से अछूते नहीं हैं।[4] भारतीय परिवेश में साम्प्रदायिकता के विषय में यह कहा जाता है कि यह आधुनिक परिघटना है।[5] इस प्रकार एक विचारधारा के रूप में साम्प्रदायिकता की जड़े भारत में बहुत गहराई से व्याप्त है। पश्चिमी संदर्भ में साम्प्रदायिकता का अर्थ है समुदाय आधारित कार्रवाई अर्थात् पश्चिम में इसका प्रयोग सकरात्मक अर्थों में किया जाता है, लेकिन दक्षिण एशियाई संदर्भ में यह समुदायों के मध्य होड़ और टकराव को प्रकट करता है। ये साम्प्रदायिक द्वन्द्व यदा कदा हिंसक रूप भी ले सकते हैं।[6] अतः साम्प्रदायिकता के सभी पहलुओं का अध्ययन इसके विस्तृत ऐतिहासिक व व्यावहारिक पक्ष को भी स्पष्ट रूप से प्रकट करता है।

साम्प्रदायिक हिंसा व साम्प्रदायिकता में अंतर होता है। साम्प्रदायिक हिंसा में वैचारिक संघर्ष का अर्थ बहुत ही सीमित होता है, क्योंकि इनमें कृत्यों की बहुलता होती है लेकिन साम्प्रदायिक विचारधारा में एक लम्बे समय तक चलने वाले राजनैतिक व वैचारिक संघर्ष की आवश्यकता होती है।[7] साम्प्रदायिक हिंसा को साधारण शब्दों में दो या दो से अधिक सम्प्रदायों के मध्य गतिरोध के रूप में देखा जा सकता है। ये गतिरोध जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र किसी भी आधार पर हो सकते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा एक ऐसा जटिल विषय है जिसे साधारण शब्दों में वर्णित किया जाना कठिन है। वर्तमान समय में साम्प्रदायिक हिंसा की जो जटिल स्थिति उत्पन्न होती है वह राजनीतिक दलों, नेताओं, प्रशासन, पुलिस, विभिन्न दलों की भूमिका पर प्रश्न-चिन्ह लगाती है। यह प्रश्न अथवा संदेह इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं में अब मात्र दो या अधिक समुदायों का तनाव ही नहीं रह गया। बल्कि अब यह बहुआयामी हो गया है, यह हिंसक घटनाएँ न केवल दो समुदायों को ही प्रभावित करती हैं, बल्कि कई बार यह वोट बैंक की राजनीति का स्वरूप भी उजागर करती हैं।

भारतीय समाज में साम्प्रदायिक हिंसा की मात्रा व स्तर भारतीय सामाजिक विकास की प्रगति के लक्ष्य को अवरुद्ध करती है जो कि भारतीय संविधान में वर्णित है। भारत में हिंसा के क्षेत्र व संदर्भ में विभिन्नता सामान्यता देखी गयी है। यहाँ हिंसा के कारणों में विकासात्मक, धार्मिक, जातीय, वर्गीय, भाषायी, नृजातीय, क्षेत्रीय व अन्य तत्व प्रमुख भूमिका का निर्वहन करते हैं।[8] पॉल ब्रास द्वारा साम्प्रदायिक हिंसा के विषय में यह कहा गया है कि बीसवीं शताब्दी में भारत में हिन्दू-मुस्लिम के मध्य हुए दंगे लहर के रूप में ही सामने आए। इसका आरंभ 1920 में गाँधी के असहयोग आंदोलन के दौरान भी देखा गया। 1947 के विभाजन के समय साम्प्रदायिक हिंसा अधिक प्रभावी हो गई तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् बाबरी मस्जिद का विध्वंस एक स्पष्ट उदाहरण है जिसने हिन्दुओं में जन लामबंदी ने आगे बढ़ाया। हिंसा का स्वरूप जो नृजातीय, साम्प्रदायिक और जातीय होता है अधिकतर विशेषज्ञों द्वारा संचालित होता है। इसमें अवसरों की स्थिति की अहम होती है। अर्थात् ये उन्हीं अवसरों पर होते हैं जिनमें लाभकारी स्थिति हो तथा इसमें भाग लेने वो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से लाभ प्राप्त करे।[9]

साम्प्रदायिक हिंसा के अंतर्गत बहुआयामी लक्षण पाये जाते हैं जो इसके स्वरूप को अधिक विध्वंसक बना देते हैं। ब्रिटिश काल के दौरान ही इसकी जड़ें गहरी होती गईं जो वर्तमान साम्प्रदायिक हिंसा को आधार प्रदान करती हैं। यदि 1990 से पूर्व व 1990 के बाद की साम्प्रदायिक हिंसक घटनाओं को देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि हिंसा का स्वरूप अधिक जटिल हो रहा है तथा साथ ही इसे बढ़ावा देने वाले तत्वों में अधिक तेज़ी आई है।

ब्रास ने अपने लेख में भारत होने वाली साम्प्रदायिक हिंसक घटनाओं के लिए 'संस्थागत दंगा प्रणाली' शब्द का प्रयोग किया। इसके अंतर्गत उन्होंने कहा कि भारत में राजनीति का अपराधीकरण बढ़ता गया, अंतर्विषयी हिंसा बढ़ने लगी व अपराधी, राजनेताओं व पुलिस के मध्य गठजोड़ की स्थिति को अधिक बना दिया। हिंसा के प्रत्येक स्तर में वृद्धि देखी गई व भारतीय नेतृत्वकारी दल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का संगठनात्मक पतन देखा गया, राजनीतिक नेतृत्व की भूमिका में भी परिवर्तन आने लगा। राजनीतिक विवाद, देश की एकता में खतरा, धर्म निरपेक्षीय विचारधारा के व्यावहारिक स्वरूप में ह्रास को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।[10]

II

lkEiznkf;d fgalk lac/kh izeq[k fookn

¼v;k/;k dh ?kVuk vkj xk/kjk nx½

भारतीय साम्प्रदायिक हिंसा के इतिहास में अयोध्या विवाद और गोधरा दंगे सर्वाधिक प्रमुख है। भारतीय राजनीति में 1980 के बाद का दशक न केवल

राजनीतिक रूप से परिवर्तन का काल था, बल्कि अब यह साम्प्रदायिक हिंसा के क्षेत्र में भी परिवर्तन के आरंभ का काल रहा। अयोध्या विवाद से पूर्व भी कई साम्प्रदायिक दंगे हुए, किंतु यह विवाद इतिहास में एक नए युग का आगाज़ था। अयोध्या विवाद को कई अन्य शीर्षकों से भी सम्बोधित किया जाता है, जैसे रामजन्म भूमि विवाद या बाबरी मस्जिद-विध्वंस, इसकी पृष्ठभूमि हालांकि 1990 के पूर्व ही निर्धारित हो गई थी। रामजन्म भूमि-बाबरी मस्जिद विवाद ने भारतीय राजनीति का ऐसा साम्प्रदायिकरण किया है जैसा कि आज (विभाजन के उपरांत से अब) तक, अन्य किसी विवाद ने नहीं किया।[11]

30 अक्टूबर, 1990 को संघ परिवार या विश्व हिन्दू परिषद्, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद्, बजरंग दल व भारतीय जनता पार्टी के कई सदस्यों व अन्य सहयोगियों द्वारा रामजन्म भूमि आंदोलन की शुरुआत की गई जिसका मुख्य लक्ष्य राम के वास्तविक जन्मस्थान को मुक्त कराना था। ये आंदोलनकारी यह दावा करते थे कि जिस स्थान पर बाबरी मस्जिद है वह प्राचीन काल में महाराजा विक्रमादित्य द्वारा बनाया गया राम मंदिर था, जिसे सन् 1528 में मुगल शासक द्वारा ध्वस्त कर दिया गया था। इसीलिए बाबरी मस्जिद की संरचना को ध्वस्त करके उसी स्थान पर राममंदिर की स्थापना की जाए जिससे हिन्दुओं पर हुए अन्याय का बदला लिया जा सके।[12] अयोध्या विवाद में न्याय की प्राप्ति, बदला लेने संबंधी भावनाओं का प्रबल समावेश आदि। अयोध्या विवाद में राजनीतिक दलों की प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से भागीदारी थी तथा इसने समाज को अव्यवस्थित कर दिया। बाबरी मस्जिद विध्वंस के उपरांत साम्प्रदायिक हिंसा का स्वरूप, उसकी प्रवृत्ति व उसका चरित्र बदलने लगे। विभिन्न स्थानों पर भीषण दंगे, नरसंहार, संपत्ति की क्षति, महिलाओं का शोषण आदि हुआ। अब साम्प्रदायिक हिंसा अधिक सक्रिय व संवेदनशील हो गई। साम्प्रदायिक हिंसा अब मात्र दो समुदायों तक ही सीमित नहीं रह गयी, बल्कि अब इसमें राजनीति व अन्य तत्व प्रभावशाली होने लगे।

इसी दिशा में यदि गोधरा दंगों का अध्ययन किया जाए तो यह स्पष्ट हो जायेगा कि साम्प्रदायिक हिंसा का स्वरूप सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तत्व के साथ ही हिंसा में योजना, तैयारी, क्रियान्वयन आदि तत्व भी महत्वपूर्ण हो गए जो कहीं न कहीं साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाओं को आधार प्रदान कर रहे थे। गोधरा कांड या गुजरात दंगों (2002) की साम्प्रदायिक हिंसा को एक विनाशकारी घटना के रूप में याद किया जाएगा। 27 फरवरी, 2002 को गुजरात में यह घटना हुई इसमें 57 हिन्दू, जिनमें 25 महिलाएँ व 14 बच्चे भी थे, साबरमती एक्सप्रेस में जिंदा जल गए। यह न केवल संगठित व शस्त्रकारी घटना थी बल्कि नियोजित होने के साथ ही राज्य द्वारा समर्थित भी थी। गुजरात दंगों ने ग्रामीण व शहरी दोनों ही क्षेत्रों को प्रभावित किया।[13]

इस घटना के उपरांत पूरे गुजरात में व्यापक स्तर पर हत्याएँ, लूट, नर-संहार, आगजनी, बलात्कार जैसी घटनाएँ हुईं। गुजरात के विभिन्न नगरों में मुसलमानों के साथ लूटपाट, नरसंहार, दुकानों को आग लगाए जाने जैसी कई घटनाएँ प्रकाश में आईं। अहमदाबाद के व्यापारिक क्षेत्र की स्थिति अत्यधिक भयंकर हो गई। गाँधी नगर में वक्फ बोर्ड और अल्पसंख्यक विकास बोर्ड को भी जला दिया गया।[14] उपरोक्त गुजरात कांड की स्थिति से यह प्रतीत होता है कि इस घटना ने पूरे गुजरात को शिथिल कर दिया तथा मुस्लिम समुदाय के साथ क्रूर व्यवहार किया गया। युवा, बच्चे, बूढ़े, महिलाएँ सभी पर अत्याचार किया गया।[15]

इस प्रकार साम्प्रदायिक हिंसा के इतिहास में ये दोनों घटनाएँ प्रमुख स्थान रखती हैं। हालांकि इससे पूर्व की कई घटनाएँ घटित हुई हैं, किन्तु ये घटनाएं साम्प्रदायिक हिंसा के परिवर्तित स्वरूप को उजागर करती हैं। इन घटनाओं पर नियंत्रण हेतु समय-समय पर प्रयास किए गए, जाँच समितियाँ भी बनाई गई; किन्तु वास्तविकता यह है कि साम्प्रदायिक हिंसा पर नियंत्रण मुश्किल से पाया जा सकता है। गुजरात हिंसा के उपरांत इन घटनाओं के स्वरूप और आकार में तो परिवर्तन आया है न कि इनको समाप्त किया जा सका। बाबरी मस्जिद विवाद और गुजरात दंगों में अधिकतर मुस्लिम समुदाय को हानि उठानी पड़ी है, किन्तु यह भी सत्य है कि साम्प्रदायिक हिंसा में प्रत्येक वर्ग प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हानि की स्थिति में ही होता है। साम्प्रदायिक हिंसा का यदि वर्तमान स्वरूप देखा जाए तो स्पष्ट है कि अब साम्प्रदायिक हिंसा किसी भी वर्ग, किसी भी विषय या तनाव के कारण उत्पन्न हो जाती है। अब यह विषय बहुआयामी हो गया है तथा जटिलतम रूप में विद्यमान है।

III

lkEiznkf;d fgalk dk cnyrk gqvk pfj= vkj xkikyx< fookn

राजस्थान के गोपालगढ़ की घटना (13–14 सितम्बर, 2011) एक महत्वपूर्ण घटना है जिसमें एक भूमि–विवाद साम्प्रदायिक घटना में परिवर्तित हो गया। हालांकि यह घटना अभी अपने प्रारंभिक जाँच की स्थिति में है, किन्तु विभिन्न उपलब्ध स्रोतों से इस विवाद के विभिन्न पक्ष उभरकर सामने आए हैं। यह घटना इस कारण भी महतवपूर्ण है क्योंकि इसमें गुर्जर समुदाय व मेव (मुस्लिम) समुदाय के बीच भूमि विवाद विकराल रूप लेता है, जिसमें पुलिस, प्रशासन, संगठन, विभिन्न दलों की भूमिका इसे अधिक अहम बना देती हैं।

eo oxtj lenk; dh lkekftd-vkfFkd i"BHkfe

मेव (मुसलमान) समुदाय के इतिहास से यह स्पष्ट होता है कि यह समुदाय सामान्य मुसलमान समुदाय से अलग है तथा इसके कई लक्षण हिन्दू समुदाय के

समान है। राजपूत, मीना व गुर्जर समुदाय को ही मेव समुदाय के वंश-स्रोत के रूप में जाना जाता है जो धर्म रूपांतरण के पश्चात (इस्लाम) में परिवर्तित हो गए। अनुमानतः इनकी संख्या मेवात में अधिक है साथ ही यह कई अन्य राज्यों में भी पाए जाते हैं। ये मुख्यतः निम्न व मध्यम वर्गीय किसान हैं, जिनका विकास नहीं हो पाया है। ये गरीब है, व शैक्षिक दृष्टि से भी पिछड़े हुए हैं। यह भारत में मुसलमानों का वह समूह है जो उत्तराधिकार के कानून में मुस्लिम निजी कानूनों का पालन करने की अपेक्षा परम्परागत हिन्दू कानूनों का पालन करते हैं।[16] मेवात राज्य में ही मेव समुदाय की संख्या अधिक है साथ ही हरियाणा गुड़गाँव व राजस्थान के अलवर, और भरतपुर में भी इनकी जनसंख्या पाई जाती है।[17]

मेव समुदाय वहीं आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक दृष्टि से अधिक संपन्नता की स्थिति में नहीं है। हालांकि ये अपनी स्थिति को मजबूत करने की दिशा में अग्रसर हैं। वहीं गुर्जर समुदाय इनकी तुलना में अधिक सुदृढ़ है। गुर्जर समुदाय को 'अन्य पिछड़ा वर्ग' का दर्जा भी प्राप्त है, किन्तु ये अनुसूचित जाति का दर्जा प्राप्त करने की मांग कर रहे हैं। राजनीति दलों के द्वारा भी इनकी मांग को वोट बैंक की राजनीति के तहत समय-समय पर प्रज्ज्वलित किया जाता है।[18] गुर्जर व मेव समुदाय की सामाजिक, आर्थिक पृष्ठभूमि बहुत ही असमान तथा भिन्नताओं से परिपूर्ण हैं ऐसे में गोपालगढ़ की घटना महत्वपूर्ण बन जाती है।

fookn dh vk/kkjf'kyk

गोपालगढ़ की साम्प्रदायिक हिंसा की घटना ने स्पष्ट किया है कि अब हिंसा का स्वरूप बहुस्तरीय हो गया है तथा अब यह मात्र शक्तिशाली व कमजोर वर्ग के मध्य तनाव का कारण ही नहीं रह गया बल्कि अब अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्ग भी इस प्रकार की घटनाओं से अछूते नहीं रह गए हैं। अब ये वर्ग भी साम्प्रदायिक हिंसा की गतिविधियों का अंग बन गए हैं जिनका कारण कहीं न कहीं सामाजिक संरचना ही है तथा राजनीतिक, प्रशासनिक परिवेश भी इनके तनाव को जटिल करने का माध्यम बन गया है। प्रभुत्वशाली वर्ग स्वयं के विकास में व संपन्नता सिद्ध करने के लिए ऐसी घटनाओं का निर्वहन करते हैं तो बहुत हानिकारक है। गोपालगढ़ की हिंसा में भी कहीं न कहीं यही विवाद प्रमुख है।

गोपालगढ़ विवाद की पृष्ठभूमि 13 सितंबर, 2011 को ही तैयार हो गई थी जिसके अंतर्गत गुर्जरों को 12 बीघा जमीन का भाग खाली करने का आदेश दिया गया था। यह भूमि का वह भाग था जिस पर गुर्जरों ने अतिक्रमण कर लिया था। जबकि यह भूमि मेव समुदाय को दी गई थी। गोपालगढ़ के एक स्थानीय निवासी नूर मोहम्मद के अनुसार वर्ष 2000 में 12 बीघा जमीन मस्जिद, ईदगाह व कब्रिस्तान का निर्माण करने के लिए खरीदी गई थी। किन्तु गुर्जर द्वारा इस भूमि पर अतिक्रमण किया गया व इस पर आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया गया। इस

अतिक्रमण का मेव समुदाय द्वारा विरोध किया गया व केस दर्ज कराया गया। 13 सितंबर, 2011 को पहाड़ी जिला कोर्ट के तहसीलदार के द्वारा भूमि राजस्व ऐक्ट के भाग 90 के आधार पर गुर्जरों को ज़मीन खाली करने का आदेश दिया गया। इस आदेश के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप गुर्जर समुदाय के 10–15 क्रोधित व्यक्तियों द्वारा मस्जिद के इमाम को मारा–पीटा गया। इस मारपीट के बाद मेव समुदाय में भी क्रोधाग्नि भड़क गई व तनाव बढ़ गया। इसके पश्चात् विवाद ने हिंसक रूप ले लिया तथा दोनों ही समुदायों द्वारा हवा में गोलियाँ दागी गई व विवाद विकराल हुआ। विवाद को सुलझाने हेतु पुलिस प्रशासन से मदद की बात उठाई गई, किन्तु बजरंग दल व विश्व हिन्दू परिषद् के सदस्यों द्वारा कुछ अफवाहों के फैलाए जाने के कारण स्थिति भयावह हो गई। इसमें देखा गया कि मस्जिद पर आक्रमण हुआ, मस्जिद को घेर लिया गया। यहाँ तक कि मेव मुसलमानों द्वारा यह भी कहा गया कि पुलिस प्रशासन तथा जिलाधीश द्वारा गुर्जरों को गोलियाँ चलाने की छूट भी दी गई। व्यक्तियों को जलाया गया, मृतः शरीरों को कुएँ में फेंका गया। मेव समुदाय द्वारा यह आरोप भी लगाया गया कि पुलिस व गुर्जर के गठजोड़ ने भयंकर सामूहिक हत्याकांड को जन्म दिया। पुलिस द्वारा आरोपों का खण्डन किया गया तथा गोलियाँ चलाने की बात को यह कहकर दबाने का प्रयास किया कि वह तानव को कम करने के लिए था। व्यापक जन-दबाव के कारण जिलाधीश, एस.पी. और एस.एच.ओ. का तबादला कर दिया गया। उक्त घटना ने गोपालगढ़ में साम्प्रदायिक हिंसा के के लिए अपनी राहें प्रशस्त कर ली।[19]

उपरोक्त घटना यह स्पष्ट करती है कि साम्प्रदायिक हिंसा में एक मामूली भूमि तथा विवाद विध्वंसक रूप लेता है तथा साथ ही यह कहना उचित है कि विभिन्न गुटों के मध्य गठजोड़ पुलिस, प्रशासन की संदेहजनक भूमिका अधिक विनाशकारी बना देती है।

lkEiznkf;d fgalk dh lanHkZ esa xkikyx< fookn

गोपालगढ़ विवाद में हिंसा की पृष्ठभूमि में भूमि-विवाद प्रमुख रहा तथा कई बहुस्तरीय कारकों की भूमिका ने ही इसे अधिक तनावपूर्ण बना दिया। इस घटना की जाँच-पड़ताल हेतु विभिन्न समितियाँ जैसे पी.यू.सी.एल., अनहद, जमात-ए-इस्लाम-ए-हिन्द आदि ने अपनी–अपनी रिपोर्ट व लेख प्रस्तुत किए जिनके आधार पर इस घटना को साम्प्रदायिक हिंसा के क्षेत्र एक अहम घटना माना गया।

पी.यू.सी.एल. (पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टी) की प्रारंभिक रिपोर्ट में राजस्थान के भरतपुर में हुई पुलिस फायरिंग से संबंधित रिपोर्ट प्रकाश में आई। इस टीम को स्वतंत्र व निष्पक्ष जाँच करने हेतु ही गठित किया गया जिनमें शैल मायाराम, कविता श्रीवास्तव, प्रो. योगेन्द्र यादव, मि. सवाई सिंह आदि सदस्य थे। इस टीम द्वारा 16 और 17 सितंबर, 2011 को प्रभावित क्षेत्रों का दौरा किया गया व वहाँ के लोगों

से बात की गई।[20] इस घटना में अधिकांशतः लोग एक ही समुदाय के मारे भी गए व घायल भी हुए। यह अत्यधिक क्रूरतम भी पुलिस प्रशासन की गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार के कारण ही हुआ।

यदि साधारण रूप से देखा जाए तो यह स्पष्ट है कि राजस्थान के भरतपुर जिले से 80 कि.मी. की दूरी पर स्थित गोपालगढ़ में वहाँ की जनता द्वारा इस सदी का सबसे क्रूरतम नरसंहार देखा गया। इसमें मेव समुदाय के नौ लोग मारे गए वहीं घायलों में 26 मेव मुसलमान थे व चार गुर्जर थे।[21] गोपालगढ़ की घटना की एक अन्य जाँच समिति जे.आई.एच. की रिपोर्ट से यह बात सामने आई कि इस घटना में सभी मृतक मेव समुदाय के ही थे। यह बात भी उजागर हुई कि वक्फ बोर्ड के द्वारा मुसलमानों को ही कब्रिस्तान के लिए भूमि कानूनी रूप से दी गई थी। इस भूमि के भाग पर गुर्जर समुदाय द्वारा अतिक्रमण किया गया जिसके विरोध स्वरूप गोपालगढ़ की घटना घटित हुई। यह तथ्य भी उभरकर सामने आया कि आर.एस.एस. और बजरंग दल के लगभग 40 युवाओं द्वारा जिलाधीश ओर एस.पी., पर खुली फायरिंग के आदेश के लिए दबाव डाला गया। इसी के चलते भयंकर नरसंहार अपने चरम पर पहुँच गया व स्थिति नियंत्रण से बाहर हो गई जिसके तहत मेव समुदाय पर अत्याचार हुआ। साक्ष्य व प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार भी पुलिस व प्रशासन की भूमिका संदेहजनक थी।[22]

इस घटना में मानव अधिकारों का भी व्यापक रूप से हनन देखा गया जिसके अंतर्गत कुरान के पृष्ठों का फाड़ दिया जाना, खून से सने कपड़े, टूटा सामान इत्यादि सभी दयनीय अवस्था में थीं। इसके साथ ही कई ऐसे तथ्य भी प्रकाश में आए हैं जिससे यह प्रदर्शित हुआ कि लोगों के शरीर को जलाने से पूर्व उन पर पेट्रोल डाल दिया गया था, इस कारण मृत शरीरों की पहचान नहीं हो सकी।[23] उपरोक्त सभी रिपोर्ट का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि क्रूरतम घटनाक्रम को अंजाम दिया गया है पुलिस व प्रशासन की भूमिका भी संदेहजनक रही है, साथ ही राजनीतिक भूमिका भी उजागर हुई जो यह स्पष्ट करता है कि विवाद को साम्प्रदायिक बनाए जाने में उनकी भूमिका अहम रही है। यदि इसमें गुर्जर समुदाय के अतिक्रमण के विरूद्ध ठोस कदम उठाए जाते अथवा पुलिस प्रशासन की भूमिका सही प्रकार से होती तो अवश्य ही यह भयंकर हिंसा नहीं होती। मेव द्वारा अतिक्रमण का विरोध किया जाना उचित रहा है कि बाकी अन्य सभी वर्गों की भूमिका निसंदेह चिंताजनक है।

ऐसे में गोपालगढ़ की घटना साम्प्रदायिक हिंसा के इतिहास में एक नये अध्याय के रूप में जुड़ गया है। यह घटना यह स्पष्ट करती है कि विवाद को अधिक जटिल बाह्य तत्वों द्वारा ही किया जाता है। यह समाज में फैली सामाजिक, राजनीतिक विषमता के कारण ही अत्यधिक बलवती होती है। हालांकि प्रयास किए जाते हैं कि

ऐसी घटनाओं पर नियंत्रण पाया जाए तथा इस प्रकार की घटनाएँ अस्तित्व में न रहें। किन्तु वास्तविकता यह है कि इन घटनाओं पर नियंत्रण हेतु ठोस व प्रभावी कदम नहीं उठाए जाते। यह ज्ञात है कि साम्प्रदायिक घटनाएँ निरंतर होती रही हैं किन्तु फिर भी ठोस कदम नज़र नही आए। हाल ही में हुई मुज़फ्फरनगर की घटना भारतीय साम्प्रदायिक हिंसा के वर्तमान स्वरूप को ही प्रकट करती है कि हिंसा का स्वरूप बहुस्तरीय व जटिल हो रहा है, किन्तु निवारण नहीं हो सका है। गोपालगढ़ की घटना एक नए प्रकार की साम्प्रदायिक हिंसा का चित्र प्रस्तुत करती है जहाँ भूमि-विवाद, पुलिस प्रशासन, जातीय समीकरण की एक नई रूपरेखा उजागर होती है।

अंततः यह कहना उचित है कि समय में परिवर्तन के साथ ही साम्प्रदायिक हिंसा का चरित्र अधिक जटिल व बहुस्तरीय हो गया है। गोपालगढ़ की घटना वास्तव में साम्प्रदायिक हिंसा में एक नया अध्याय है।

I nHk

1. के.एन. पानीकर (1991), *कम्यूनलिज़्म इन इण्डियाः हिस्ट्री, पॉलिटिक्स एण्ड कलचर,* मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 132।
2. पी.के. दत्ता (1999), *कार्विंग ब्लॉक्सः कम्यूनल आइडालिजी इन अर्ली टवेंटीएथ सेंचुरी बंगाल,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 1।
3. अचिन वनायक (1997), *कम्यूनलिज़्म कंटेस्टेडः रीलिजन, मॉडर्निटी एण्ड सेकुलराइजेशन,* विस्तार पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 7।
4. राखाहरी चटर्जी (सम्पा.) (1994), *रिलीजन, पॉलिटिक्स एण्ड कम्युनलिज्मः द साउथ एशियन एक्सपीरियन्स,* साउथ एशियन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 21–22।
5. असगर अली इंजीनियर (1995), *कम्युनिलिज्म इन इण्डियाः ए हिस्टोरिकल एंड इम्पीरीकल स्टडी,* विकास पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृष्ठ 51।
6. अभय कुमार दुबे (2003), *'राजनीति की किताबः रजनी का कृतित्व',* वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 240।
7. के.एन. पानीकर (1991), *कम्युनलिज़्म इन इण्डियाः हिस्ट्री, पॉलिटिक्स एण्ड कल्चर,* मनोहर पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 133।
8. रिपोर्टः एस.के. सुब्रमणियम (2011), 'वायलैंस इन कन्टेम्पोरेरी इण्डिया ट्रेंडस्, कॉज़ेज, इन्टरवैन्शनस' इन मनोरंजन मोहन्ती (सम्पा.), *इण्डियाः सोशल डेवलपमेंट रिपोर्ट 2010। द लैंड कवेश्चन एण्ड मार्जिनलाइज़ कॉउंसिल फोर सोशल डेवलपमेंट,* ऑक्सफ़र्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 147।
9. पॉल आर. ब्रास (1996), *राईट्स एण्ड प्रोग्रोम्स,* मैकमिलन, ग्रेट ब्रिटेन, पृष्ठ 6–12।
10. पॉल आर. ब्रास (1998), *थेफ्ट ऑफ एन आयडलः टेक्सट एण्ड कन्टेक्स्ट इन द रिप्रेज़ेन्टेशन ऑफ कलैक्टीव वायलैंस,* सीगल बुक्स, कोलकता, पृष्ठ 32–33।

11. असगर अली इंजीनियर (1991), रिमेकिंग इण्डियन मुस्लिम आइडेंटिटी', *इकोनोमिक पॉलिटिकल वीकली,* अंक XXVII नं. 16, अप्रैल 20, 1991, पृष्ठ 1038।

12. आशीष नंदी (सम्पा.), (1997), *क्रिएटिंग ए नेशनैलिटीः द राम जन्मभूमि मूवमेंट एण्ड फियर ऑफ द सेल्फ,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृष्ठ 5–6।

13. क्रिस्टोफ जेफरेलोट (2010), *रिलीजन, कास्ट एण्ड पॉलिटिक्स इन इण्डिया,* प्रीमस बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ 376–78।

14. अच्युत यागनिक और सुचित्रा सेठ (2002), विदर गुजरात? वायलैंस एण्ड आफ्टर, *इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली,* अंक xxxvii, नं. 11, पृष्ठ 1009–1010।

15. रियाज़ अहमद (2002), गुजरात वायलैंसः मीनिंग एण्ड इम्पलीकेशन्स, *इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* अंक xxxvii,नं. 20, पृष्ठ 1870।

16. योगिन्दर सिकन्दर (1995), मेओनीस ऑफ मेवात, *इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* अंक xxx, नं. 10, पृष्ठ 490

17. प्रताप सी. अग्रवाल (1969), इस्लामिक रिवाइवल इन मॉडर्न इण्डियाः द केस ऑफ मेउस, *इकोनोमिक पोलिटिकल वीकली,* अंक–IV नं. 42, पृष्ठ 1677

18. आनन्द तेलतुम्बडे (2007), 'रिवर्टिंग टू द ओरिजनल विज़न ऑफ रिज़रवेशन', *इकोनोमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* अंक XLII, नं. 25, पृष्ठ 2383–2384

19. ब्रजेश पाण्डेय (2011), ''ए लैण्ड डीस्प्यूट एण्डस इन कारनेज'', *तहलका,* नई दिल्ली, अंक, VIII, नं. 39, पृष्ठ 22–26

20. देखेंः पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज़, राजस्थान, गोपालगढ़ (भरतपुर) मेवात पुलिस फायरिंग इंसिडेंट, प्रीलिमिनरी फाइंडिंग्स ऑफ द फैक्ट फाइइंडिंग टीमः 2011 www.pucl.org/topics/police/2011/gopalgarh.htm।

21. ब्रजेश पाण्डेय (2011), ''ए लैण्ड डीस्प्यूट एण्डस इन कारनेज'', *तहलका,* नई दिल्ली, अंक, VIII, नं. 39, पृष्ठ 22

22. देखेंः गोपालगढ़ राईट्स कुड हैव बीन अवॉयडेड जे.आई.एच. (रिपोर्ट), 2011। www.radianceweekly.com/../gopalgarh_riots_couldhavebeen_avoided_JIH

23. मो. अली, रिपोर्ट बेस्ड आन फैक्ट–फाइंडिंग वीसिट बाए ए टीम फ्राम ANHAD, 2011. www.indianmuslimobsever.com/...bharatpur_policefiringarhad_team

कारागार में निरुद्ध महिला अभियुक्तों के साथ निवासरत् उनके बच्चों की स्थिति का सर्वेक्षण

प्रशान्त अग्निहोत्री एवं रुचि अग्रवाल

बच्चे किसी भी देश का भविष्य होते हैं। भावी समाज के निर्माण का दारोमदार इन्हीं बच्चों के कन्धों पर होता है परन्तु उससे पहले यह आवश्यक है कि इनके उन नाजुक कन्धों को वह सामर्थ्य प्रदान की जाये जिस पर भावी कौशलयुक्त सम्पन्न देश का भार डाला जा सके। जेल में विभिन्न अपराधों में निरुद्ध महिला कैदियों के साथ यद्यपि नियमतः छह वर्ष की आयु तक के बच्चे ही रखे जा सकते हैं। तथापि बच्चों का यह शैशवकाल बहुत ही कोमल, संवेदनशील और भावी विकास का आधार होता है। वस्तुतः शैशव काल एक उच्च संवेदनशील अवधि होती है जो शारीरिक, जन्मजात, सामाजिक तथा भावनात्मक विकास के तीव्र रूपान्तरण या कायान्तरण से विशिष्टीकृत होती है। कुपोषण, देखभाल से वंचना तथा खराब उपचार विशेष रूप से छोटे बच्चों में क्षति पहुँचाते हैं और इसके दुष्परिणाम वयस्कावस्था में प्रायः महसूस किये जाते हैं। जीवन के पहले वर्षों में एक बच्चा जो बहुत ही खराब देखभाल पाता है बहुत हद तक विकास की कमी को झेल सकता है, जिसे बाद में सुधार पाना कठिन होता है।

खराब पोषण, बच्चे की स्कूल में भागीदारी और उपलब्धियों पर नकारात्मक प्रभाव डालता है। ऐसे छात्र प्रायः विद्यालय में नाकांकित नहीं होते या देर से नामांकित होते हैं या पढ़ाई अधूरी छोड़ देते हैं। बचपन में एक अधिक दीर्घकालीन अनिवार्य पोषण की कमी बच्चे की भाषा, संचालन तथा समाज भावात्मक विकास को क्षतिग्रस्त करता है। वहीं दूसरी ओर जेल का सीमाओं में बंधा अपराधियों से परिपूर्ण वातावरण बच्चे के कोमल मन पर बुरा प्रभाव डाल सकता है जो उसके सम्पूर्ण जीवन के विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकता है।

यद्यपि बाल शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009, में छह वर्ष से लेकर 14 वर्ष तक

के विद्यार्थियों को शिक्षा का अधिकार प्रदान किया गया है और जेल प्रशासन छह वर्ष के बच्चों को जेल के बाहर या जेल में स्थित विद्यालयों में प्रवेश दिलाकर उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करता है। तथापि विद्यालय से लौटने के बाद उन्हें पुनः जेल में ही आना पड़ता है ऐसे में उनके सम्पूर्ण शैक्षिक भावात्मक और सामाजिक विकास की उपयुक्तता पर प्रश्न चिन्ह खड़े हो जाना स्वाभाविक ही है। वहीं दूसरी ओर बच्चे को उसकी मां के साथ जेल में निरुद्ध रखना एक प्रकार से बच्चे के नैसर्गिक अधिकार का भी उल्लंघन है, क्योंकि प्रकृति-प्रदत्त न्याय का सिद्धान्त कहता है कि हर कोई जन्म से स्वतंत्र पैदा होता है केवल राज्य को ही यह हक प्राप्त है कि वह किसी विशेष स्थिति में जबकि व्यक्ति ने राज्य द्वारा स्थापित कानून का उल्लंघन किया हो उसे इस नैसर्गिक न्याय के अधिकार को बाधित कर सकता है। परन्तु एक बच्चा जो अपनी माँ के साथ जेल में बन्द है जाने–अनजाने व्यवस्था उसके प्रकृति-प्रदत्त स्वतंत्रता के हित का अतिक्रमण करती है।

यदि एक बच्चा जेल में है तो शायद वह जिद नहीं कर सकता। जब चाहे अपने मन से बाहर निकलकर घूम नहीं सकता और न जाने ऐसी कितनी बाध्यताओं को सहने के लिये विवश होता है। ऐसे में स्वाभाविक तौर पर उसके विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने की सम्भावना बहुत अधिक होती है। यह सम्भावना तब और अधिक बढ़ जाती है जब बच्चा एक अपराधिक पृष्ठभूमि के परिवार से आता है और सारे दिन अपराधियों से भरे हुये जेल के वातावरण में व्यतीत करता है। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि जेल में महिला अपराधियों के साथ बन्द बच्चों के निवास की परिस्थितियों और उनके विकास की स्थितियों के साथ–साथ उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं का सर्वेक्षण कर उनमें सुधार के उपाय सुझायें जायें, ताकि इन बच्चों को देश का उपयोगी भावी नागरिक बनाया जा सके। इस अनुभवमूलक अध्ययन के लिये उत्तरप्रदेश के शाहजहाँपुर जिले के कारागार को अध्ययन और सर्वेक्षण हेतु चयनित किया गया है। शाहजहाँपुर जिला जेल में अपनी माताओं के साथ निवासरत् बच्चों की स्थिति के सर्वेक्षण का विनम्र प्रयास अध्ययन में है।

v/; ;u d mn'n';

प्रस्तुत सर्वेक्षण अध्ययन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

1. जेल में कार्यरत् कार्मिकों की स्थिति का अध्ययन करना।
2. जेल में महिला कैदियों की कुल संख्या सहित गर्भवती तथा बच्चों के साथ रह रही महिलाओं की स्थिति का आकलन करना।
3. जेल में बच्चों के साथ रह रही महिलाओं के अपराध की श्रेणी का अध्ययन करना।
4. महिला अपराधियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।

5. जेल में माँ के साथ रह रहे बच्चे के सम्बन्ध में सामाजिक-आर्थिक सूचनाओं को एकत्र करना।
6. जेल में बच्चों के विकास के लिये उपलब्ध सुविधाओं का सर्वेक्षण करना।
7. जेल में बच्चों के पोषण की स्थिति का सर्वेक्षण करना।
8. बच्चे के रोग प्रतिरक्षक रक्षण की व्यवस्था का सर्वेक्षण करना।
9. जेल में बच्चों के विकास की गतिविधियों का सर्वेक्षण करना।
10. जेल में बच्चे के रहने की स्थिति का अध्ययन करना।
11. विद्यालय में जाने वाले बच्चों के साथ उनके सहपाठियों के व्यवहार का अध्ययन करना।
12. बच्चे की पढ़ाई के सम्बन्ध में जेल द्वारा उपलब्ध करायी जा रही सुविधाओं का सर्वेक्षण करना।
13. अन्य सम्बद्ध गतिविधियों का सर्वेक्षण करना।

fof/k ,oa i—fr

प्रस्तुत अनुसंधान में शाहजहाँपुर जिला जेल में बन्दी महिला कैदियों के साथ निरुद्ध बच्चों की स्थिति तथा उनके शैक्षिक परिदृश्य की जानकारी एकत्र करने के लिये सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। जिसमें उप-पुलिस महानिरीक्षण जेल से अनुमति प्राप्त करने के उपरान्त निर्धारित सर्वेक्षण प्रपत्र के आधार पर सूचनायें एकत्र कर उन्हें व्याख्यायित करते हुये प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत अनुसंधान में जिला कारागार शाहजहाँपुर में निरुद्ध महिला बन्दियों जिनके साथ उनके बच्चे भी जेल में ही निवास करते हैं को समग्र माना गया है।

शाहजहाँपुर के जिला कारागार में ऐसी 13 महिलायें निरुद्ध हैं जिनके साथ उनके बच्चे जेल में रहते हैं। जिनकी सूची को तालिका संख्या 01 के अन्तर्गत दर्शाया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन में समग्र का आकार अत्यन्त छोटा होने के कारण सम्पूर्ण समग्र का ही अध्ययन सर्वेक्षण अध्ययन में किया गया है। अतः प्रस्तुत अनुसंधान में निदर्श का प्रावधान नहीं है।

'kks/k midj.k

प्रस्तुत शोध कार्य में महिला बन्दियों के साथ जेल में निवासरत् बच्चों की स्थिति के सर्वेक्षण के लिये स्वनिर्मित सर्वेक्षण अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

वर्तमान परिवेश में महिला अभियुक्तों के साथ निवासरत् उनके बच्चों की स्थिति के संदर्भ में सर्वेक्षण अनुसूची नामक इस उपकरण में तीन महत्वपूर्ण भाग हैं जिनमें

rkfydk l[;k&01

t;y e viuh ekrkvk d lkFk fuokljr cPp

क्र. सं.	बच्चे का नाम	माँ का नाम व पिता का नाम	लिंग	उम्र	जाति
1	रवि	गुड्डी पत्नी बिशूनू	पु.	6 वर्ष	पासी
2	शुभी	शकुन्तला पत्नी रामवरन	म.	2 वर्ष 6 माह	राठौर
3	पिंकू	रामश्री पत्नी विरेन्द्रपाल	पु.	2 वर्ष 6 माह	पाल
4	आदेश	जयदेवी पत्नी रामपाल	पु.	4 वर्ष	किसान
5	मुस्कान	गुड्डी पत्नी कल्यान	म.	4 वर्ष	गंगवार
6	टिल्लू	गंगा देवी पत्नी सुरेन्द्र	पु.	2 वर्ष 6 माह	यादव
7	हरी शंकर	राजकुमारी पत्नी राजपाल	पु.	2 वर्ष 6 माह	धीमर
8	सेनू	जयदेवी पत्नी सुरेन्द्र	पु.	2 वर्ष 6 माह	यादव
9	यदुवीर	छोटी बिटिया पत्नी देवेन्द्र	पु.	1 वर्ष	जाटव
10	अनुज	मिथलेश पत्नी महेश्वर दयाल	पु.	2 वर्ष	ब्राह्मण
11	होशियार	सावित्री पत्नी कन्हैयालाल	पु.	1 वर्ष	नाऊ
12	स्वाति	कमलादेवी पत्नी मिश्रीलाल	म.	2 वर्ष	मौर्या
13	प्रशांत	पिता/मुकेश	पु.	2 वर्ष	

प्रथम भाग में जेल सम्बन्धी सूचनाओं को संकलित करने का प्रावधान है। जिसमें इस संदर्भ में आठ सूचनायें एकत्र करने के लिये स्थान छोड़ा गया है। अनुसूची के दूसरे भाग में महिला बन्दी सम्बन्धी सूचनायें प्राप्त करने का प्रावधान किया गया है। इसके माध्यम से 21 विविध सूचनायें एकत्र की गयीं हैं। तीसरे और महत्वपूर्ण भाग में माताओं के साथ जेल में रह रहे बच्चों के संदर्भ में सूचनायें एकत्र की गयीं हैं। इसमें 31 सूचनाओं को प्राप्त करने का प्रावधान किया गया है।

midj.k dk i'kklu

अनुसूची के आधार पर सूचनाओं को एकत्र करने के लिये सर्वप्रथम अनुसंधित्सु द्वारा महानिरीक्षक कारागार से इस संदर्भ में अनुमति प्राप्त की गयी। महानिरीक्षक द्वारा विभागीय नियमों, शर्तों और प्रतिबन्धों के साथ अनुसंधित्सु को इस संदर्भ में सर्वेक्षण की अनुमति शोध अधिकारी कारागार प्रशासन एवं सुधार सेवायें उ.प्र. द्वारा प्रदान की गयीं। इस पत्र के आलोक में अनुसंधित्सु ने जिला जेल में अधीक्षक जिला कारागार के सहयोग से सर्वेक्षण प्रपत्र की प्रतिपूर्ति महिला बैरक में जाकर व्यक्तिगत रूप से, बन्दी महिलाओं जिनके साथ उनके बच्चे भी निवासरत् थे, मिलकर सामंजस्य स्थापित करने के बाद की।

इस प्रकार सर्वेक्षण अनुसूची से प्राप्त सूचनाओं को विविध उद्देश्यों के अनुरूप तालिकाबद्ध कर निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है :

t;y lEcU/kh lkekU; lpuk;s

सर्वेक्षण अनुसूची के प्रथम भाग में जेल सम्बन्धी सामान्य सूचनाओं को एकत्र किया गया है। जिसके आधार पर प्राप्त सूचनायें निम्नवत् हैं –

1- ftyk dkjkxkj e dk;jr LVkQ lEcU/kh lpuk;s

जिला कारागार शाहजहाँपुर, जिसका स्वरूप जिला स्तरीय कारागार का है, में विभिन्न सेवा वर्गों के 78 कार्मिक नियुक्त हैं। जिनकी सूचना निम्न तालिका संख्या 02 में प्रस्तुत है:

rkfydk l[;k&02

ftyk dkjkxkj 'kkgtgkiqj e dk;jr LVkQ

सेवा वर्ग	स्वीकृत पद	वर्तमान में कार्यरत्	रिक्त पद	रिक्त पद प्रतिशत	महिला बंदी रक्षकों की स्वीकृत सं.	कार्यरत् महिला बंदी रक्षकों की सं.	रिक्त पद प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
A	04	03	01	25	10	02	80
B	06	04	02	33			
C	90	63	27	30			
D	11	09	02	18			

तालिका संख्या 02 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि जिला कारागार शाहजहाँपुर में प्रथम श्रेणी कार्मिकों के चार पद स्वीकृत हैं जिनमें से वर्तमान में तीन अधिकारी कार्यरत् हैं। यदि रिक्त पदों को स्वीकृत पदों के संदर्भ में प्रतिशत के रूप में परिगणित किया जाये तो यह 25 प्रतिशत आता है। वहीं द्वितीय श्रेणी के 33 प्रतिशत पद जिला कारागार में रिक्त हैं। तृतीय श्रेणी के 90 स्वीकृत पदों के सापेक्ष मात्र 63 पदों पर ही कार्मिक कार्यरत् हैं। इस समूह के 30 प्रतिशत पद रिक्त हैं। चतुर्थ श्रेणी के 11 स्वीकृत पदों के विपरीत 09 कर्मचारी वर्तमान में जिला जेल में कार्यरत् हैं। इस प्रकार इस समूह के 18 प्रतिशत पद रिक्त हैं।

महिला बन्दी रक्षकों के संदर्भ में यह संख्या बहुत ही दयनीय है। महिला रक्षकों के 10 स्वीकृत पदों के सापेक्ष मात्र 02 महिला बंदी रक्षक ही जेल में कार्यरत् पाये

गये। इस प्रकार कुल स्वीकृत पदों में से 80 प्रतिशत महिला बंदी रक्षकों के पद जिला कारागार शाहजहाँपुर में रिक्त हैं। जबकि महिलाओं के लिये बैरक नं0 12 में जिसकी की क्षमता 60 महिला बन्दियों को रखने की है में 68 महिलायें बन्दी हैं जोकि क्षमता से अधिक है। ऐसे में महिला बन्दी रक्षकों की इतनी कम संख्या महिला बन्दियों के जेल मैनुअल में प्रावधान किये गये हितों के परिपोषण के लिये पर्याप्त प्रतीत नहीं होती। इसका नितान्त अभाव जिला कारागार शाहजहाँपुर में है।

2- t;y e efgyk cfUn;k lEcU/kh lpuk;

जेल में बन्द कुल महिला बन्दियों की स्थिति के संदर्भ में प्राप्त सूचनायें तालिका संख्या 03 के रूप में प्रस्तुत हैं :

rkfydk l[;k&03

ftyk dkjkxkj 'kkgtgkiqj e cUnh efgyk;

गर्भवती महिलायें	बच्चों के साथ महिलायें	सामान्य महिलायें	कुल	अन्य (विशेष)
1	2	3	4	5
01	12	55	68	पुरुष के साथ एक बच्चा

तालिका संख्या 03 से स्पष्ट है कि जिला कारागार शाहजहाँपुर में कुल 68 महिलायें निरुद्ध हैं जिनमें से 12 महिलायें अपने बच्चों के साथ रहती हैं। जबकि जेल में एक बच्चा ऐसा भी है जो अपने पिता के साथ रहता है। एक महिला बन्दी गर्भवती है और सामान्य महिलाओं की कुल संख्या 55 है। इस प्रकार कुल 68 महिला बन्दी शाहजहाँपुर की जिला कारागार में निरुद्ध हैं। महिला बैरक संख्या 12 जिसमें की महिलाओं को रखा गया है की प्रतिधारण क्षमता 60 महिला कैदियों की है। इसमें 68 महिला कैदियों का रहना क्षमता से अधिक महिलाओं के रहने की स्थिति को स्पष्ट करता है। यह स्थिति तब और गम्भीर हो जाती है जब महिला बंदी रक्षकों के 80 प्रतिशत पद खाली हैं।

efgyk cUnh lEcU/kh lpuk;

सर्वेक्षण के दौरान सर्वेक्षण अनुसूची में जेल में निरुद्ध उन 12 महिलाओं के संदर्भ में सूचना एकत्र की गयी है जिनके साथ उनके बच्चे जेल में निवास करते हैं। यद्यपि शाहजहाँपुर जिला कारागार में 68 महिला कैदी विभिन्न अपराधों और सजाओं के प्रावधान के अन्तर्गत बन्दी हैं। परन्तु इनमें से 12 महिलायें ऐसी हैं जिनके साथ

उनके बच्चे निवास करते हैं। इस संदर्भ में महिला बन्दियों नाम, उनकी जाति, जेल में रहने की तिथि और अपराध की प्रकृति के संदर्भ में एकत्र सूचनाओं को तालिका संख्या 04 के रूप में प्रस्तुत किया गया है :

rkfydk l0& 04

'kkgtgkiqj tsy esa cPpksa dh lkFk cUnh ekrkvksa dh vijk/k vkj ltk dh fLFkfr

क्र. सं.	बन्दी माँ का नाम	जाति	जेल में प्रवेश तिथि / सजा का दिनांक	अपराधी धारा / अ0सं0
1.	गुड्डी पत्नी बिशूनू	पासी	03 / 11 / 2010	स0प0सं0 –1334 / 08, अ0सं0– 244 / 08 थाना–सिधौंली धारा–498ए, 306 आई0पी0सी0 व 4 दहेज निवारण अधिनियम सजा–5 वर्ष कारावास एवं रु0 8500 / – अर्थदण्ड आई0डी0 एफ0 –10माह, 15 दिन का अतिरिक्त कारावास
2.	शकुन्तला पत्नी रामवरन	राठौर	02 / 02 / 2013	स0प0सं0 –844 / 96, अ0सं0– 60 / 96 थाना–अल्हागंज धारा– 302 / 34 आई0पी0सी0 सजा – आजीवन कारावास एवं रु0 10000 / – अर्थदण्ड आई0डी0एफ0 –1 वर्ष का अतिरिक्त कारावास
3.	रामश्री पत्नी विरेन्द्रपाल	पाल	23 / 05 / 2013	स0प0सं0 –482 / 11, अ0सं0– 174 / 11थाना–सिधौंली धारा–498ए, 304बी / 34, 302 / 34 आई0पी0सी0 व 3 / 4 दहेज प्रतिशेध अधिनियम सजा–आजीवन कारावास एवं रु0 12000 / – अर्थदण्ड आई0डी0एफ0– 23 माह का अतिरिक्त कारावास
4.	जयदेवी पत्नी रामपाल	किसान	12 / 09 / 2013	धारा–302 आई0पी0सी0 अ0सं0 302 / 13 थाना–तिलहर जिला शाहजहाँपुर ए0डी0जे0 कोर्ट नं0–7 शाहजहाँपुर

5.	गुड्डी पत्नी कल्यान	गंगवार	14/01/2009	धारा 302, 201 आई0पी0सी0 अ0सं0–518/09 थाना–कटरा जिला शाहजहाँपुरा ए0डी0जे0 कोर्ट नं0–07, शाहजहाँपुर
6.	गंगा देवी पत्नी सुरेन्द्र	यादव	20/08/2013	धारा–498ए, 304बी आई0पी0सी0 व 3/4 डी0पी0एक्ट अ0सं0 388/13 थाना तिलहर जिला शाहजहाँपुर जिला जज शाहजहाँपुर
7.	राजकुमारी पत्नी राजपाल	धीमर	13/03/2013	अ0सं0–17/13 स0प0सं0–419/13 धारा–498ए, 304बी, 3/4 डी0पी0 एक्ट थाना–गढिया रंगीन जिला शाहजहाँपुर मा0ए0डी0जे0 कोर्ट नं0–4 शाहजहाँपुर
8.	जयदेवी पत्नी सुरेन्द्र	यादव	27/10/2013	धारा– 363, 366 आई0पी0सी0 अ0सं0–180/13 थाना–गढ़िया रंगीन शाहजहाँपुर ए0सी0जे0एम0–प्रथम शाहजहाँपुर।
9.	छोटी बिटिया पत्नी देवेन्द्र	जाटव	06/05/2013	धारा–302, आई0पी0सी0 अ0सं0–435/11 थाना जलालाबाद शाहजहाँपुर ए0डी0जे0 कोर्ट नं0–8 शाहजहाँपुर
10.	मिथलेश पत्नी महेश्वर दयाल	ब्राह्मण	27/11/2013	धारा–420, 467, 468, 471, 506 आई0पी0सी0 अ0सं0–802/13 थाना पुवांयां जिला शाहजहाँपुर सी0जे0 (जू0डि0) जे0एम0 पुवायां
11.	पावित्री पत्नी कन्हैयालाल	नाऊ	27/04/2013	धारा–302 आई0पी0सी0, 4/25/27ए एक्ट अ0सं0–150/12, 152/12 थाना–निगोही जिला शाहजहाँपुर ए0डी0जे0 कोर्ट नं0–7 शाहजहाँपुर
12.	कमलादेवी	मौर्या	03/10/2013	धारा–328, 302, 120बी आई0पी0सी0 अ0सं0– 271/13 थाना–तिलहर जिला शाहजहाँपुर मा0 सी0जे0एम0 शाहजहाँपुर

तालिका संख्या 04 के अवलोकन से स्पष्ट है कि जेल में बच्चों के साथ रहने वाली महिलाओं की संख्या 12 है। इसमें से एक महिला सामान्य जाति वर्ग से है जिसपर धोखाधड़ी और फर्जी कागजात बनाकर उनके प्रयोग का आरोप है वहीं पिछड़े वर्ग की सात महिला बन्दी जेल में निरुद्ध हैं जिनमें से दो को आजीवन कारावास की सजा प्राप्त है इन पर हत्या जैसा अपराध करने का दोष सिद्ध हुआ है। वहीं चार महिला अपराधी अनुसूचित जाति वर्ग से हैं इनमें से एक महिला को दहेज निवारण अधिनियम में पाँच वर्ष के कारावास और 8500 रु0 के अर्थदण्ड इसे अदा न करने पर 10 माह 15 दिन की अतिरिक्त कारावास की सजा सुनायी गयीं है। वहीं तीन महिलायें इस जाति वर्ग की ऐसी जिनके मुकदमें विचाराधीन हैं। इसमें से दो पर हत्या जैसे जघन्य मामले में मुकदमा चल रहा है जबकि एक महिला पर दहेज उत्पीड़न का आरोप लगा हुआ है। अधिकांश महिलायें 2013 से ही जेल में निरुद्ध हैं मात्र दो महिलायें गुड्डी 14 जनवरी 2009 से तथा गुड्डी पत्नी विशूनू 3 नवम्बर 2010 से कारागार में बन्द हैं। जिसमें से गुड्डी पत्नी विशूनू को पाँच वर्ष कारागार की सजा दहेज निवारण अधिनियम के अन्तर्गत मिली हुयीं है। सूचनाओं पर दृष्टिपात करने से यह भी ज्ञात होता है कि इन महिलाओं में से सभी हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं, जबकि कोई भी महिला इस्लाम या ईसाई धर्म आदि से सम्बन्धित नहीं है।

जेल में बन्द इन 12 महिला बन्दियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के संदर्भ में एकत्र विभिन्न सूचनाओं को तालिका संख्या 05 के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या 05 के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि जेल में माताओं के साथ 12 बच्चे निवास करते हैं इनमें से 02 बच्चे जेल से विद्यालय में अध्ययन हेतु जाते हैं। अधिकांश परिवारों में बच्चों की संख्या अधिक है। जबकि कामकाजी सदस्यों की संख्या बहुत कम है। एक मामले में पूरे परिवार की हत्या हो जाने के कारण कोई भी सदस्य नहीं बचा है। दो परिवार ऐसे हैं जिनके सभी कामकाजी सदस्य भी जेल में बंद हैं। इन सभी परिवारों में रोजगार में लगे सदस्यों की संख्या शून्य है। इससे स्पष्ट होता है इन परिवारों की आर्थिक स्थिति काफी खराब है। जय देवी के परिवार की एक महिला गृहिणी भी जेल में ही निरुद्ध है। इन 12 महिला बंदी परिवारों में कुल 45 बच्चे जेल जाने वाले हैं जबकि 12 बच्चे माताओं के साथ जेल में रह रहे हैं। इनमें से दो नर्सरी कक्षा में एम0लाल0 पब्लिक स्कूल शाहजहाँपुर में अध्ययन कर रहे हैं।

rkfydk l[;k&05

ifjokj lEcU/kh lpuk;k

कैदी महिला का नाम	सदस्यों की संख्या						
	छोटे बच्चे	विद्यालय जाने वाले बच्चे	कामकाजी सदस्य	रोजगार में लगे सदस्य	गृहिणी	वृद्ध	कुल
जय देवी	01	04	(01 बंद)				06
कमला	01	05	(01 बंद)				07
शकुन्तला	01	05					06
राजकुमारी	01	–	–				01
गंगादेवी	01	02	(02 बंद)		01	02	08
जय देवी	01	04	(04 बंद)		(01बंद)		10
रामश्री	01	04	(03 बंद)				08
छोटी बिटिया	01	06	(02 बंद)				09
गुड्डी	01	05 (01 जेल से विद्यालय जाने वाला)	(01 बंद)		01	01	08
गुड्डी	01	05 (01 जेल से विद्यालय जाने वाला)					05
मिथलेश	01	04	(02 बंद)			01	08
पावित्री	01	01	–				02
;kx	**12**	**45**	**16**	**&**	**03**	**04**	**78***

* इसमें जेल से विद्यालय जाने वाले बच्चों की संख्या 1 बार सम्मिलित है।

महिलाओं की पारिवारिक व्यवसाय स्वयं की व्यावसायिक स्थिति और शैक्षिक तथा व्यावसायिक योग्यता की स्थिति से जो तथ्य उभरकर सामने आये हैं उसे आंकडों के रूप में वर्गीकृत कर तालिका संख्या 06 में रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

rkfydk l[;k&06

ifjokj dh 0;ko lkf;d] 'kf{kd fLFkfr

महिला बन्दी का नाम	परिवार का व्यवसाय स्थिति	पूर्व में महिला की व्यावसायिक योग्यता	शैक्षिक योग्यता	व्यावसायिक योग्यता	पति की शैक्षिक
जय देवी	मजदूरी	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
कमला	खेती	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
शकुन्तला	खेती	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
राजकुमारी	खेती	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
गंगादेवी	खेती	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	कक्षा 5
जय देवी	खेती, दुग्ध व्यवसाय	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
रामश्री	खेती	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
छोटी बिटिया	मजदूरी	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
गुड्डी	खेती	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
गुड्डी	–	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर
मिथलेश	खेती	गृहिणी	कक्षा 5	कोई नहीं	निरक्षर
पावित्री	मजदूरी	गृहिणी	निरक्षर	कोई नहीं	निरक्षर

तालिका संख्या 06 के अवलोकन से स्पष्ट है कि 12 महिला बन्दियों, जिनके साथ उनके बच्चे जेल में निवास करते हैं, में से 11 महिलायें निरक्षर हैं केवल एक मात्र महिला कक्षा पाँच तक पढ़ी हुई है जोकि सामान्य जाति वर्ग से आती है। शेष सभी महिलायें निरक्षर हैं। वहीं महिलाओं के पति भी कोई शैक्षिक योग्यता धारित नहीं करते। किसी भी महिला के पास कोई भी व्यावसायिक योग्यता नहीं है। एक मात्र गुड्डी के परिवार जिसमें की गुड्डी और उसके बच्चों को छोडकर कोई नहीं बचा है, के अतिरिक्त सभी परिवारों में खेती या मजदूरी ही व्यवसाय के रूप में की जा रही है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शिक्षा और रोजगार की निम्न स्थितियाँ इन सभी परिवारों की सामान्य विशिष्टतायें हैं। परिवारिक सदस्यों में से अधिकतर महिलाओं के पांच से ज्यादा बच्चे हैं तथा परिवार में कोई भी कामकाजी सदस्य नहीं है जो थे वे सभी जेल में बन्द हैं। प्रायः बच्चे ननिहाल में रहते हैं या जो बच्चे बड़े हैं वे अपने छोटे भाई-बहनों को सम्भाले हैं, एक-दो बच्चे अपने चाचा के साथ भी रह रहे हैं।

यदि जेल में बच्चों के साथ निरुद्ध माताओं की निवासीय तथा आर्थिक स्थिति तथा घर के प्रकार और परिवार के व्यवहार के संदर्भ में सर्वेक्षण से एकत्र तथ्यों को

तालिका के रूप में प्रदर्शित किया जाये तो वह निम्न रूप में तालिका संख्या 07 के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है :

rkfydk l[;k&07

efgyk cfUn;k dh fuok lh;] vkfFkd] ?kj d i dkj ,o ikfjokfjd 0;ogkj dh fLFkfr

महिला बन्दी का नाम	निवास	घर की स्थिति	आर्थिक स्थिति	परिवार का व्यवहार	जेल में पढ़ने की सुविधा
जय देवी	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सहयोग पूर्ण	हाँ
कमला	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
शकुन्तला	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सहयोग पूर्ण	हाँ
राजकुमारी	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
गंगादेवी	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
जय देवी	ग्रामीण	स्वयं का	मध्यम	सामान्य	हाँ
रामश्री	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
छोटी बिटिया	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
गुड्डी	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
गुड्डी	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
मिथलेश	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ
पावित्री	ग्रामीण	स्वयं का	निम्न	सामान्य	हाँ

तालिका संख्या 07 से स्पष्ट होता है कि सभी अपराधी बन्दी माताएँ ग्रामीण निवासीय पृष्ठभूमि की हैं। सभी का अपना स्वयं का मकान है। अधिकांश महिला बन्दी मांओं के परिवार की आर्थिक स्थिति निम्न है। मात्र एक परिवार ही ऐसा है जिसकी आर्थिक स्थिति मध्यम है। अपने पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में सभी महिलायें इसे सामान्य बताती हैं। मात्र दो महिला कैदी अपने पारिवारिक वातावरण को सहयोग पूर्ण मानती हैं। सभी का मानना है कि जेल में उनके अध्ययन की सुविधा है जिसमें जन शिक्षा संस्थान नामक स्वयं सेवी संगठन की महिलायें पढ़ाने के लिये आती हैं। कुछ महिलाओं ने जेल में थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना तथा हस्ताक्षर करना सीख लिया है। शिक्षा के बारे में कुछ महिलाओं का कहना है कि पढ़-लिख कर क्या करना है जबकि कुछ मानती हैं कि हम पढ़े लिखे नहीं हैं तभी जेल में हैं और वे अपने बच्चों को पढ़ा लिखा कर अच्छा बनाना चाहती हैं। कुछ एक महिलायें ऐसी हैं जो अध्ययन के कार्य में रुचि नहीं लेती हैं।

दो महिलायें गुडडी और पावित्री गर्भावस्था के दौरान जेल में रहीं जिन्हें अलग से चार्ट के अनुसार जो जेल मैनुअल में दिया गया है के अनुसार दो अण्डे, आधा लीटर दूध और दूध में डालने का पाउडर परिपूरक पोषण के रूप में दिया जाता रहा।

cPp lEcU/kh lpuk;

शाहजहाँपुर जिला जेल में अपनी माताओं के साथ निवासरत् बच्चों की स्थिति के संदर्भ में सर्वेक्षण अनुसूची के आधार पर एकत्र सूचनाओं से बच्चे की आयु, लिंग, जाति, उसकी जेल में रहने की अवधि, जेल की स्थिति, अध्ययन की स्थिति, मनोरंजन, बच्चे के पोषण की स्थिति, विविध विकास की गतिविधियों, विद्यालय में पढ़ने जाने तथा सहपाठियों के व्यवहार, स्कूल के वातावरण आदि के संदर्भ में सूचनायें प्राप्त हुईं हैं। जिन्हें विविध आधारों पर वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है।

1- cPp lEcU/kh lkekU; lpuk;

जेल में अपनी माताओं के साथ रह रहे बच्चों के नाम, आयु, लिंग, जाति आदि के संदर्भ में एकत्र सूचनायें समेकित रूप से तालिका संख्या 08 में प्रस्तुत की गई हैं।

तालिका संख्या 08 पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि जेल में कुल 13

rkfydk l[;k&08

t;y e jg jg cPpk lEcU/kh lkekU; lpuk;

क्र.सं.	बच्चे का नाम	माँ का नाम व पिता का नाम	लिंग	उम्र	जाति
1.	रवि	गुड्डी पत्नी बिशूनू	पु0	6 वर्ष	पासी
2.	शुभी	शकुन्तला पत्नी रामवरन	म0	2 वर्ष 6 माह	राठौर
3.	पिंकू	रामश्री पत्नी विरेन्द्रपाल	पु0	2 वर्ष 6 माह	पाल
4.	आदेश	जयदेवी पत्नी रामपाल	पु0	4 वर्ष	किसान
5.	मुस्कान	गुड्डी पत्नी कल्यान	म0	4 वर्ष	गंगवार
6.	टिल्लू	गंगा देवी पत्नी सुरेन्द्र	पु0	2 वर्ष 6 माह	यादव
7.	हरी शंकर	राजकुमारी पत्नी राजपाल	पु0	2 वर्ष 6 माह	धीमर
8.	सेनू	जयदेवी पत्नी सुरेन्द्र	पु0	2 वर्ष 6 माह	यादव
9.	यदुवीर	छोटी बिटिया पत्नी देवेन्द्र	पु0	1 वर्ष	जाटव
10.	अनुज	मिथलेश पत्नी महेश्वर दयाल	पु0	2 वर्ष	ब्राह्मण
11.	होशियार	पावित्री पत्नी कन्हैयालाल	पु0	1 वर्ष	नाऊ
12.	स्वाति	कमलादेवी पत्नी मिश्रीलाल	म0	2 वर्ष	मौर्या
13.	प्रशांत	पिता/मुकेश	पु0	2 वर्ष	

बच्चे अपने अभिभावकों के साथ रह रहे हैं। जिनमें से 12 बच्चे अपनी माताओं के साथ एक बच्चा अपने पिता के साथ जेल में है। इनमें से सभी बच्चों की आयु आठ वर्ष से कम है। इनमें से एक बच्चा सामान्य जाति वर्ग का तथा सात बच्चे पिछड़ा वर्ग के तथा चार बच्चे अनुसूचित जाति समूह के हैं जबकि प्रशान्त की जाति के संदर्भ में सूचना उसके पिता के साथ रहने के कारण प्राप्त नहीं हो सकी है।

2- cPpk dk tsy esa jguk dh fLFkfr lEcU/kh lwpuk;sa

जेल में बच्चों की रहने की स्थिति के संदर्भ में एकत्र सूचनायें निम्नवत् रूप में तालिका संख्या 09 में वर्गीकृत कर प्रस्तुत की गयीं हैं –

rkfydk la[;k&09

tsy esa jguk okys cPpksa dh fLFkfr

क्र.सं.	बच्चे का नाम	वार्ड की स्थिति	विद्युत व्यवस्था	कपडों की सुविधा	मनोरंजन की सुविधा
1.	रवि	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
2.	शुभी	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
3.	पिंकू	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
4.	आदेश	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
5.	मुस्कान	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
6.	टिल्लू	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
7.	हरी शंकर	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
8.	सेनू	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
9.	यदुवीर	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
10.	अनुज	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
11.	होशियार	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
12.	स्वाति	क्षमता से अधिक	हाँ	हाँ	हाँ
13	प्रशांत	सूचना प्राप्त नहीं	सूचना प्राप्त नहीं	सूचना प्राप्त नहीं	सूचना प्राप्त नहीं

सर्वेक्षण में मात्र महिला कैदियों की बैरक संख्या 12 का ही सर्वेक्षण किया गया था इसलिये मात्र 12 बच्चों के संदर्भ में ही सूचनायें एकत्र की जा सकीं, क्योंकि एक बच्चा प्रशान्त अपने पिता के साथ जेल में निवास करता है। जिसकी आयु दो वर्ष है। सभी बच्चे क्षमता से अधिक कैदियों वाले वार्ड में निवास करते हैं। वार्ड में विद्युत

की व्यवस्था है, बच्चों को कपड़ों की सुविधा जेल प्रशासन एवं अन्य स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध कराई जाती है। सर्दियों में उन्हें टोपी व जैकेट प्रदान किये जाते हैं बच्चों के मनोरंजन के अस्थायी रूप से क्रेच बना दी गयीं हैं जो बैरक नं0 12 में ही है उसी के साथ पाठशाला भी है, क्रेच में झूला, बॉल, घोड़ा आदि खेलने का सामान रखा था। जिससे बच्चे खेल रहे थे। सर्वेक्षण के दौरान वार्ड में बच्चे व माँ के लिये स्वतंत्र वातावरण दिखाई दिया।

3- cPpk d t y e tUe] 'kf{kd ;kX;rk vkj 'kf{kd lfo/kkvk dh fLFkfr lEcU/kh lpuk;

बच्चे के जेल में जन्म, शैक्षिक योग्यता और शैक्षिक सुविधाओं के संदर्भ में एकत्र सूचनायें वर्गीकृत कर तालिका संख्या 10 के रूप में निम्नवत् प्रस्तुत है।

rkfydk l[;k&10

cPpk d t y e tUe] 'kf{kd ;kX;rk vkj 'kf{kd lfo/kkvk dh fLFkfr

क्र. सं.	बच्चे का नाम	बच्चे का जन्म जेल में	योग्यता शैक्षिक	क्या बच्चा बाहर पढ़ने जाता है	अन्य सुविधायें
1.	रवि	नहीं	नर्सरी	हाँ	जेल से बाहर विद्यालय
2.	शुभी	नहीं	–	नहीं	क्रेच
3.	पिंकू	नहीं	–	नहीं	क्रेच
4.	आदेश	नहीं	–	नहीं	क्रेच
5.	मुस्कान	हाँ	नर्सरी	हाँ	जेल से बाहर विद्यालय
6.	टिल्लू	नहीं	–	नहीं	क्रेच
7.	हरी शंकर	नहीं	–	नहीं	क्रेच
8.	सेनू	नहीं	–	नहीं	क्रेच
9.	यदुवीर	नहीं	–	नहीं	क्रेच
10.	अनुज	नहीं	–	नहीं	क्रेच
11.	होशियार	हाँ	–	नहीं	क्रेच
12.	स्वाति	नहीं	–	नहीं	क्रेच
13.	प्रशांत	नहीं	–	नहीं	क्रेच

तालिका संख्या 10 से स्पष्ट होता है कि जेल में रह रहे 13 बच्चों में से 11 बच्चे जेल के क्रेच में ही रहते हैं जबकि दो बच्चे मुस्कान और रवि नगर के एम.लाल. पब्लिक स्कूल की नर्सरी कक्षा में पढ़ने जाते हैं जिन्हें महिला होमगार्ड व एक पुरुष सन्तरी विद्यालय लेकर जाते हैं। दो बच्चों मुस्कान और होशियार का जन्म जेल में ही हुआ है। मुस्कान पढ़ने जाती है जबकि होशियार एक वर्ष का है इसकी मां पावित्री मन्द बुद्धि की महिला है। इस प्रकार जेल में बच्चों के लिये क्रेच व नर्सरी स्कूल है जिसे गैर–सरकारी सामाजिक संगठन जन शिक्षण संस्थान के द्वारा संचालित किया जाता है। जिन्हें पढ़ाने के लिए स्वयं सेवी संगठन जन शिक्षण संस्थान से प्रतिदिन दो स्वयं सेविकायें सविता राठौर और इंद्रेश लता आती हैं वे बारह बजे से ढाई बजे तक बैरक नं0 12 में ही महिलाओं के साथ छोटे बच्चों को पढ़ना सिखाने का प्रयास करती हैं। सर्वेक्षण के समय यह दोनों स्वयं सेविकायें बैरक में मौजूद थीं उन्होंने बताया कि पहले महिलायें नाम नहीं लिख पाती थीं बाद में वे सिग्नेचर आदि करना सीख गई हैं। कुछ महिलायें इसमें रुचि दिखाती हैं और कुछ नहीं।

4- cPpk d ty e feyu okyh LokLF; lfo/kkvk lEcU/kh lpuk;

बच्चों को जेल में मिलने वाले पूरक पोषण उसके प्रकार और रोग प्रतिरक्षक व्यवस्था के संदर्भ में एकत्र सूचनाओं को तालिका संख्या 11 में प्रस्तुत किया गया है।

तालिका संख्या 11 के अवलोकन से स्पष्ट है कि सभी बच्चों का नियमित टीकाकरण किया जाता है। यदि कोई पोलियो ड्रॉप पिलाने आता है तो वह बच्चों को पिलवाया जाता है। भोजन के अतिरिक्त परिपूरक पोषण के रूप में दलिया, सेब व ब्रेड प्रदान किया जाता है। महिला कैदी व बच्चे सुबह 6 से 11 बजे तक बाहर रहते हैं फिर 11 से 2.30 तक बैरक में और 2.30 से 6 बजे तक बाहर खुले में रहते हैं। जेल में चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है जेल के अन्दर ही चिकित्सालय स्थित है, नियमित डॉक्टरी जांच होती है जहाँ केवल पुरुष डॉक्टर ही परीक्षण करता है महिला डॉक्टर की व्यवस्था नहीं है जिसे आवश्यक रूप से होना चाहिए।

5- ty e ekvk d lkFk jgu oky cPpk d lnHk e vU; lpuk;

i) जेल में बच्चों के लिये कोई भी अतिरिक्त कार्यकलाप संचालित नहीं है। माताओं के पुनर्वास के लिये कोई कार्यक्रम जेल द्वारा संचालित नहीं किया जाता है। जेल में महिला कैदियों तथा बच्चों के लिये स्वतंत्र वातावरण

rkfydk l[;k&11

cPpk d t y e feyu okyh LokLF; lfo/kk;

क्र. सं.	बच्चे का नाम	पूरक पोषण	पोषण का प्रकार	रोग प्रतिरक्षण व्यवस्था	चिकित्सा सुविधा
1.	रवि	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
2.	शुभी	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
3.	पिंकू	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
4.	आदेश	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
5.	मुस्कान	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
6.	टिल्लू	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
7.	हरी ंकर	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
8.	सेनू	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
9.	यदुवीर	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
10.	अनुज	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
11.	होशियार	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
12.	स्वाति	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही
13.	प्रशांत	हाँ	दलिया, सेब, ब्रेड	नियमित टीकाकरण	जेल मे ही

दृष्टिगत हो रहा है क्योंकि सर्वेक्षण के समय कुछ महिला कैदी धूप में बैठी थीं और अपने बच्चों के लिये स्वटेर आदि बुन रहीं थी और कुछ चाय बना रही थीं।

ii) जो दो बच्चे विद्यालय में पढ़ने जाते हैं शिक्षकों का व्यवहार उनके प्रति सहानुभूति-पूर्ण है। सहपाठियों का व्यवहार भी ठीक है। बच्चे अभी इतने छोटे हैं कि उन्हें कुछ पता नहीं है।

iii) बच्चों की माँ की दृष्टि में जेल का वातावरण जेल की दृष्टि से अच्छा है लेकिन वे कहती हैं कि जेल तो आखिर जेल ही है।

iv) मातायें मानती हैं कि जेल का प्रभाव उनके बच्चे पर बुरा पड़ेगा सभी बच्चे मिलजुल कर खेलते हैं।

v) बच्चों द्वारा किसी चीज के मांगने पर वह वस्तु उन्हें जेल के नियमों के तहत ही उपलब्ध करायी जाती है।

vi) माताओं को विद्यालय मे आयोजित होने वाली शिक्षक-अभिभावक बैठक में जाने की अनुमति नहीं है।

vii) बच्चों की फीस, ड्रेस, किताबें आदि का भुगतान कारागार द्वारा किया जाता है।

viii) पिछले पांच वर्षों में कोई भी बच्चा स्वयं सेवी संगठनों को नही सौंपा गया है न ही कोई किसी को गोद दिया गया है क्योंकि ऐसी स्थिति उत्पन्न ही नहीं हुई है।

ix) समय–समय पर स्वयंसेवी संस्थायें भी कई गतिविधियाँ बच्चों के हितार्थ जेल में संचालित करती रहती हैं।

v/;;u l iklr fu"d"k

विवेचित निष्कर्षों को तीन भागों में बाँट कर तथ्यों को क्रमबद्धता प्रदान की गई है। *प्रथम* भाग में जिला जेल से सम्बन्धित सूचनाओं को प्रस्तुत किया गया है वहीं *द्वितीय* भाग में जेल में बन्दी महिलाओं की स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। *तृतीय* और महत्वपूर्ण भाग में मांओं के साथ जेल में रह रहे बच्चों की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, स्वास्थ्य आदि स्थितियों के संदर्भ में एकत्र सूचनात्मक तथ्यों को प्रस्तुत करने के साथ विवेचित और विश्लेषित कर निष्कर्ष रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस आधार पर अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। जो निम्नवत् हैं:

(अ) जिला जेल सम्बन्धी निष्कर्ष, (ब) जेल में बन्दी महिलाओं की स्थिति से सम्बन्धित निष्कर्ष, (स) मांओं के साथ जेल में रह रहे बच्चों की स्थिति सम्बन्धी निष्कर्ष

¼v½ ftyk tsy lEcU/kh fu"d"kZ %

सर्वेक्षण अनुसूची के प्रथम भाग में जेल सम्बन्धी सामान्य सूचनाओं को एकत्र किया गया है। जिसके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष निम्नवत हैं :

1. शाहजहाँपुर में प्रथम श्रेणी कार्मिकों के चार पद स्वीकृत हैं जिनमें से वर्तमान में तीन अधिकारी कार्यरत् हैं।
2. द्वितीय श्रेणी के 33 प्रतिशत पद जिला कारागार में रिक्त हैं।
3. तृतीय श्रेणी के 90 स्वीकृत पदों के सापेक्ष मात्र 63 पदों पर ही कार्मिक कार्यरत् हैं।
4. कुल स्वीकृत पदों में से 80 प्रतिशत महिला बंदी रक्षकों के पद जिला कारागार शाहजहाँपुर में रिक्त हैं।
5. महिलाओं के लिये बैरक नं0 12 में जिसकी की क्षमता 60 महिला बन्दियों को रखने की है में 68 महिलायें बन्दी हैं।
6. चतुर्थ श्रेणी के 11 स्वीकृत पदों के विपरीत नौ कर्मचारी वर्तमान में जिला जेल में कार्यरत् हैं।

¼c½ tsy esa cUnh efgykvksa dh fLFkfr ls lEcfU/kr fu"d"kZ %

1. शिक्षा और रोजगार की निम्न स्थितियाँ इन सभी परिवारों की सामान्य विशिष्टताएँ हैं।
2. परिवारिक सदस्यों में से अधिकतर महिलाओं के पाँच से ज्यादा बच्चे हैं।
3. परिवार में कोई भी कामकाजी सदस्य नहीं है जो थे वे सभी जेल में बन्द हैं।
4. प्रायः बच्चे ननिहाल में रहते हैं या जो बच्चे बड़े हैं वे अपने छोटे भाई-बहनों को सम्भालतें हैं।
5. सभी अपराधी बन्दी ग्रामीण निवासीय पृष्ठभूमि की हैं।
6. अधिकांश महिला बन्दी मांओं के परिवार की आर्थिक स्थिति निम्न है।
7. पारिवारिक वातावरण के संदर्भ में सभी महिलायें इसे सामान्य बताती हैं।
8. सभी का मानना है कि जेल में उनके पढ़ने की सुविधा है।
9. कुछ महिलायें ऐसी हैं जो अध्ययन के कार्य में रूचि नहीं लेती हैं।
10. अधिकतर महिलाओं के परिवार में खेती–बाड़ी होती थी।

11. कोई भी महिला बंदी पढ़ी–लिखी नहीं है जो कुछ भी पढ़ा है यहाँ जेल में आकर ही पढ़ा है।
12. दो महिलाऐं गुड्डी व पावित्री गर्भावस्था के दौरान जेल में रहीं। उन्हें अलग से चार्ट के अनुसार (जो मैनुअल में दिया है) पोषण मिलता था।
13. परिवार में बच्चों के अलावा किसी–किसी परिवार में अन्य सदस्य हैं जिनका सहयोग पूर्ण व्यवहार है। वे मिलने आते हैं, कुछ परिवार का व्यवहार सामान्य है।

¼l½ ekvk dk lkFk tsy esa jg jgs cPpksa dh fLFkfr lEcU/kh fu"d"kZ &

1. सभी बच्चे क्षमता से अधिक कैदियों वाले वार्ड में निवास करते हैं।
2. वार्ड में विद्युत की व्यवस्था है, बच्चों को कपड़ों की सुविधा जेल प्रशासन एवं अन्य स्वयं सेवी संस्थाओं द्वारा उपलब्ध करायी जाती है।
3. बच्चों के मनोरंजन के अस्थायी रूप से क्रेच बनायी गयी है। क्रेच में झूला, बॉल, घोड़ा आदि खेलने का सामान रखा था।
4. बैरक नं0 12 में पाठशाला भी है।
5. सर्वेक्षण के दौरान वार्ड में बच्चे व माँ के लिये स्वतंत्र वातावरण दिखायी दिया।
6. पढ़ाने के लिए स्वयं सेवी संगठन जन शिक्षण संस्थान से प्रतिदिन दो स्वयं सेविकायें सविता राठौर और इंद्रेश लता आती हैं।
7. पढ़ाने से पहले महिलायें नाम नहीं लिख पाती थीं बाद में वे सिग्नेचर आदि करना सीख गयी हैं।
8. कुछ महिलायें इसमें पढ़ने में रुचि दिखाती हैं और कुछ नहीं।
9. सभी बच्चों का नियमित टीकाकरण किया जाता है।
10. यदि कोई पोलियो ड्राप पिलाने आता है तो वह बच्चों को पिलवाया जाता है।
11. भोजन के अतिरिक्त परिपूरक पोषण के रूप में दलिया, सेब व ब्रेड प्रदान किया जाता है।
12. जेल में चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है जेल के अन्दर ही चिकित्सालय स्थित है।
13. नियमित डॉक्टरी जांच होती है

14. महिला डॉक्टर की व्यवस्था नहीं है।
15. जेल में बच्चे अलग महिला वार्ड में रहते है।
16. दो बच्चे पढ़ने जाते हैं, वे नर्सरी में एम0एल0 पब्लिक स्कूल में हैं।
17. कोई भी व्यावसायिक प्रशिक्षण नहीं दिया जाता है।
18. पुनर्वास कार्यक्रम नहीं है।
19. स्कूल जहाँ पढ़ने जाते हैं वहाँ शिक्षकों का व्यवहार सहानुभूति पूर्ण है।
20. बच्चों के द्वारा चीज माँगने पर जेल द्वारा नियमानुसार ही वस्तु उपलब्ध करायी जाती है।
21. पैरेन्ट-टीचर मीट में माँ को जाने की अनुमति नहीं होती है।
22. स्वयंसेवी संस्थाओं की जेल में गतिविधियाँ संचालित होती रहती हैं।
23. पिछले पाँच वर्षों में कोई भी बच्चा एन0जी0ओ0 को नहीं सौंपा गया है ऐसी स्थिति उत्पन्न ही नहीं हुई है।

l>ko

जिला जेल शाहजहाँपुर की स्थिति का सर्वेक्षण करने के उपरान्त कुछ सुझाव आवश्यक प्रतीत होते हैं।

1. बच्चों वाली महिला बन्दियों के लिये अलग से खुली जेल की व्यवस्था की जानी चाहिए।
2. बच्चे वाली महिला बन्दियों के लिये अलग जेल की व्यवस्था होने पर बच्चों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा सकेगा और उनके कोमल मन पर पड़ने वाले जेल के वातावरण के प्रभाव को भी काफी हद तक कम किया जा सकेगा।
3. किसी भी स्थिति में क्षमता से अधिक महिला कैदियों को जेल के वार्ड में नहीं रखा जाना चाहिए।
4. वार्ड में ही क्रेच और बच्चों के खेलने की सुविधा बहुत उपयुक्त नहीं जान पड़ती इसे कहीं अलग होना चाहिए। इसके लिये जेल में एक अलग छोटा पार्क जिसमें झूले लगें हो विकसित किया जा सकता है।
5. बच्चों के पोषण पर और अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।
6. छोटे बच्चों की मौसम आदि से सुरक्षा और उनके प्रतिरक्षण के लिये और अधिक गंभीर उपाय किये जाने चाहिये।

7. महिलाओं के चिकित्सकीय परीक्षण के लिये महिला चिकित्सक की नियुक्ति अनिवार्य रूप से की जानी चाहिए।
8. बाल–रोग विशेषज्ञ की नियुक्ति का प्रावधान भी जेल में किया जाना चाहिए।
9. सरकार को आंगनवाड़ी केन्द्रों में दी जाने वाली सुविधाओं को आवश्यक रूप से जेल में भी उपलब्ध कराना चाहिए।
10. महिलाओं के शैक्षिक और कौशलात्मक विकास के लिये प्रभावी योजनायें संचालित की जानी चाहिए।
11. महिलाओं के पुनर्वास, परामर्श और निर्देशन की सुविधायें भी जेल में उपलब्ध करायी जानी चाहिए।
12. महिलाओं और बच्चों की शिक्षा के लिये एन0जी0ओ0 पर निर्भर रहने के स्थान पर जेल को स्वयं की स्थायी व्यवस्था विकसित करनी चाहिये।

प्रस्तुत अनुसंधान समाज के उन बच्चों की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है जो निरपराध जेलों में बन्द हैं। जाने-अनजाने इनके प्रकृति-प्रदत्त न्याय के अधिकार का उल्लंघन हम कर रहे हैं। जेल की सीमाओं में कैद अपराधियों से भरे माहौल में बच्चों के कोमल मन और मस्तिष्क पर पड़ने वाले प्रभावों की पड़ताल के बीच जेल में उनके लिये उपलब्ध शैक्षिक, पोषणीय, संरक्षणीय और विकासात्मक सुविधाओं का सर्वेक्षण इस अनुसंधान में किया गया है। मात्र एक जेल के सर्वेक्षण से यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि अभी जेलों में माताओं के साथ निरुद्ध बच्चों की स्थिति में सुधार के लिये बहुत सारे उपाय किये जाने शेष हैं। सरकार और जेल प्रशासन से जुड़े लोगों द्वारा पूरी गम्भीरता के साथ जेल में बन्द बच्चों के विविध विकास से जुड़े मुद्दों पर विचार किये जाने का आग्रह अनुसंधान के निष्कर्ष करते हैं। यही नहीं जेल में क्षमता से अधिक कैदियों के होने और अपर्याप्त कार्मिकों की स्थिति को सर्वेक्षण रेखांकित करता है। महिला बन्दी रक्षकों के संदर्भ में यह स्थिति गम्भीर और चिन्ताजनक है। अनुसंधान के निष्कर्ष यह भी स्पष्ट करते हैं कि महिला अपराधियों में से अधिकांश अशिक्षित हैं। स्वाभाविक तौर पर अशिक्षित और अपराधी माँ परिवार की आपराधिक पृष्ठभूमि में जन्में बच्चे पर जेल के वातावरण की भयावहता काफी अन्धकारपूर्ण स्थिति को रेखांकित करती है। इन बच्चों पर सर्वाधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है क्योंकि इनके विकास पर दुष्प्रभाव पड़ना स्वभाविक ही है। भविष्य में यह बच्चे देश के सम्मानित और उपयोगी नागरिक बन सकें इसके लिये आवश्यक है कि प्रारम्भ से ही इनके विकास पर जेल और अपराधी परिवार के प्रभाव को न्यूनतम करने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिये जेल प्रशासन से जुड़े नीति नियन्ताओं को गम्भीरता पूर्वक विचार कर कुछ नवीन और अनूठे उपाय करने होंगे।

InHk

1. आहूजा, राम, ''भारत में महिला अपराधी'', *भारत,* मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1969
2. पं. गोविन्द बल्लभ पंत, *जेलों में महिला कैदियों के बच्चे : उत्तर प्रदेश में अध्ययन,* योजना आयोग, भारत सरकार, नई दिल्ली 2004
3. चैटोरोज, बी.एन., *भारतीय जेलों में महिला कैदियों के बच्चों पर एक अध्ययन,* अपराध और फॉरेंसिक विज्ञान के राष्ट्रीय संस्थान, दिल्ली, 2000
4. *सुदृढ़ आधार, शैशवकालीन देखभाल एवं शिक्षा, सबके लिये शिक्षा विश्व वैश्विक निगरानी रिपोर्ट,* यूनेस्को प्रकाशन, 2006
5. www.nytimes.com/2007/12/31/world/america/31 mexico.html
6. www.daily.co.uk/..../hundreds pregnant women connected crime-app;
7. articles.times of India, indiatimes.com>collection.
8. www.communitycare.co.uk/.....parent-in-prison-the-effects-on-children/
9. news.bbc.co.uk/2/hi/south asia/4354712.stm.

अस्पृश्यता, जाति और गाँधी : एक समरसतापूर्ण समाज की चाह

कमल नयन चौबे

छुआछूत और जाति भेदभाव भारतीय समाज की सबसे घृणित समस्या है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा छूआछूत पर पूरी तरह पाबंदी लगा दी गई है तथा किसी भी रूप में इस तरह के व्यवहार का निषेध किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 15 में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य नागरिकों के बीच जाति, धर्म, लिंग, नस्ल, जन्म–स्थान या इनमें से किसी एक के आधार पर भी भेदभाव नहीं करेगा।[1] स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दौर में दलितों में शिक्षा की काफी बढ़ोतरी हुई है और बड़ी संख्या में दलित सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। हालांकि जमीनी हालात में ज्यादा बदलाव नहीं हुआ है। आज भी भारत के कई भागों में दलितों के साथ छुआछूत और अन्य क्रूर व्यवहार होता रहता है। मंदिर जाने पर दलितों की हत्या, दलित महिलाओं के साथ बलात्कार, और अपने स्वाभिमान को दर्शाने वाला काम करने पर दलितों की पिटाई आदि की खबरें समाचार माध्यमों से अक्सर आती रहती हैं। ऐसे में, यह सवाल सामने आता है कि दलितों को समान नागरिक अधिकार, विशिष्ट प्रतिनिधित्व अधिकार आदि मिलने के बावजूद उनके साथ लगातार हो रहे अत्याचारों का क्या कारण हैं? क्या उच्च जाति के हिंदुओं का हृदय परिवर्तन करके एक समरसतापूर्ण समाज बनाने का लक्ष्य एक युटोपियाई ख्याल है? क्या यह कहना सही होगा कि राष्ट्रीय आंदोलन के नेतृत्व, विशेष तौर पर गाँधी ने, जाति आधारित भेदभावों को दूर करने के लिए पर्याप्त कोशिश नहीं की?

असल में, दलितों के वर्तमान हालात को समझने के लिए स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान चले वाद–विवाद पर ध्यान देने की आवश्यकता है। यह भी गौरतलब है कि गाँधी की दलित–दृष्टि पर हाल के दशकों में कई सवालिया निशान लगाए गए हैं। ऐसा करने वालों में सिर्फ अम्बेडकरवादी दलित चिंतक ही नहीं हैं जो यह मानते हैं

---

* अनिल दत्त मिश्रा, *महात्मा गाँधी ऑन अनटचऐबिलिटी*, कान्सैप्ट पब्लिशिंग कम्पनी प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2015.

कि गाँधी ने अपने विचारों के माध्यम से ऊँची जातियों के वर्चस्व को कायम रखने का प्रयास किया, बल्कि कई उदारवादी, वामपंथी विचारक भी गाँधी के जाति संबंधी विचारों को संकुचित, दकियानूस और जाति व्यवस्था को वैधता देने वाला मानते हैं। वर्तमान दौर में यह प्रवृत्ति भी बढ़ी है कि गाँधी के लेखन को पढ़े बिना उसके किसी एक बिंदु के आधार पर उसे खारिज कर दिया गया। मिसाल के तौर पर, गाँधी द्वारा चतुर्वर्ण व्यवस्था के 'आदर्श रूप' की बात करने या उनके द्वारा 1932 में ब्रिटिश सरकार द्वारा दलितों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की व्यवस्था के विरोध में आमरण अनशन पर जाने की घटना को इस बात के प्रमाण के तौर पर प्रस्तुत किया जाता है कि वे जाति व्यवस्था के समर्थक थे। इस लिहाज से डॉ. अनिल दत्त मिश्रा द्वारा लिखित किताब *महात्मा गाँधी ऑन अनटचेबिलिटी* (कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली, 2015) बहुत से संदेहों का निराकरण करने और गाँधी के छुआछूत संबंधी विचारों में स्पष्टता लाने का काम करती है। इसमें डॉ मिश्रा ने 1932 से 1936 के बीच गाँधी के छुआछूत संबंधी लेखन को संकलित किया है। इस संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर और गाँधी के बीच हुए संवाद को भी प्रस्तुत किया गया है। किताब की प्रमुख विशेषता डॉ. मिश्रा द्वारा लिखी गई प्रस्तावना है, जिसमें उन्होंने बहुत ही विस्तार से गाँधी के छुआछूत संबंधी विचारों के विकास और उसके विविध आयामों को रेखांकित किया है।

यह लेख डॉ. मिश्रा की किताब की समीक्षा के माध्यम से गाँधी के अस्पृश्यता और जाति संबंधी विचारों का परीक्षण करता है। इसमें पृथक निर्वाचक मंडल संबंधी वाद–विवाद और गाँधी–अम्बेडकर संबंधों के बारे में भी विचार किया गया है। यह समीक्षा–लेख चार भागों में बँटा हुआ है : *पहले* भाग में गाँधी के अस्पृश्यता संबंधी विचार और कार्यों का वर्णन है; *दूसरे* भाग में दलितों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल संबंधी वाद–विवाद के विविध पहलुओं का विश्लेषण किया गया है; *तीसरे* भाग में जाति की भूमिका और प्रासंगिकता के बारे में गाँधी के विचारों में होने वाले बदलावों और इससे जुड़े वाद–विवाद का परीक्षण किया गया है। *चौथा* भाग लेख का निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

I

Xkk/kh d N vkN r lc/kh fopkj

गाँधी ने छूआछूत का हमेशा ही विरोध किया और डॉ. मिश्रा ने अपने किताब की प्रस्तावना में इस बात को अच्छी तरह रेखांकित भी किया गया है। किताब की भूमिका में वे यह बताते हैं कि अपने बचपन में भी गाँधी ने अपनी माँ द्वारा घर की सफाई करने वाले व्यक्ति के साथ बुरे व्यवहार की आलोचना की थी। उनकी माँ ने युवा भंगी उफका का स्पर्श होने पर उन्हें स्नान करके शुद्धीकरण करने के लिए कहा था। गाँधी उस समय बारह वर्ष के थे और उन्होंने अपनी माँ के इस निर्देश का विरोध

किया था।[2] गाँधी ने दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों के अपने अभियान के दौरान भी उन्होंने छुआछूत का मुद्दा उठाया था।[3] गाँधी ने भारतीयों के साथ होने वाले भेदभाव को उनके द्वारा अपनाए गए छुआछूत के नतीजे के रूप में प्रस्तुत किया। मई 1907 में इण्डियन ओपीनियन में लिखे एक लेख में उन्होंने 'छुआछूत के बुरे अंध–विश्वासों' और इसके कारण होने वाले जघन्य भेदभाव का उल्लेख किया।[4] दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के दौरान जेल गए बहुत से भारतीयों ने जब दलितों के हाथ का खाना खाने या उनके निकट सोने से मना किया, तो गाँधी ने उन्हें फटकार लगाई।[5]

भारत आने के बाद भी गाँधी खुले तौर पर छुआछूत का विरोध करते रहे और उन्होंने रूढ़िवादी हिंदुओं द्वारा इसके पक्ष में दिए जाने वाले तर्कों को भी पूरी तरह नकारा। गोधरा (गुजरात) में रूढ़िवादियों की आलोचनाओं का जवाब देते हुए उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि 'मैं खुद को अपना गुरू मानता रहूँगा... इस रूढ़िवादी विचार के पक्ष में मनुस्मृति या किसी अन्य ग्रंथ से किसी श्लोक को उद्धृत करने का कोई मतलब नहीं है। बहुत से श्लोक ऐसे हैं जिनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है... और बहुत से निरर्थक भी हैं।'[6] साथ ही, उन्होंने यह भी तर्क दिया कि ''ग्रंथों के श्लोक विवेक और नैतिकता से ऊपर नहीं हो सकते हैं''।[7]

दरअसल, उन्होंने बार–बार यह मुद्दा उठाया। नवम्बर 1920 में असहयोग आंदोलन आरम्भ होने के बाद उन्होंने यंग इण्डिया में लिखा कि 'हम उस वक्त तक स्वराज पाने के लिए अयोग्य होंगे, जब तक हम अपनी जनसंख्या के पाँचवें हिस्से को गुलाम बनाए रखेंगे।'[8] गाँधी ने छुआछूत उन्मूलन को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनीतिक कार्यक्रम में शामिल करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और उनके इस योगदान को 1945 में गाँधी के खिलाफ लिखी गई अपनी किताब में आम्बेडकर ने भी स्वीकार किया।[9] असहयोग आंदोलन के दौरान स्थापित राष्ट्रीय विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में दलितों छात्रों के प्रवेश की अनुमति देने की रूढ़िवादी तत्त्वों ने तीखी आलोचना की, और यहाँ तक कि स्वराज आंदोलन को दिए जा रहे समर्थन को वापस लेने और उसे नाकाम बनाने की भी धमकी दी, लेकिन गाँधी इस फैसले पर अडिग रहें।[10] गाँधी ने लगातार उँची जाति के हिंदुओं की दलितों के साथ व्यवहार की आलोचना की और उन्होंने यह प्रयास किया कि इन जातियों के भीतर एक तरह के पश्चाताप की भावना पैदा हो। उन्होंने यहाँ तक कहा कि इन जातियों के लोगों को अंग्रेजों के अत्याचार के खिलाफ कुछ भी कहने का हक नहीं है क्योंकि उन्होंने अछूतों के साथ अमानवीय व्यवहार किया है। 13 अप्रैल 1938 को अहमदाबाद में सप्रेस्ड क्लासेज़ कॉन्फ्रेंस को संबोधित करते हुए गाँधी ने अछूतों के साथ किए जा रहे व्यवहार की तुलना अंग्रेजों द्वारा जलियाँवाला बाग में भारतीयों के साथ किए गए बर्ताव से करते हुए इसकी निन्दा की। उन्होंने यह कहा कि हम सरकार के जिस

जुर्म को शैतानी जुर्म करार देकर निंदा कर रहे हैं, क्या हमने खुद अछूत भाईयों के साथ ऐसा ही अपराध नहीं किया है।... हमने उन्हें पेट के बल चलने और जमीन से अपनी नाक रगड़ने के लिए मजबूर किया है; गुस्से से आँखे लाल करके हमने उन्हें रेलवे कम्पार्टमेंट से बाहर किया है– अंग्रेजी शासन ने इससे ज्यादा और क्या किया है?[11]

निश्चित रूप से, अस्पृश्यता संबंधी गाँधी के लेखन में एक तरह की निरन्तरता देखी जा सकती है। अपने किताब की प्रस्तावना में अनिल दत्त मिश्रा ने बहुत ही सुरूचिपूर्ण तरीके से इस तथ्य को रेखांकित किया है। इसी प्रकार, राजमोहन गाँधी, डेविड हार्डीमन आदि लेखकों ने भी गाँधी के काम और लेखन के इस आयाम को स्वीकार किया है।[12] हालांकि बहुत से विचारकों ने, विशेष रूप से अम्बेडकर ने गाँधी के अस्पृश्यता के खिलाफ संघर्ष के तरीके पर बहुत से प्रश्न खड़े किये हैं। एक सर्वप्रमुख आलोचना यह है कि 1920 के दशक में यह राष्ट्रीय आंदोलन के मुख्य ऐजेंडे का भाग नहीं बन पाया। राजमोहन गाँधी यह स्वीकारते हैं कि अम्बेडकर की यह शिकायत सही मानी जा सकती है कि 1920 में छुआछूत के खिलाफ संघर्ष ने जोर नहीं पकड़ा। इसका एक कारण तो भारतीय समाज की एक तरह की जड़ता थी और दूसरा यह कि गाँधी और उनके सहयोगी इस ओर ज्यादा ध्यान नहीं दे पाए क्योंकि उनके सामने स्वराज या हिंदू–मुस्लिम एकता जैसे ज्यादा मुश्किल लक्ष्य थे।[13]

यह भी उल्लेखनीय है कि अम्बेडकर ने उनके द्वारा अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द के प्रयोग की तीखी निन्दा की। निश्चित रूप से, एक शब्द विशेष परिस्थितियों में उभरकर सामने आता है और प्रचलित होता है। समय के साथ उस शब्द की आलोचनाएँ भी सामने आती हैं। 'हरिजन' शब्द के साथ भी ऐसा ही हुआ। बाद के दौर में, दलित आंदोलन ने इस शब्द को पूरी तरह त्याग दिया और इसकी जगह 'दलित' शब्द का प्रयोग किया गया (कुछ समूहों ने संवैधानिक शब्दावली 'अनुसूचित जनजाति' के प्रयोग को वरीयता दी है)। डॉ. मिश्रा ने अपनी किताब में गाँधी के मूल लेखन की मदद से यह दिखाया है कि यह शब्द भी एक संवाद और वाद–विवाद की प्रक्रिया के बाद सामने आया था। गाँधी ने यह लिखा कि बहुत से संवाददाताओं ने मुझसे यह पूछा कि मैंने 'अछूत' की जगह 'हरिजन' नाम को क्यों अपनाया।... मैंने इस नाम का इजाद नहीं किया। कुछ साल पहले बहुत से अछूत संवाददाताओं ने मुझसे यह शिकायत की कि मैं नवजीवन के पृष्ठों पर अस्पृश्य शब्द का प्रयोग करता हूँ। अस्पृश्य का शाब्दिक अर्थ अछूत होता है। इसके बाद मैंने बहुत से सुझाव मँगाए और एक 'अछूत' संवाददाता ने मुझे हरिजन शब्द अपनाने की सलाह दी। इसकी खास बात यह थी कि इसका सबसे पहले उपयोग एक गुजराती संत कवि ने किया था।... मुझे लगा कि यह एक अच्छा शब्द है, 'हरिजन' का अर्थ होता है भगवान के

लोग। दुनिया के सभी धर्मों में यह बताया गया है कि भगवान उन लोगों के दोस्त हैं, जिनका कोई दोस्त नहीं। वे बेसहारों का सहारा हैं और कमजोर लोगों के रक्षक हैं।... यदि कोई भी समूह ईश्वर का जन कहे जाने के लिए पूरी तरह उपयुक्त है, तो वह सबसे कमजोर और बेसहारा लोग ही हैं। नवजीवन के पृष्ठों पर इस पत्राचार के बाद मैंने हमेशा ही अछूतों के बारे में बताने के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया है।[14]

गौरतलब है कि अम्बेडकर ने अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द के प्रयोग कठोर शब्दों में निंदा की थी। लेकिन गाँधी इस बारे में स्पष्ट थे कि वे अगर 'अछूतों' को 'हरिजन' कह रहे हैं, तो कोई अन्य समूह है जो 'दुर्जन' है। उन्होंने यह स्पष्ट किया द्विज और उँची जातियों के लोग दुर्जन हैं। उन्होंने लिखा कि 'अछूत व्यक्ति श्रम करता है और अपने हाथों को गंदा करते हैं ताकि हम साफ–सफाई से और आराम से रह पायें। उसका दमन करके हमें खुशी होती है। अछूतों के सारे दुखों का कारण हम हैं... यह विकल्प हम सब के लिए खुला है कि हम सब हरिजन बन जाए, लेकिन हम अछूतों के साथ किए गए अपने पाप के लिए दिल से पश्चाताप करके ही ऐसा कर सकते हैं।'[15]

हालांकि यह भी सच है कि 'हरिजन' शब्द का प्रयोग करने से सामाजिक स्तर पर कोई रैडिकल बदलाव नहीं आया। दलित इसके बाद भी हाशिए पर ही रहे और अधिकांश स्थानों पर 'हरिजन' के रूप में उनके साथ छुआछूत का बर्ताव होता रहा है, जो अब भी जारी है। बाद में, दलित नेतृत्व ने 'हरिजन' के स्थान पर दलित शब्द को अपनाया। इसमें कोई शक नहीं है कि गाँधी द्वारा अपनाये गए 'हरिजन' शब्द के पीछे उनकी मंशा बुरी नहीं थी, शायद वे 'अछूत' से बेहतर शब्द की तलाश कर रहे थे। किंतु यह स्वीकार करना होगा कि शायद उनका नजरिया उनके सामाजिक पृष्ठभूमि से प्रभावित रहा। बहरहाल, यह भी याद रखने की आवश्यकता है कि समय के साथ हर शब्द की कुछ आलोचनाएँ सामने आती हैं और अगली पीढ़ी किसी अन्य शब्द को ज्यादा वरीयता दे सकती है। मिसाल के तौर पर, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के दौर में सबसे बड़े दलित नेता कांशीराम ने दलित शब्द के बजाय 'बहुजन' शब्द को वरीयता दी। वे यह मानते थे कि दलितों को हाशिए पर पड़े अन्य तबकों से मिलकर सत्ता पर कब्जा करने के लिए संघर्ष करना चाहिए।

बहरहाल, इस बारे में कोई संदेह नहीं है कि गाँधी ने अस्पृश्यता का संवैधानिक रूप से उन्मूलन करने का वातावरण तैयार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाईं। दलित आंदोलन के प्रमुख विद्वान ऐलीनोर जेलियोट ने यह रेखांकित किया है कि 'संविधान के अनुच्छेद 17 द्वारा भले ही कितने ही अधूरे रूप में समानता और न्याय का लक्ष्य हासिल किया गया हो– यह कांग्रेस के लिए, गाँधी के लिए, अम्बेडकर के लिए और भारत के लिए एक जीत का प्रतिनिधित्व करता है।[16]

II

iFkd nfyr ernkrk&eMy ij fojk/k vkj okn&fookn

1931 में दूसरे गोलमेज सम्मेलन में गाँधी और अम्बेडकर के बीच पृथक मतदाता मंडल और संयुक्त मतदाता मंडल के प्रश्न पर ऐतिहासिक वाद–विवाद हुआ। यह प्रश्न सामने आया कि यदि सिख, मुस्लिम और भारतीय यूरोपीयों के लिए पृथक मतदाता मंडल हो सकता है, तो फिर अछूतों के लिए ऐसा करने में क्या दिक्कत है? गाँधी ने यह जवाब दिया कि 'सिख अनंतकाल तक सिख रह सकते हैं और इसी तरह मुसलमान और युरोपीय भी अनंतकाल अपनी इस पहचान के साथ रह सकते हैं। लेकिन क्या अछूत भी अनंतकाल तक अछूत ही रहेंगे?'[17] गाँधी ने 29 अक्टूबर 1931 को इस संदर्भ में अपना एक अन्य डर भी व्यक्त किया कि 'ऐसा होने पर अछूत, जो पहले से ही उच्च जातियों की दया पर निर्भर हैं, उच्च जातियों के दमन का शिकार होंगे।'[18]

ब्रिटिश राज द्वारा मनोनीत बहुत से प्रतिनिधियों ने भी पृथक मतदाता–मंडल की माँग का समर्थन किया। गाँधी ने यह घोषणा की कि दलितों के लिए पृथक मतदाता–मंडल की घोषणा होने पर वे आमरण उपवास द्वारा इसका विरोध करेंगे। अंग्रेजी सरकार द्वारा इसकी घोषणा होने के बाद उन्होंने इसकी मुखालफ़त करते हुए आमरण अनशन करने का फैसला किया। इसके चलते पैदा हुए जबरदस्त दबाव के कारण आखिरकार अम्बेडकर को दलितों के लिए पृथक निर्वाचक मंडल की माँग छोड़नी पड़ी और उन्होंने पूना पैक्ट के प्रावधानों को स्वीकार किया। गाँधी के आमरण अनशन के फलस्वरूप जो समझौता होने के एक दिन पहले भारत के सबसे महत्त्वपूर्ण जाति नेताओं ने यह तय किया कि 'स्वराज संसद के आरंभिक कानूनों में सबसे प्रमुख ऐसा कानून होगा, जो सार्वजनिक कुओं, सार्वजनिक स्कूलों, और अन्य सार्वजनिक स्थानों तक अछूतों की समान पहुँच को सुनिश्चित करेगा।... गाँधी के उपवास के कारण जिन मंदिरों के दरवाजे सदियों दलितों के लिए बंद थे, उन्हें उनके लिए खोल दिया गया। ब्राह्मणों ने दलितों को अपने घर खाने पर बुलाया।[19] यह याद रखने की आवश्यकता है कि पूना पैक्ट में गाँधी ने विधायिका में दलितों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण देने पर सहमति व्यक्त की। गौरतलब है कि पहले वे इस तरह के आरक्षण के विरोधी थे।[20]

पूना समझौते के बाद गाँधी ने इस में भाग लेने वाले दलित प्रतिनिधियों– डॉ. अम्बेडकर, राव बहादुर श्रीनिवास तथा राव बहादुर एम. सी. राजा के प्रति अपनी 'हिंदू कृतज्ञता' प्रकट की और लिखा कि वे तथाकथित उच्च जातियों द्वारा कई पीढ़ियों से किए जा रहे पाप की सजा के तौर पर असमझौताकारी रुख अपना सकते थे। यदि वे ऐसा करते तो कम–से–कम मुझे उनके इस रवैये से कोई नाराजगी नहीं

होती... लेकिन उन्होंने सभी धर्मों में शामिल क्षमा के सूत्र का अनुसरण करते हुए एक ज्यादा उदात्त रास्ता चुना है। मुझे यह उम्मीद है कि उच्च जाति के हिंदू खुद को इस क्षमा के लायक साबित करेंगे।[21]

उन्होंने उच्च जाति हिंदुओं के सामने हिंदू धर्म के सुधार और छुआछूत को पूरी तरह खत्म करने का लक्ष्य रखा और यह कहा कि ऐसा न करना समझौते की मूल भावना का उल्लंघन होगा। पूना समझौते के बाद अम्बेडकर ने यह विचार किया कि उन्हें यह जानकर हैरत हुई कि उनके और गाँधी के बीच इतना कुछ समान है। उन्होंने यह कहा कि यदि आप खुद को डिप्रेस्ड क्लास के उत्थान के लिए समर्पित कर देंगे तो आप हमारे हीरो बन जाएँगे।[22]

बाद में, दलित आंदोलन ने गोलमेज सम्मेलन और उसके बाद पूना पैक्ट के घटनाक्रम का इस्तेमाल दलितों को गोलबंद करने के लिए किया। यह सच है कि अम्बेडकर ने 1945 में अपनी किताब 'व्हाट कांग्रेस ऐण्ड गाँधी हैव डन टू द अनटचेबल्स' में पूना पैक्ट की तीखी आलोचना की और यह लिखा कि 'उपवास में कुछ भी पवित्र नहीं था और यह पूरी तरह से गलत और घृणित कार्य था'।[23] इस कारण, दलित आंदोलन के पूरे आख्यान में 1932 के घटनाओं के वर्णन में गाँधी को एक नकारात्मक चरित्र के रूप में ही प्रस्तुत किया जाता है। यह माना जाता है कि उन्होंने ने ही दलितों के लिए पृथक मतदाता–मंडल नहीं बनने दिया। लेकिन इस आक्रोश और व्याख्या से हमदर्दी रखने के बावजूद यह प्रश्न किया जा सकता है कि क्या गारंटी के साथ यह कहा जा सकता है कि पृथक निर्वाचक मंडल की स्थापना से दलितों की स्थिति बेहतर ही होती? क्या यह दलितों और अन्य सामाजिक समूहों के बीच एक स्थायी अलगाव पैदा नहीं करता? यह सच है कि यह अलगाव अभी है और दलितों के खिलाफ दमन अभी भी जारी है। किन्तु क्या गाँधी की एक समरसतापूर्ण समाज की स्थापना का स्वप्न गलत था, जिसमें सभी समुदाय मिलजुल कर रहें और बेहतर समाज का निर्माण करें। राजमोहन गाँधी यह दलील देते हैं कि असल में अम्बेडकर ने 1945 की अपनी किताब में पूना पैक्ट की आलोचना करते वक्त इसे अपनी हार के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। साथ ही, राजमोहन गाँधी मानते हैं कि उन्होंने कभी भी इसे समझौते को रद्द करने या इससे अलग समझौता करने की माँग नहीं की। ऐसा लगता है कि वे यह मानते थे कि यह एक ऐसा समझौता है, जिससे दलितों सहित हर किसी को फायदा हुआ।[24] यह अपने आप में रोचक तथ्य है कि बहुत से ऊँची जाति के हिंदुओं ने भी गाँधी के आमरण उपवास की तीखी आलोचना की। ऐसे ही एक पत्र में पत्र–लेखक ने यह दावा किया कि 'मैं इस समझौते को एक सार्वजनिक दुर्भाग्य मानता हूँ, जो सिर्फ आपके (गाँधी के) दुर्भाग्यपूर्ण उपवास के कारण ही हो पाया... ऐसे बहुत से विचारवान हिंदू हैं जिन्हें इस समझौते पर अफसोस है...।'[25] गाँधी ने ऐसे हिंदुओं के रुख का विरोध करते हुए

यह जवाब दिया कि 'मुझे किसी ऐसे समाज के सदस्य बने रहने की कोई चिंता नहीं है, जो अपने ही बहिष्कृत सदस्यों, के साथ न्यायपूर्ण बरताव के लिए बहुत ही छोटा कदम उठाने के लिए भी तैयार नहीं है...।'[26] निश्चित रूप से, गाँधी को दोनों ही कैम्पों की आलोचनाओं का सामना करना पड़ा। उन्होंने दो तरह के अतिवादी दृष्टिकोणों को करीब लाकर एक समरस समाज के सृजन का प्रयास किया।

बहरहाल, पृथक निर्वाचक मंडल एक ऐसा मसला है जिस पर लम्बे समय से वाद–विवाद होता रहा है और शायद आगे भी यह एक ज्वलंत मुद्दा बना रहेगा। खासतौर पर, दलितों के खिलाफ लगातार वाले अत्याचारों के संदर्भ में कई दलित बुद्धिजीवी यह मानते हैं कि गाँधी का आमरण अनशन दलितों को अन्यायी हिंदू व्यवस्था से जोड़ने का भाणयंत्र था। बहरहाल, इस बात में कोई संदेह नहीं है कि इस दौर में और इसके बाद के वर्षों में गाँधी–अम्बेडकर के वाद–विवाद ने जाति के प्रति गाँधी के विचारों में बदलाव लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। प्रस्तुत किताब में डॉ. मिश्रा ने इस दौर के गाँधी के लेखन और गाँधी–अम्बेडकर संवाद को काफी प्रभावकारी तरीके से संकलित किया है।

III

tkfr 0;oLFkk dk i.k udkj

गाँधी के आलोचक उन पर लगातार यह आरोप लगाते हैं कि उन्होंने कभी भी खुलकर जाति व्यवस्था को खारिज नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ. अनिल दत्त मिश्रा भी इसी मान्यता के शिकार हुए हैं। अपनी किताब की प्रस्तावना में वे लिखते हैं कि 'वर्णाश्रम धर्म से अलग करने पर भी गाँधी यह नहीं मानते थे कि जाति व्यवस्था एक घिनौनी या खराब कट्टर विचार या व्यवस्था नहीं है। इसकी अपनी सीमाएँ और कमियाँ हैं, लेकिन जिस तरह छुआछूत पाप है, वैसे इसमें कुछ भी पाप नहीं है। और यदि यह जाति व्यवस्था का उप–उत्पाद है, तो यह केवल उसी अर्थ में एक बुरा उप–उत्पाद है, जिस अर्थ में शरीर का कोई अंग बुरी तरह से बढ़ जाता है या फिर फसल में कीड़े लग जाते हैं। छुआछूत के कारण जाति–व्यवस्था को खत्म करना वैसा ही होगा, जैसे कोई थोड़े बुरे वृद्धि के कारण शरीर को खत्म कर दे या फिर कीड़े मकोड़ों के कारण फसल को नष्ट कर दे।'[27]

लेकिन यह विश्लेषण काफी सीमित है और यह गाँधी के बाद के लेखन में जाति के बारे उनकी ज्यादा रैडिकल आलोचना की उपेक्षा करता है। अम्बेडकर के लम्बे निबंध एनहिलेशन ऑफ कॉस्ट के संदर्भ में अम्बेडकर और गाँधी के बीच हुए वाद–विवाद में जाति, वर्ण और वंशानुगत पेशे आदि पर बातचीत हुई। निश्चित रूप से, इस संवाद में अम्बेडकर ने अपनी विचारों को पूरी दृढ़ता से रखा। इस संवाद ने भविष्य में जाति के बारे में गाँधी की सोच को गहरे रूप से प्रभावित किया।

दरअसल, जाति के बारे में गाँधी के विचारों में समय के साथ बदलाव आया। 1909 में दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जाति व्यवस्था को 'जाति आतंक' की संज्ञा दी। लेकिन भारत लौटने पर जाति व्यवस्था के प्रति उनका रवैया तुलनात्मक रूप से उदार हो गया। वे छुआछूत की तो आलोचना करते रहे, लेकिन उन्होंने जाति व्यवस्था की खुलकर निंदा नहीं की। उन्होंने इस बात से इंकार किया कि जाति व्यवस्था ने भारत का नुकसान किया है। इसके बजाय, उन्होंने दुनिया के दूसरे भागों में मौजूद पेशागत विभाजनों की तरह ही इसे भी श्रम विभाजन के एक रूप के तौर पर देखा। दरअसल, वे मानते थे कि यह वर्ग विभाजन से ज्यादा उच्चतर है क्योंकि वर्ग–विभाजन सिर्फ सम्पति पर ही आधारित था। वे यह भी मानते थे कि जाति संगठनों में सुधार किया जा सकता है। इस दौर में, उन्होंने इस बात पर भी बल दिया कि विवाह जाति के भीतर ही होना चाहिए। हालांकि 1918 में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि उनका इशारा वर्ण की ओर था, जाति की ओर नहीं। 1925 में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि जाति को पेशे पर आधारित रोजगार से मिलना चाहिए 1931 में उन्होंने जाति व्यवस्था की निंदा की किंतु चार–वर्ण व्यवस्था की तारीफ की।[28] इस समय तक छुआछूत के खिलाफ उनके विचार ज्यादा स्पष्टता से सामने आने लगे थे। यह भी गौरतलब है कि इस वाद–विवाद से कुछ महीन पहले हरिजन में 16 नवम्बर 1935 को 'कॉस्ट हैज़ टू गो' शीर्षक से लिखे अपने लेख में गाँधी ने यह लिखा कि 'जनमत जितनी जल्दी इसे पूरी तरह नष्ट कर दे, उतना ही अच्छा होगा'[29] राजमोहन गाँधी इस बात पर बल देते हैं कि 1935 से पहले गाँधी अक्सर यह विचार व्यक्त करते थे कि जाति व्यवस्था का आदर्श रूप कायम रह सकता है, लेकिन तकरीबन हमेशा ही उन्होंने यह भी जोड़ा कि इस तरह के आदर्श का व्यवहार में कहीं भी अस्तित्व नहीं होता है। उन्होंने हमेशा ही यह भी जोड़ा कि किसी भी प्रकार की उच्चता या निम्नता पूरी तरह गलत है। यह जाति की एक खास तरह की ''तरफदारी'' लग सकती है, लेकिन यह गाँधी द्वारा उच्च जाति के हिंदुओं को एक कड़वी गोली मिठास के साथ देने का प्रयास था।[30] अम्बेडकर के साथ अपने 1936 के अपने वाद–विवाद में गाँधी ने पहली बार सार्वजनिक रूप से पहली अंतर्जातीय विवाद और अंतर्जातीय खान–पान को अपनी स्वीकृति की पुष्टि की। हालांकि उन्होंने यह दावा भी किया कि वर्ण जाति से अलग है, जिन वंशानुगत पेशों से वर्ण संबंधित है, वे समाज में समरसता और किफायत (थिफ्ट) कायम रख सकते हैं। हालांकि उन्होंने यह भी जोड़ा कि एक शुद्ध वर्ण व्यवस्था की स्थापना करना ऐसा ही है, जैसा कि एक चींटी चीनी के बड़े भारी बोरी को ढोने की कोशिश करे। अर्थात् वे यह कहना चाहते थे कि वर्ण व्यवस्था नामुमकिन है। स्पष्टतः वर्ण व्यवस्था की इस तरफदारी में कई कमियाँ थीं और अम्बेडकर ने इन कमियों को अच्छी तरह प्रदर्शित भी किया। राजमोहन गाँधी के मुताबिक गाँधी को यह लगता था कि सीधे तौर पर जाति पर हमला करने से हिंदू धर्म के रूढ़िवादी तत्त्व एकजुट हो जाएँगे, इसलिए

वे ऐसी बुराई से आरंभ करना चाहते थे, जिसकी कोई भी तरफदारी न कर पाए।[31] 1936 में गाँधी ने दहेज व्यवस्था की तीखी आलोचना की और इसके लिए जाति व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने यह कहा कि यदि दहेज प्रथा को खत्म करने के लिए जाति के बंधनों को तोड़ना हो तो वे इसका समर्थन करेंगे। उन्होंने 1946 में उच्च जाति की लड़कियों से यह आग्रह किया कि वे दलितों से विवाह करें।[32]

स्पष्टतः हम गाँधी के जाति संबंधी विचारों में समय के साथ लगातार विकास देख सकते हैं। शुरुआती दौर से ही वे छुआछूत का विरोध करते थे किंतु जाति संबंधी उनके विचार रैडिकल रूप में 1935 के बाद ही आने शुरू हुए। 1940 के दशक तक आते–आते वे जाति को पूरी तरह से खत्म करने की बात करने लगे। यह सच है कि उन्होंने कभी भी वर्ण व्यवस्था को नहीं नकारा, लेकिन जिस रूप में वे वर्ण व्यवस्था की कल्पना करते थे वह एक युटोपियाई ख्याल की तरह था जिसे वास्तविक रूप में इस दुनिया में स्थापित करना नामुमकिन हैं। डॉ. मिश्रा के किताब की एक प्रमुख सीमा यह है कि वह इस पहलू की ओर ध्यान नहीं देती है। निश्चित रूप से किताब अस्पृश्यता की समस्या से संबंधित है, लेकिन इसे जाति की समस्या से अलग करके नहीं देखा जा सकता। यह अच्छा होता कि किताब में गाँधी बाद के जाति संबंधी लेखन को भी शामिल किया जाता।

हालांकि इस किताब की एक बड़ी खासियत यह है कि इसमें अस्पृश्यता के बारे में 1930 के दशक में गाँधी और अम्बेडकर के बीच चले वाद–विवाद को भी प्रस्तुत किया गया है। गाँधी और अम्बेडकर के संबंधों में एक खास बात यह थी कि अम्बेडकर ने कभी भी गाँधी या कांग्रेस का नेतृत्व स्वीकार नहीं किया। हालांकि दोनों के संबंधों में कई तरह के उतार–चढ़ाव आए और एक हद तक कटुता भी पैदा हुई। लेकिन उनके बीच हमेशा ही संवाद कायम रहा। 1920 के दशक में गाँधी और अम्बेडकर के बीच एक अवयैक्तिक लेकिन सकारात्मक किस्म का संबंध रहा। यद्यपि इस दौर में वे एक–दूसरे से नहीं मिलें लेकिन अम्बेडकर ने दलितों की दुर्दशा के प्रति गाँधी की चिंता तथा उनके द्वारा प्रस्तुत सत्याग्रह की पद्धति का स्वागत किया। लेकिन 1930 के दशक में इन दोनों के बीच तीखे वाद–विवाद उभर कर सामने आए। गाँधी ने 1927 में अम्बेडकर के नेतृत्व में हुए महाड सत्याग्रह में दलितों के संघर्ष की प्रशंसा की थी। यहाँ दलितों को कुएँ से पानी नहीं लेने दिया जाता था, जिसके विरोधस्वरूप दलितों ने संगठित होकर इसका विरोध किया और कुएँ से पानी पीया। इसके बाद, उत्तेजित उच्च जाति के लोगों ने इन पर हमला किया और कई लोगों के साथ मारपीट भी की। अम्बेडकर महाड में मौजूद थे और उन्होंने अपने लोगों से हमले का जवाब न देने के लिए कहा। गाँधी ने 28 अप्रैल 1927 को यंग इण्डिया में दलितों के आत्म–नियंत्रण की तारीफ की तथा यह लिखा कि तथाकथित

रूढ़िवादी दल ने केवल क्रूर शक्ति का उपयोग किया। उन्होंने यह भी लिखा कि डॉ. अम्बेडकर द्वारा बॉम्बे लेजिस्लेटिव कौंसिल और महाड म्युनिसिपेलिटी के प्रस्तावों का परीक्षण करना और तथाकथित अछूतों को कुओं से जाकर अपनी प्यास बुझाने का सुझाव देना पूरी तरह से सही कदम था। महात्मा ने इस बात पर भी बल दिया कि 'हर हिंदू को छुआछूत का विरोध करना चाहिए' और महाड के साहसी दलितों की सार्वजकनिक तरफदारी करनी चाहिए, जिन्होंने 'अपना सर फोड़े जाने का जोखिम लेकर' महाड सत्याग्रह में भाग लिया।[33] यह भी याद रखने की आवश्यकता है कि 1931 के करॉंची अधिवेशन में पारित मूल अधिकारों के प्रस्ताव को तैयार करने में गाँधी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

थॉमस पैंथम ने यह दलील प्रस्तुत की है कि उनके (गाँधी और आम्बेडकर) बीच राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दर्शन के मसले पर मतभेद था तथा उनके व्यवहारिक राजनीतिक रणनीतियों में काफी भिन्नता थी, इसके बावजूद दोनों में ही अस्पृश्यता की समाप्ति के प्रति गहरी और प्रामाणिक वचनबद्धता थी।[34] हालांकि यह सच है कि गाँधी की दलितों के प्रति चिंता मुख्य रूप से अस्पृश्यता के उन्मूलन तक ही सीमित थी। चूंकि वे गैर दलित जातियों, विशेषकर उच्च जातियों को इसके लिए जिम्मेदार मानते थे, इसिलिए उन्होंने हमेशा ही उनसे कहा कि वे छुआछूत के पाप और अपनी जाति श्रेष्ठता के बोध का पश्चाताप करें, लेकिन उन्होंने दलित अधिकारों के लिए प्रत्यक्ष संघर्ष को कभी–कभार ही बढ़ावा दिया। यह भी सच है कि अम्बेडकर गाँधी की मृत्यु के बाद भी कई मसलों पर उनकी तीखी आलोचना करते रहें। लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि गाँधी और अम्बेडकर ने एक–दूसरे को गहरे रूप से प्रभावित किया। डी. आर. नागराज ने यह तर्क दिया है कि गाँधी और अम्बेडकर ने एक–दूसरे के अतिरेकों का शमन किया। गाँधी और अम्बेडकर 1930 के दशक के मध्य तक एक–दूसरे से काफी प्रभावित हो चुके थे। इसी प्रभाव के कारण गाँधी ने हरिजनों के उत्थान की परिभाषा और उसके दायरे का विस्तार किया और उनके लिए अब वह सिर्फ अस्पृश्यता का सवाल नहीं रह गया था। उन्होंने अम्बेडकर से आर्थिक स्थिति पर बल देने का मुद्दा लिया और दूसरी तरफ अम्बेडकर ने आंदोलन में धर्म की महत्ता को स्वीकार किया।[35]

IV

fu"d"k

भारतीय समाज में जाति आधरित भेदभाव के संदर्भ में चल रहे वाद–विवाद में अनिल दत्त मिश्रा की पुस्तक एक सामयिक हस्तक्षेप है। आम तौर पर, बहुत सी विचारधारात्मक बाध्यताओं के कारण जाति से संबंधित गाँधी के विचारों को आधे–अधूरे तरीके से प्रस्तुत किया जाता रहा है। बहुत से दलित समूह अस्पृश्यता और जाति

के बारे में गाँधी के आलोचना का उपयोग दलितों को गोलबंद करने के लिए करते रहे हैं। निस्संदेह गाँधी के विचारों की आलोचना की जानी चाहिए और आवश्यकता पड़ने पर एक न्यायूपर्ण और उत्तम समाज के निर्माण के लिए उनसे आगे जाने का प्रयास भी करना चाहिए। हालांकि यह भी उतना ही आवश्यक है कि 1930 के दशक में चले विवाद–विवाद की एक व्यापक समझ बनाने के लिए उनके मूल लेखन पर ध्यान दिया जाए। यह किताब गाँधी के अस्पृश्यता संबंधी मूल विचारों और अम्बेडकर से उनके वाद–विवाद को बहुत ही खूबसूरती से प्रस्तुत करती है। यह इस महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर भी ध्यान आकर्षित करती है कि भारत में एक उत्तम और समरस समाज के निर्माण के लिए यह जरूरी है कि उच्च जाति के लोगों के सोच और विचार में बदलाव लाया जाए। दलित मुक्ति के लिए सिर्फ इस कदम को पर्याप्त नहीं माना जा सकता, किन्तु यह एक आवश्यक कदम है। ऐसा न होने पर हम जाति युद्ध की स्थिति में पहुँच जाएँगे जहाँ दलित में भी जुझारू और लड़ाकू क्षमता का उभार ही एक मात्र सकारात्मक बात होगी। निश्चित तौर पर, एक बेहतरीन प्रस्तावना के साथ अस्पृश्यता संबंधी गाँधी के विचारों तथा अम्बेडकर के साथ उनके वाद–विवाद का संकलन प्रस्तुत करने के लिये डॉ. मिश्रा बधाई के पात्र हैं। किन्तु ज्यादा अच्छा यह होता कि यह किताब सम्पूर्ण रूप से जाति व्यवस्था के बारे में गाँधी के विचारों पर ध्यान केन्द्रित करती।

(नोट : प्रस्तुत लेख में लिए गए सभी उद्धरणों को मैंने मूल अंग्रेजी से हिंदी में अनूदित किया है।)

lnHk&xzFk lph

अम्बेडकर, बी. आर. (1945). व्हाट कांग्रेस ऐंड गाँधी हैव डन टू अनटचेबल्स. बॉम्बे : थैकर्स।

————————————. (2014). एनहिलेशन ऑफ कास्ट. नयी दिल्ली : नवयाना।

भारत का संविधान. (2008) इलाहाबाद : सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन।

गाँधी, एम. के. (एनडी). कॉलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गाँधी, (100 वोल्यूम्स)। नयी दिल्ली : पब्लिकेशन डिविजन।

गाँधी, राजमोहन. (2015)। 'इंडिपेंडेंस ऐंड सोशल जस्टिस : अम्बेडकर ऐंड गाँधी', इकनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली, 50(15): 30–44.

हार्डीमन, डेविड. (2003). गाँधी इन हिज टाइम्स ऐंड आवर्स। नयी दिल्ली : परमानेंट ब्लैक।

मिश्रा, अनिल दत्त (2015)। महात्मा गाँधी ऑन अनटचेबिलिटी। नयी दिल्ली : कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड।

नागराज, डी. आर. (2002)। 'आत्मशुद्धि बनाम आत्म–सम्मान : दलित आंदोलन के स्रोतों की खोज', संकलित अभय कुमार दुबे (सम्पा.), *आधुनिकता के आईने में दलित*। नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन : नयी दिल्ली।

पैंथम, थॉमस. (2009). 'अगेन्स्ट अनटचेबिलिटी : द डिस्कोर्स ऑफ गाँधी ऐंड अम्बेडकर', संकलित, गोपाल गुरू (सम्पा). ह्युमिलिएशन : क्लेम्स ऐंड कॉन्टेक्स्ट. नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 179–208.

प्यारेलाल. (1932). एपिक फास्ट. अहमदाबाद : नवजीवन।

जेलियोट, एलीनोर. (1986). 'कांग्रेस ऐंड द अनटचेबल्स, 1917–1950', संकलित, आर. सिसॅन और एस वोल्पर्ट (सम्पा.), *कांग्रेस ऐंड इंडियन नैशनलिजम.* नयी दिल्ली : ऑक्सपफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 182–97.

Endnotes

1. देखें भारत का संविधान (2008) : 7–10.
2. मिश्रा (2015): अ.
3. हार्डीमन (2003): 126.
4. गाँधी (एनडी) कलेक्टेड वर्क्स (7): 470.
5. वही (9): 181.
6. वही (14): 73–77.
7. वही (14): 325.
8. वही (19): 20.
9. हालांकि आम्बेडकर ने इस किताब में मुख्य रूप से गाँधी और कांग्रेस के भूमिका की आलोचना ही की। देखें– आम्बेडकर (1945).
10. गाँधी (2015): 37.
11. गाँधी (एनडी) कलेक्टेड वर्क्स (19): 572, गाँधी (2015): 38.
12. देखें मिश्रा (2015); गाँधी (2015); हार्डीमन (2003)
13. गाँधी (2015): 37.
14. मिश्रा (2015): 97.
15. मिश्रा (2015): 5
16. जेलियट (1988): 194.
17. गाँधी (एनडी), कलेक्टेड वर्क्स (48): 298.
18. वही : 258.
19. गाँधी (2015): 41.
20. वही : 41.

21. गाँधी (एनडी) कलेक्टेड वर्क्स (51): 143–45.
22. गाँधी (2015): 41.
23. अम्बेडकर द्वारा कांग्रेस और गाँधी की व्यवस्थित आलोचना के लिए देखें अम्बेडकर (1945).
24. गाँधी (2015) : 41.
25. मिश्रा (2015): 40.
26. वही : 42.
27. मिश्रा (2015): 7.
28. हार्डीमन (2003) 126–27.
29. गाँधी (एनडी) कलेक्टेड वर्क्स (62): 121–22.
30. गाँधी (2015): 42.
31. वही.
32. हार्डीमन (2003): 127.
33. गाँधी (एनडी) कलेक्टेड वर्क्स (33): 368.
34. पैंथम (2009): 179.
35. देखें नागराज (2002).

THE INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION

NON ELECTED MEMBERS OF THE EXECUTIVE COUNCIL

President
MOHAMMAD HAMID ANSARI
Vice President of India

Chairman
T.N. CHATURVEDI
Former Governor of Karnataka

Co-opted Members (2014-2016)

SHEKHAR DUTT
(Former Governor of Chhattisgarh)
Flat No.C-805, 8th Floor,
Keenwood Tower,
Charmwood Village,
Surajkund Road,
Faridabad-121009 (Haryana).

ARUN KUMAR GROVER
Vice-Chancellor
Panjab University,
Chandigarh-160014.

JOSEPH K. ALEXANDER
Chairman
IIPA Kerala Regional Branch,
T.C.14/2144, Medes Lane, Palayam,
Thiruvananthapuram-695034.

JOHNY JOSEPH
Chairman
IIPA Maharashtra Regional Branch,
16th Floor, New Administrative Building,
Opp. Mantralaya, Hutatma Rajguru Chowk,
Madame Cama Road, Mumbai-400032.

N. LOKENDRA SINGH
Chairman
IIPA Manipur Regional Branch,
C/o Registrar, Manipur University,
Canchipur, Imphal-795003.

BIPIN BIHARI MISHRA
Chairman
IIPA Odisha Regional Branch,
Qtr. No.VIC, 2/1, Unit-1,
Bhubaneswar-751009.

Secretaries to Government of India

SANJAY KOTHARI
Secretary
Department of Personnel & Training,
Ministry of Personnel,
Public Grievances & Pensions,
Govt. of India,
Room No.112,
North Block,
New Delhi-110001.

RATTAN P. WATAL
Secretary
Department of Expenditure,
Ministry of Finance, Govt. of India,
Room No.128 C, North Block,
New Delhi-110001.

SINDHUSHREE KHULLAR
C.E.O, NITI Aayog,
Govt. of India, New Delhi-110001

IIPA Academic Staff (2014-2016)

DOLLY ARORA
I.I.P.A, New Delhi-110002.

K.K. PANDEY
I.I.P.A, New Delhi-110002.

GIRISH KUMAR
I.I.P.A.
New Delhi110002.

Director & Member-Secretary
TISHYARAKSHIT CHATTERJEE
Indian Institute of Public Administration
I.P. Estate, Ring Road,
New Delhi-110002.

Telegram: ADMNIST

Telephone: 23702400-17

INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
NEW DELHI

INDIAN JOURNAL OF PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: published since January 1955)
Editor: MAHENDRA PRASAD SINGH

Yearly Subscription:
Individuals: (Inland) Rs.425.00; (Abroad) $120 or £48;
Single Copy: (Inland) Rs.120.00; (Abroad) $30 or £12;
Special Number: (Inland) Rs.275.00; (Abroad) $80 or £ 36
Institution/Library: (Inland) Rs. 700.00; (Abroad) $ 240.00 or £ 96.00
Life Members of IIPA: Annual subscription: Rs.300.00; Single Copy Rs.75.00;
Special Number Rs.200.00

IIPA NEWSLETTER

(Monthly recorder of national and international news of
public administration and allied matters since 1956)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE

DOCUMENTATION IN PUBLIC ADMINISTRATION

(Quarterly: Published since 1973)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: A.K. NATH, Dy. Librarian, lIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 150.00; Abroad: $ 60.00 or £ 24.00

NAGARLOK

(Urban Affairs Quarterly: Published since 1969)
Editor: TISHYARAKSHIT CHATTERJEE, Director, lIPA, New Delhi
Assistant Editor: V.N. ALOK, Associate Professor in Urban Finance,
IIPA, New Delhi
Yearly Subscription: India: Rs. 200.00.

लोक प्रशासन (अर्ध–वार्षिक)

सम्पादकः प्रो. एस. एन. मिश्र

वार्षिक शुल्क : आजीवन सदस्य-रू. 150, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 300
सामान्य अंक : आजीवन सदस्य-रू. 75, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 100, संस्थागत ग्राहक-रू. 150
विशेषांक : आजीवन सदस्य-रू. 100, व्यक्तिगत ग्राहक-रु. 200, संस्थागत ग्राहक-रू. 200

Bank drafts/postal orders should be drawn only in favour of
"**Director, Indian Institute of Public Administration**"

Note: Subscribers are advised to secure safe delivery
through Registered Post @ Rs. 100.00 per periodical.

For complete information about IIPA publications write to:

THE EDITOR
INDIAN INSTITUTE OF PUBLIC ADMINISTRATION
Indraprastha Estate, Ring Road, New Delhi-110 002 (India)

Edited by S.N. Mishra and printed and published by Dipankar Guha for the Indian Institute of Public Administration, New Delhi, Ph.: 23702400 and Printed at New United Process, A-26, Naraina Industrial Area, Phase-II, New Delhi-110 028. Ph. 4508 9125